"HARI RAM MEENA KE SAHITYA MEIN ABHIVYAKAT ADIVASI JEEVAN"

A Thesis submitted to the University of Hyderabad in partial fulfillment of the requirement for the award
of
Doctor of Philosophy
in
Hindi
Submitted

By

DURGA RAO BANAVATU

2016

DEPARTMENT OF HINDI

SCHOOL OF HUMANITIES

UNIVERSITY OF HYDERABAD

HYDERABAD - 500046

TELANGANA, INDIA

DECEMBER, 2016

D E C L A R A T I O N

I, DURGA RAO BANAVATU, hereby declare that this thesis entitled **"HARI RAM MEENA KE SAHITYA MEIN ABHIVYAKAT ADIVASI JEEVAN"** (हरिराम मीणा के साहित्य में अभिव्यक्त आदिवासी - जीवन) submitted by me under the guidance and supervision of **Dr. BHIM SINGH** is a bonafide research work. Which is also free from plagiarism. I also declare that it has not been submitted previously in part or full to this University or any other University or Institution for the award of any degree or diploma. I hereby agree that my thesis can be deposited in Shodhganga/INFLIBNET

Date: Name : **DURGA RAO BANAVATU**

(Signature of the Student)
Regd. No. 11HHPH14

Signature of Supervisor

CERTIFICATE

This is to certify that the thesis entitled **"HARI RAM MEENA KE SAHITYA MEIN ABHIVYAKAT ADIVASI JEEVAN"** (हरिराम मीणा के साहित्य में अभिव्यक्त आदिवासी - जीवन) submitted by DURGA RAO BANAVATU bearing Reg. No. 11HHPH14 in partial fulfillment of the requirements for award of Doctor of Philosophy in Hindi in the School of Humanities is a bonafide work carried out by him under my supervision and guidance.

This thesis is free from plagiarism and has not been submitted previously in part or in full to this or any other University or Institution for award of any degree or diploma.

Parts of this thesis have been :

A. published in the following publications:

1. Aravali Udghosh, journal (ISSN Number- 2250-3080), Chapter 3rd
2. Shodh Rityu, journal (ISSN Number- 2454-6283), Chapter 5th

And

B. presented in the following conferences:

1. "NEW TRENDS IN THE POST 1990 HINDI POETRY." Sponsored by University Grants Commission, Govt. of India, New Delhi), Organized By- Government Brennen College, Thalassery, Kerala-670106, India (26 & 28 August, 2014). (National)
2. "IKKEESVEEM SADI KA HINDI SAHITHYA : VIVIDH AAYAM" Organized By-Department of Hindi, Kannur University, P.K. Rajan Memorial Campus Nileshwaram, Kasaragod Dist, Kerala-671314, India, (29 August, 2014). (National)

Further, the student has passed the following courses towards fulfillment of coursework requirement for Ph.D / was exempted from doing coursework (recommended by Doctrol Committee) on the basis of the following courses passed during his M.Phil program and the M.Phil degree was awarded:

Course Code	Name	Credits	Pass/Fail
1. HH701	Research Methodology	7	Pass
2. HH702	Modern Thought	8	Pass
3. HH703	Sociology of Literature	7	Pass
4. HH704	Aesthetics and Stylistics	9	Pass

Supervisor Head of Department Dean of School

प्रस्तावना

भारतीय समाज-व्यवस्था को समझने वाले आधारभूत कारकों में निम्नांकित बिंदु प्रमुख हैं- प्रजाति या 'एथनिसिटी', वर्ण, जाति, वर्ग और लैंगिक आधार । भारत की 'आदिवासी दुनिया' को यदि समझने की कोशिश की जाये तो उसे हाशियाकृत जन-समुदाय के रूप में ही देखकर अध्ययन किया जा सकता है । भारत की आदिवासी दुनिया का स्वरूप एक रूपी नहीं है । उसकी बहुरूपियता ही उसको भिन्न आधार प्रदान करती है। भारत के आदिवासी जन-समुदायों के समक्ष जो चुनौतियाँ उत्पन्न हुई हैं वे प्राकृतिक से अधिक मानव निर्मित हैं । भारत के आदिवासी-जीवन को समझने के लिए जवाहरलाल नेहरू का सन् 1958 का उद्धरण यहाँ पर समीचीन जान पड़ता है- 'भारत के आदिवासी हज़ारों वर्षों से इस देश के सबसे पुराने निवासी हैं । बाद में यहाँ आने वाले समूहों ने इन आदिवासियों को दबाकर रखा है, उनकी ज़मीन छीन ली, उन्हें पर्वतों व जंगलों में खदेड़ा और उन्हें उत्पीड़कों ने अपने हित में बेगार करने को विवश किया । आज विभिन्न समूहों के लगभग चार करोड़ आदिवासी हैं (अब करीब 10 करोड़) जिन पर सरकार को विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है चूंकि वे राष्ट्रीय संस्कृति से अलग-थलग रह रहे हैं ।'

भारत के आदिवासी-जीवन को अभिव्यक्ति प्राचीन भारतीय साहित्य के दोनों उपजीव्य-ग्रंथों 'रामायण' और 'महाभारत' में प्राप्त हुई है । लेकिन इसकी दिशा और दृष्टिकोण आदिवासी जन-समुदायों के वर्तमान वैचारिक समझ के प्रतिकूल दिखलाई पड़ता है । इन ग्रंथों से पूर्व वैदिक-साहित्य और उपनिषदों में भी आदिवासी जीवन के संदर्भ-सूत्र ढूंढे जा सकते हैं । आदिवासी पात्रों को विरूपित एवं विकृत रूप में चित्रित करने की घटना ने रचनाकार हरिराम मीणा को आदिवासी-साहित्य लिखने की ओर उन्मुख किया । आदिवासियों के महत्व और अवदान को या तो आंका ही नहीं गया या गया भी तो, इसे कमतर रूप में देखने की कोशिश हुई है । इन सबका प्रभाव रचनाकार के मानस पर पड़ना स्वाभाविक ही था । भारत के स्वाधीनता-संग्राम में आदिवासियों की भूमिका को इतिहासकारों ने उचित रूप में महत्व नहीं दिया इस वजह से भी हरिराम मीणा भारत की आदिवासी दुनिया को समझने की दिशा की ओर बढ़े । उन्होंने इस क्रम में

अनेक विधाओं में साहित्य-सृजन का कार्य किया है। वर्तमान वैश्विक दुनिया पूँजीवाद के रथ पर सवार होकर व्यक्तिवादिता को बढ़ावा दे रही है, ऐसे दौर में परंपरागत जीवन-मूल्यों और सामूहिकता की जीवन-प्रणाली से युक्त आदिम, आदिवासी, वनवासी, विमुक्त और घुमन्तू आदिवासियों के जीवन पर पड़ने वाले प्रभावों को रचनाकार ने अपने सृजन का हिस्सा बनाया है।

'हरिराम मीणा के साहित्य में अभिव्यक्त आदिवासी-जीवन' शोध-विषय पर अभी तक कोई भी शोध-कार्य नहीं हुआ है। जो शोध-कार्य हुए हैं वे उनके उपन्यास 'धूणी तपे तीर', और यात्रा-वृत्तांत 'जंगल-जंगल जलियांवाला', पर हुए हैं। ये शोध-कार्य एचसीयू, वर्धा, जेएनयू, मानू, डीयू और अमरकंटक ('समकालीन हिंदी साहित्य में आदिवासी – विमर्श के संदर्भ में हरिराम मीणा का योगदान' (2016) पी.एच.डी. का शोध-कार्य हाल ही में, तान सिंह द्वारा हुआ है) केंद्रीत विश्वविद्यालयों में हुए हैं। इन शोध-कार्यों से यह शोध-कार्य जुड़कर भी भिन्न इस रूप में है कि उनके समग्र-साहित्य को लेकर अभी तक कोई भी शोध-कार्य नहीं हुआ है। प्रस्तुत शोध में आलोचनात्मक शोध-पद्धति का व्यवहार किया गया है। शोध में निष्कर्ष प्राप्ति हेतु साक्षात्कार-पद्धति का भी अनुशीलन किया गया है। इस पद्धति के अनुकूल संदर्भानुसार, ऐतिहासिक एवं व्याख्यात्मक उपागमों का प्रयोग किया गया है।

प्रस्तुत शोध-विषय 'हरिराम मीणा के साहित्य में अभिव्यक्त आदिवासी-जीवन' को मैंने शोध-कार्य की दृष्टि से प्रस्तावना और उपसंहार के अलावा पाँच अध्यायों में विभक्त किया है। शोध-ग्रंथ के अंत में संदर्भ-ग्रंथ सूची भी दी गई है।

प्रथम अध्याय है- 'आदिवासी-विमर्श : ऐतिहासिक-सामाजिक परिप्रेक्ष्य'। इस अध्याय के अंतर्गत 'विमर्श' शब्द का अर्थ, विमर्श की वर्तमान में अनिवार्यता, आदिवासी-विमर्श के उदय के कारण, आदिवासी-विमर्श का अर्थ, आदिवासी-विमर्श की ऐतिहासिक-अनिवार्यता, सामाजिक-विमर्श के रूप में आदिवासी चेतना का विकास, आदिवासी-विमर्श के मायने, आदिवासियों का 'जल-जंगल-जमीन' से संबंध, उनकी पहचान के

सांस्कृतिक तत्व- भाषा, धर्म, वेश-भूषा, कला और उनकी सौंदर्य-दृष्टि, आदिवासी-लेखन में आदिवासी और ग़ैर-आदिवासी रचनाकारों का योगदान, वर्तमान संदर्भ में आदिवासी समाज के समक्ष चुनौतियाँ, जैसे- विस्थापन, नक्सलवाद, आजीविका और उनके स्वास्थ्य पर गहराता संकट, आदिवासियों के धर्मांतरण के मुद्दे के अलावा उत्तराधुनिक-चिंतन में आदिवासी-विमर्श की स्थिति तक का गहन और गंभीर विवेचन किया गया है । इस अध्याय की सारी चिंताएँ, हरिराम मीणा के आलोचना-कर्म में देखी जा सकती हैं ।

द्वितीय अध्याय है- 'हरिराम मीणा की रचनात्मक-चेतना का विकास' । इसके अंतर्गत उनके जन्म-परिचय एवं परिवेश, शिक्षा-दीक्षा, साहित्य-सृजन की शुरूआत, उनकी रचनाओं का विधावार, कालक्रम के आधार पर वर्गीकरण और उन्हें प्राप्त पुरस्कार और सम्मान उपशीर्षकों के अंतर्गत विश्लेषणपरक विवेचन किया गया है ।

तृतीय अध्याय है- 'हरिराम मीणा की कविताओं में अभिव्यक्त आदिवासी-जीवन' । इस अध्याय में उनके कविता-संग्रहों- 'सुबह के इंतजार में', 'हाँ, चाँद मेरा है', 'रोया नहीं था यक्ष', 'समकालीन आदिवासी कविता' (संपादित) में अभिव्यक्त आदिवासी-जीवन को लेकर गहन और गंभीर समीक्षा की गई है । अंडमान के आदिम आदिवासी जन-समुदायों की जीवन-शैली, भारतीय मिथकों में आदिवासी पात्र, ऐतिहासिक आदिवासी नायकों और समकालीन परिस्थितियों के कारण आदिवासियों की जीवन-स्थिति में आये हुए सकारात्मक और नकारात्मक दोनों तरह के प्रभावों को कवि ने संवेदनात्मक अभिव्यक्ति प्रदान की है जिसकी सम्यक् समीक्षा इस अध्याय के अंतर्गत हुई है ।

चतुर्थ अध्याय है- 'हरिराम मीणा के गद्य-साहित्य में अभिव्यक्त आदिवासी-जीवन'। इस के अंतर्गत 'धूणी तपे तीर', 'जंगल-जंगल जलियांवाला', 'साइबर सिटी से नंगे आदिवासियों तक', 'आदिवासी दुनिया', 'मानगढ़ धाम', 'खाकी में कलमकार' और 'आदिवासी लोक की यात्राएँ' जैसी महत्वपूर्ण रचनाओं को विवेचन का विषय बनाकर उनके अंतर्गत आदिवासी-जीवन की अभिव्यक्ति पर आलोचनात्मक ढंग से प्रकाश डाला

गया है । इस अध्याय के अंतर्गत आदिवासियों के सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक परिवेश के परिप्रेक्ष्य में गद्य-साहित्य का विवेचन किया गया है ।

पंचम अध्याय है – 'हरिराम मीणा की कला और भाषा' । इस अध्याय में लेखक की रचना-दृष्टि, रचनाओं के नामकरण की सार्थकता, सरल-रेखा का सौंदर्य और कुछ सवाल, रचना की बुनावट, प्रकृति, कहावतें और मुहावरेदार भाषा, लोक-साहित्य का रचनात्मक उपयोग और अभिव्यंजना-पक्ष पर प्रकाश डाला गया है ।

प्रस्तावित शोध-कार्य पर अनुमति प्रदान करने के लिए मैं विभाग की शोध सलाहकार समिति एवं सभी प्राध्यापकों का आभारी हूँ । वर्तमान विभागाध्यक्ष प्रो. आर.एस. सर्राजु जी एवं प्रो. सच्चिदानंद चतुर्वेदी जी ने जो महत्वपूर्ण सुझाव दिये, इसके लिए मैं उनके प्रति आभार व्यक्त करता हूँ ।

शोध-विषय के निर्धारण से लेकर शोध-कार्य पूर्ण होने तक मैं रचनाकार श्री हरिराम मीणा जी का विशेष आभार ज्ञापित करता हूँ कि उन्होंने उनके साहित्य पर कार्य करने और उसे समझने की दृष्टि के बीज-सूत्र मुझमें बोये । मेरे शोध-निर्देशक डॉ. भीम सिंह जी ने इस शोध-कार्य में मेरी जो सहायता की वो मेरे लिए अविस्मरणीय है ।

अपने शोध-कार्य के दौरान प्रूफ-सुधार और टंकण के कार्य में पिंटू कुमार मीणा और जिनित सबा ने अथक परिश्रम किया मैं इनके प्रति विशेष आभार व्यक्त करता हूँ । अपने शोध-कार्य के दौरान मुझे पद्मावती, पुंडलिक राठोड, प्रणव कुमार ठाकुर, राकेश कुमार सिंह, सुरेश जगन्नाथम्, जनार्दन, विजय, मनोज, भग्गू नायक और विवेक जी का निरंतर सहयोग प्राप्त हुआ है । मैं उन सभी के प्रति हार्दिक रूप से कृतज्ञ हूँ । अपने सहपाठियों सुरेश, लक्ष्मण, रवि, गोरांग, भानू, अमरनाथ और सुभाष का भी मैं आभारी हूँ कि उन्होंने मेरा निरंतर मनोबल बनाये रखने में सहयोग किया ।

अंततः मैं अपने माता-पिता (सामिनी, स्वर्गीय बाणावतु कृष्ण), बहन (शांति), भानजे-सिधू, वेंकटेश, पत्नी सुधा और बेटे कृष्ण चैतन्य के विश्वास को आगे बढ़ाते हुए सारी चिंताओं से मुक्त होकर यह शोध-कार्य कर सका इसके लिए उन सब के प्रति आदर और स्नेह ।

अनुक्रमणिका

पृ.सं.

प्रस्तावना **i-v**

प्रथम अध्याय : आदिवासी-विमर्श : ऐतिहासिक-सामाजिक परिप्रेक्ष्य **1-43**

1.1 'विमर्श' से 'आदिवासी-विमर्श' तक

1.2 आदिवासी-विमर्श के उदय के कारण

1.3 आदिवासी-विमर्श : ऐतिहासिक - अनिवार्यता

1.4 सामाजिक-विमर्श के रूप में आदिवासी - चेतना का विकास

1.5 आदिवासी-विमर्श के मायने

1.5.1 जंगल से संबंध

1.5.2 भाषा

1.5.3 धर्म

1.5.4 सौंदर्य-दृष्टि

1.5.5 कला

1.5.6 वेश – भूषा

1.6 आदिवासी-लेखन में आदिवासी और ग़ैर-आदिवासी रचनाकारों का योगदान

1.7 वर्तमान संदर्भ में आदिवासी समाज के समक्ष चुनौतियाँ

1.7.1 विस्थापन

1.7.2 विमुक्त और घुमन्तू जनजातियाँ

1.7.3 नक्सलवाद

1.7.4 आजीविका का संकट

1.7.5 स्वास्थ्य का सवाल

1.7.6 आदिवासी-संस्कृति के संरक्षण का सवाल

1.7.6.1 आदिवासी-भाषा

1.7.6.2 आदिवासी-धर्म

1.8 उत्तर-आधुनिक चिंतन और आदिवासी-विमर्श

द्वितीय अध्याय : हरिराम मीणा की रचनात्मक-चेतना का विकास **44-81**

2.1 जन्म-परिचय एवं परिवेश

2.2 शिक्षा-दीक्षा

2.3 रूचि – अभिरूचि और संपादन -

2.4 साहित्य-सृजन

2.4.1 विधा के आधार पर रचनाओं का वर्गीकरण

2.4.2 कालक्रमिक-आधार पर रचनाओं का वर्गीकरण
2.4.2.1 हाँ, चाँद मेरा है
2.4.2.2 साइबर सिटी से नंगे आदिवासियों तक
2.4.2.3 रोया नहीं था यक्ष
2.4.2.4 सुबह के इन्तजार में
2.4.2.5 जंगल-जंगल जलियांवाला
2.4.2.5.1 मानगढ़
2.4.2.5.2 भूला-बिलोरिया
2.4.2.5.3 पालचित्तरिया
2.4.2.6 धूणी तपे तीर
2.4.2.7 आदिवासी दुनिया
2.4.2.8 मानगढ़ धाम
2.4.2.9 समकालीन आदिवासी कविता
2.4.2.10 खाकी में कलमकार
2.4.2.11 आदिवासी लोक की यात्राएँ (आदिवासी यायावरी)
2.5 सम्मान और पुरस्कार
तृतीय अध्याय : हरिराम मीणा की कविताओं में अभिव्यक्त आदिवासी-जीवन 82-160
3.1 'सुबह के इंतजार में' अभिव्यक्त आदिवासी-जीवन
3.1.1 ऐतिहासिक आदिवासी नायकों से प्रेरणा ग्रहण करना
3.1.2 आदिवासी-युवतियों के प्रति ग़ैर-आदिवासी कवियों की सौंदर्य-दृष्टि का प्रत्याख्यान
3.1.3 आदिवासियों के अस्तित्व के प्रति चिंता
3.1.4 आदिवासी-चेतना
3.1.5 अकाल का आदिवासी – जीवन पर प्रभाव
3.1.6 अण्डमान के आदिम आदिवासियों की चित्रित छवि
3.1.7 अंडमान के आदिवासियों की विश्वास-प्रणाली
3.1.8 बलात्-विस्थापन
3.1.9 छोटे तबकों के प्रति परंपरागत सोच में बदलाव
3.1.10 आदिवासियों का धार्मिक-जीवन
3.1.11 प्रतिरोधी-चेतना
3.2 'हाँ, चाँद मेरा है' में अभिव्यक्त आदिवासी-जीवन
3.2.1 परंपरागत इतिहास-लेखन पर प्रश्न-चिह्न
3.2.2 आदिवासी वीरों के प्रति विश्वासघात
3.2.3 आदिवासी-मिथक
3.2.4 किसान - जीवन के प्रति संवेदना

3.2.5 पर्यावरण-पारिस्थितिकी के संदर्भ सूत्र
3.2.6 विमुक्त और घुमंतू जनजातियों के जीवन का चित्रण
3.3 'रोया नहीं था यक्ष' में अभिव्यक्त आदिवासी-जीवन
3.4 'समकालीन आदिवासी कविता' में अभिव्यक्त आदिवासी-जीवन
3.5 हरिराम मीणा के काव्य में आदिवासी - स्त्री
चतुर्थ अध्याय: हरिराम मीणा के गद्य-साहित्य में अभिव्यक्त आदिवासी-जीवन 161-248
4.1 'धूणी तपे तीर' में चित्रित आदिवासी-जीवन
4.1.1 देशी-कारकों द्वारा आदिवासियों का शोषण
4.1.1.1 जागीरदार
4.1.1.2 राजा
4.1.1.3 ठाकुर
4.1.2 विदेशी-कारकों द्वारा आदिवासियों का शोषण
4.1.3 आदिवासियों में जन-जागरण की चेतना
4.1.4 सामाजिक-जीवन
4.1.4.1 अकाल और आदिवासी – जीवन
4.1.4.2 अंधविश्वास
4.1.4.3 आदिवासी समाज में स्त्री और उसका उत्तरदायित्व
4.1.4.4 आदिवासी स्त्री के प्रति मुख्यधारा के समाज का दृष्टिकोण
4.1.4.5 प्रेम का वर्णन
4.1.5 सांस्कृतिक-जीवन
4.1.5.1 प्रकृति-चित्रण
4.1.5.2 पर्व – त्यौहार
4.1.5.3 वेश - भूषा
4.1.5.4 धर्म
4.1.6 आर्थिक - जीवन
4.1.6.1 ब्रिटिश कानूनों का आदिवासी जीवन पर प्रभाव
4.1.6.2 बेगार की समस्या
4.1.6.3 ऋणग्रस्तता की समस्या
4.1.7 राजनीतिक – चेतना से युक्त आदिवासी - जीवन
4.1.7.1 शिक्षा का महत्व
4.1.7.2 नशापान का विरोध
4.1.7.3 बेगार - प्रथा का विरोध
4.1.8 आदिवासी - विद्रोह
4.2 'जंगल-जंगल जलियांवाला' में चित्रित आदिवासी-जीवन

4.2.1 ‘मानगढ़’ में चित्रित आदिवासी - जीवन
I . आदिवासी लोक-विश्वास
II. आदिवासी-चेतना
III. अहिंसा का मार्ग
IV. आदिवासी - आंदोलन
4.2.2 ‘भूला – बिलोरिया’ में चित्रित आदिवासी - जीवन
4.2.3 ‘पालचित्तरिया’ में चित्रित आदिवासी - जीवन
4.3 ‘साइबर सिटी से नंगे आदिवासियों तक’ में चित्रित आदिवासी-जीवन
4.3.1 अण्डमान के आदिवासियों का जीवन - विधान
4.4 ‘आदिवासी-दुनिया’ में अभिव्यक्त आदिवासी-जीवन
4.4.1 आदिवासी कौन ?
4.4.2 भारतीय इतिहास एवं मिथकों में आदिवासी
4.4.3 भारतीय स्वाधीनता आंदोलन में आदिवासियों की भूमिका
4.4.4 आदिवासियों की संस्कृति, संप्रदाय एवं परंपरा
I. विवाह
II. पूजा - पाठ
III. जाति
IV. विकास परियोजनाओं के नाम पर विस्थापन
V. नक्सलवाद
VI. क्या जंगलों को आदिवासी उजाड़ते हैं ?
4.4.5 आदिवासी साहित्य सम्मेलन
4.4.6 आदिवासी और मीडिया
4.5 ‘मानगढ़ धाम’ (आदिवासी जलियाँवाला) का औचित्य
4.6 ‘खाकी में कलमकार’ में अभिव्यक्त आदिवासी- जीवन संदर्भ
4.7. ‘आदिवासी लोक की यात्राएँ’ में अभिव्यक्त आदिवासी - जीवन
पंचम अध्यायः हरिराम मीणा की कला और भाषा **249-273**
5.1 रचना का विषय, अंतर्वस्तु और लेखक की रचना – दृष्टि का अंतः संबंध
5.2 रचनाओं के नामकरण की सार्थकता
5.3 सरल-रेखा का सौंदर्य और कुछ सवाल
5.4 प्रकृति – चित्रण
5.5 कहावतें और मुहावरेदार भाषा
5.6 शब्द-चयन
5.7 लोक-साहित्य का रचनात्मक उपयोग
5.8 बिंब और प्रतीक

उपसंहार **274-277**

संदर्भ-ग्रंथ सूची **278-280**

I. आधार – ग्रंथ
II. सहायक – ग्रंथ
III. कोश
IV. पत्र – पत्रिकाएँ
V. वेब - सामग्री

परिशिष्ट 1 - लेखक का साक्षात्कार। 281-309

परिशिष्ट 2 – 2 प्रकाशित शोधालेख। 310-

प्रथम अध्याय

आदिवासी-विमर्श : ऐतिहासिक-सामाजिक परिप्रेक्ष्य

'आदिवासी-विमर्श' पर बात करने से पूर्व यह जानना अपेक्षित होगा कि 'विमर्श' शब्द के मायने क्या हैं ? 'विमर्श' शब्द को लेकर अनेक विद्वान एवं विदुषियों ने अनेक प्रकार के मंतव्य रखे हैं। उन्होंने अपनी ओर से अलग-अलग विचार प्रकट किये हैं। हिंदी साहित्य में इस पदावली की चर्चा-परिचर्चा, प्रचार आज प्रचलन में है। खासतौर पर देखा जाय तो विमर्श को एक विचार, वार्तालाप, चर्चा, बातचीत करने के रूप में अधिकतर रचनाकार एवं विद्वतगण मानते हैं।

1.1 'विमर्श' से 'आदिवासी-विमर्श' तक -

'विमर्श' शब्द को अंग्रेजी में 'डिस्कोर्स' के रूप में लिया गया है। "डिस्कोर्स को फादर कामिल बुल्के ने अपने 'अंग्रेजी-हिंदी शब्दकोश' में ये हिंदी समानार्थी दिए हैं- भाषण, प्रवचन, प्रबंध, निबंध। इन संज्ञाओं के क्रिया पद हैं - भाषण देना, बोलना।"[1]

पाश्चात्य विद्वान ल्योतार की दृष्टि से "कुछ नियमों के अनुसार यथार्थ को एक विशेष ढंग से व्यवस्था देने को विमर्श कहा जा सकता है।"[2] इस परिभाषा के साथ-साथ उन्होंने इसकी कुछ विशेषतएँ भी बताई हैं। विमर्श की विशेषताएँ इस प्रकार हैं-

क)."विमर्श से ऐसे नियम बनाते हैं जिनके जरिए औचित्य व्यवस्था की जा सके, कही गई बात या विचार-पदावली या मुहावरे को जिसे औचित्य व्यवस्था से जोड़ा जा सके।

[1] वाक् पत्रिका, अंक-3, वर्ष-2007, पृ सं 225

[2] वाक् पत्रिका, अंक-3, वर्ष-2007, पृ सं 226

ख). वे लक्ष्य प्राप्ति की शर्तों को तय करते हैं । इसका अर्थ यह है कि किसी की बात या विचार को किसी-न-किसी लक्ष्य या उद्देश्य से जोड़कर ही अर्थ बनाया जाता है । ये ही कथित-अकथित शर्तें होती हैं ।"[3]

'विमर्श' को लेकर अनेक विद्वानों एवं विचारकों ने अपने-अपने मंतव्य प्रकट किये हैं। साहित्य के सागर में विमर्श के अंतर्गत भाषा भी नहीं छूट पाई है । प्रो. सुधीश पचौरी के अनुसार-"ल्योतार और फूको विमर्श में भाषा पर जोर देते हैं । एक विमर्श के रूप में भाषा, संस्कृति को और समाज को समझने में बुनियादी भूमिका निभाती है ।"[4]

वर्तमान में आदिवासी-विमर्श के बारे में हर संगोष्ठी में सुनाई दे रहा है । शुरू-शुरू में दलित-विमर्श, स्त्री-विमर्श, अल्पसंख्यक-विमर्श इसके साथ-साथ आदिवासी-विमर्श की बात भी उभर कर सामने आने लगी है । अगर सही में देखा जाय तो साहित्य में विमर्श की जरूरत होती है, तभी कोई छुपे हुई मुद्दे को सामने ला सकते हैं । विमर्श को आधार मानकर ही **विश्व**विद्यालयों, अन्य सरकारी महाविद्यालयों की संगोष्ठियों में विमर्शकार अपनी-अपनी आवाजें स्पष्ट रूप से उठा रहे हैं । आदिवासी समाज के हर पहलू को हम विमर्श के माध्यम से व्यक्त कर सकते हैं । आदिवासियों का जीवन-विधान विमर्श के माध्यम से ही प्रकट होता है । विमर्श के आधार पर उनकी जीवन-संवेदना, संघर्ष, पीड़ाएँ, दुःख-दर्द की संस्कृति को भी हम पूर्ण रूपेण समझकर उसका समाधान भी ढूँढ सकते हैं । 'विमर्श' में ही तमाम सारी बातें सामने आकर चर्चित होती हैं ।

उक्त प्रकरणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि- आदिवासियों के जीवन-शैली को सूक्ष्म तरीके से चारों तरफ से देखना, परखना, समझना एवं मूल्यांकन करना ही आदिवासी-विमर्श है ।

---

[3] वाक् पत्रिका, अंक-3, वर्ष-2007, पृ सं 226

[4] वाक् पत्रिका, अंक-3, वर्ष-2007, पृ सं 226-27

1.2 आदिवासी-विमर्श के उदय के कारण -

सर्वप्रथम हमारे लिए यह जानना अति आवश्यक है कि 'आदिवासी-विमर्श' को हम किस भाषा के साहित्य के संदर्भ में समझने का प्रयत्न करें ? हिंदी-साहित्य में आदिवासी-विमर्श के उदय के कई कारण हमारे सामने मौजूद है । प्रमुख रूप से देखा जाय तो आदिवासी-संस्कृति में वैविध्य है । अगर आदिवासियों को समझना है तो उनकी संस्कृति का मूल्यांकन करना चाहिए । विमर्श का यह भी एक कारण हो सकता है । हमें आदिवासी-संस्कृति का मूल्यांकन करना है तो इससे पहले उनकी जीवन-शैली को समझना, परखना चाहिए । उनका साहित्य मौखिक रूप में आज भी सुरक्षित है । इस साहित्य को हमें समझना चाहिए । जैसे- उनके लोक-गीत, लोक-तत्व, लोक-कथाएँ आज भी प्रासंगिक है । उसको हमें अपनाना चाहिए । वर्तमान में इनकी संस्कृति का मूल्यांकन करना है तो, उनकी लोक-संस्कृति का अध्ययन करना है । यह भी एक मूल कारण है । इस तरह छिपा हुआ मौखिक-साहित्य, विमर्श के माध्यम से समाज के सामने आता है । उनकी संस्कृति का अध्ययन के बिना मूल्यांकन करना संभव नहीं हो सकता है । अध्ययन के बाद ही जो मूल्यांकन होगा वही सफल रहेगा । संस्कृति को लेकर ई.बी.टेलर ने कहा है कि "संस्कृति वह जटिल इकाई है जिसके अन्तर्गत आचार-विचार, विश्वास, रीति-रिवाज, विधि-विधान एवं परंपराएँ आती हैं । इसके अन्तर्गत सभी समताएँ एवं आदतें शामिल हैं।"[5]

आदिवासी-संस्कृति के अध्ययन के बाद ही हम मूल्यांकन कर पायेंगे । मूल्यांकन करने के बाद ही दिमाग में नये विचार उत्पन्न होने लगते हैं । आदिवासी को सभ्य-समाज से जोड़ने का भी रास्ता दिखाई देगा । उनके विकास के लिए नयी-नयी योजनाएं उनके सामने आयेंगी । इसके साथ-साथ उनकी समस्याएँ, जरूरतें, सोच-विचार हमारे समझ में आ पायेंगे । आगे जाकर उन लोगों के लिए कुछ कार्य करने की योजनाएँ बन सकती हैं ।

---

[5] आदिवासी कौन, पृ सं 37

कोई भी आदमी आदिवासी हो या ग़ैर - आदिवासी हो वह जन्म से ही लड़ना सीखता है । संस्कृति ही उन्हें जिंदगी से लड़ना सीखाती है । जो आदमी काल के साथ लड़ेगा वह आगे बढ़ेगा । जो नहीं लड़ता है वह मरेगा या लाश की तरह रहेगा । विद्रोह या आंदोलन जन्म-जात प्रवृत्ति के रूप में है । वह जन्मजात से, उत्पन्न होने वाली एक शक्ति का रूप है । इसलिए इन्सान का हर-पहलू, हर-भाग, हर-हिस्सा प्रकृति पर निर्भर है । मानव ने जो भी सीखा प्रकृति एवं संस्कृति के गोद में ही सीखा है । इसलिए इनकी संस्कृति का मूल्यांकन करना है तो उनकी लोक-संस्कृति का अध्ययन करना जरूरी है, तभी हम उनके बारे में पूर्णरूपेण समझ पायेंगे । साथ-साथ ही आगे जाकर कुछ सुझाव दे पायेंगे ।

हिंदी साहित्य में वर्तमान में विमर्श पर जोर दिया जा रहा है । शुरूआत में दलित समाज ने अपने ऊपर होने वाले दमन, अन्याय, शोषण, छूआछूत की समस्या, भेद - भाव से मुक्ति पाने हेतु दलित - विमर्श के आधार पर सबसे पहले साहित्य में अपनी पहचान कायम की । उसके बाद आते-आते कालांतर के अन्तर्गत स्त्री पर होने वाले दबाव, अत्याचार, शोषण, शोषण से मुक्ति होने के लिए स्त्री-विमर्श भी उभरकर सामने आ रहा है । वर्तमान-संदर्भ में स्त्रियाँ अपने हक के लिए लड़ रही हैं । इस तरह से विमर्श की ताकत आज बढ़ रही है । इन दो विमर्शों के बावजूद आदिवासी भी अपनी समस्या, अस्तित्व, संकट एवं शोषण के विरोध में आदिवासी-विमर्श को लेकर हमारे सामने आ रहा है ।

जब से समस्या उत्पन्न होकर विस्तृत रूप लेने लगती है तभी से उनके विरूद्ध विमर्श के रूप में आवाजें उठती हैं । इस तरह साहित्य में दलित-समस्या एवं आदिवासी-समस्या को लेकर विमर्श का उदय हुआ है । यहाँ से साहित्य में विमर्श के ऊपर चर्चा होने लगी और आगे भी होती रहेगी । विमर्श के उदय के यही तीन मूल कारण हमारे सामने प्रस्तुत हैं । एक समाज या समूह ने अन्याय, शोषण के विरूद्ध जब आंदोलन किए, तभी से विमर्श की शुरूआत हुई है ।

एक वर्ग या जन-समूह लोगों के दबाव, दमन, कुटिल नीति के विरूद्ध जबसे विद्रोह करने लगे तभी से विमर्श की शुरूआत हुई है । विमर्श की वजह से भी विद्रोह आंदोलन के

रूप में जोर पकड़ने लगा है । चारों तरफ फैल के सफलता की ओर अग्रसर हो रहा है । आदिवासी एवं दिकू लोगों के बीच घटित बहुत सारे आंदोलनों को हम देख सकते हैं । जैसे-"आदिवासी इलाकों में बढ़ते अंग्रेजों के कदमों के साथ-साथ उनके विरूद्ध विद्रोहों का सिलसिला भी बढ़ता गया । 'पहाड़िया विद्रोह' (1788-90), 'चुआड़ विद्रोह'(1798), 'चेरो विद्रोह'(1800) इन विद्रोहों का झंडा झुका नहीं तो इसका एक मात्र कारण था कि संताल औरतें पीठ पर बच्चा बांधकर पुरूषों का साथ दे रही थीं ।....महाजनों और सामंतों के शोषण ने उनकी जिंदगी नारकीय बना दी । जिसके खिलाफ संतालों का गुस्सा 1854 में मोरगो मांझी और बीर सिंह मांझी का दीकू लोगों के विरूद्ध आंदोलन और 1855 में महान संताल विद्रोह के रूप में सामने आया ।"[6] उपरोक्त बातों से ज्ञात होता है कि दिकू लोगों ने सबसे पहले अपना व्यापार-धंधा एवं धनार्जन के लिए अपनी नज़र जंगल पर रखी है । छल, कपट के साथ-साथ ज़मींदारों के सहयोग से जंगल को वे हस्तगत करने लगे, इसके साथ-साथ वहाँ के मूल निवासियों को कष्ट पहुँचाने लगे । आखिर में उनकी संपदा लूटने के साथ-साथ जो आदिवासी वहाँ रहते हुए आ रहे थे उनके जंगल में प्रवेश पर रोक लगा दी थी । धीरे-धीरे उनकी स्थिति यह बन गई थी कि वे अस्तित्व खोने की कगार पर हैं । उनके पास अब एक ही रास्ता है या तो विद्रोह करना या तो मरना । इस तरह वे दमनकारी सत्ताओं के विरूद्ध आवाज उठाने लगे हैं । इस तरह के आंदोलन, चर्चा, विचारों के माध्यम से ही विमर्श की शुरूआत हुई है । यह भी विमर्श के उदय का एक मूल कारण माना जा सकता है ।

अतीत में देखा जाय तो 'जंगल के दावेदार' के नायक बिरसा मुण्डा ने (1895-1900) आदिवासियों को नेतृत्व प्रदान करके उन्हें आंदोलन की ओर अग्रसरित किया था । 'मानगढ़ बलिदान' का नायक गोविंद गुरु ने 1913 में अपने नेतृत्व में आदिवासियों को शांतिपूर्ण आंदोलन की ओर अग्रसरित किया था । इनके साथ-साथ टंट्या मामा ने भी दिकुओं के खिलाफ आंदोलन का बिगुला बजाया था । इन तीनों ने आदिवासियों के

[6] इस्पातिका-अंक-1, वर्ष 2, जनवरी-जून-2012, पृ सं 105-106

आंदोलन का नेतृत्व किया था। वर्तमान में हम अतीत में जो हुए विद्रोह और आंदोलनों को उसी रूप में नहीं ले सकते हैं। क्योंकि आज के समय के अनुसार हमें लेखनी के माध्यम से आंदोलन करना चाहिए।

वर्तमान समय में अनेक आदिवासी एवं ग़ैर-आदिवासी रचनाकार अपने लेखन में आदिवासी समस्याओं को समाज के सामने प्रस्तुत कर रहे हैं। रचनाकारों के लेखन से ही आदिवासी-विमर्श उभरकर हमारे समाज के सामने आ रहा है। आदिवासी को केन्द्र में रखकर रचना करने वाले रचनाकार तो वर्तमान में बहुत सारे दिखाई देते हैं। लेकिन कुछ ही रचनाकार आदिवासी-समस्या को केन्द्र में रखकर अपनी रचना के माध्यम से आंदोलन करते आ रहे हैं। जैसे- प्रख्यात रचनाकार वेरियर एलविन, गोपीनाथ महंति, महाश्वेता देवी, रामदयाल मुंडा, तेमसुल आओ रमणिका गुप्ता, हरिराम मीणा, निर्मला पुतुल आदि। वर्तमान-संदर्भ में आदिवासियों की ताकत रचनाकार ही हैं। एक रचनाकार या एक आदिवासी नायक उनकी ताकत बढ़ा भी सकता है और घटा भी सकता है। इस तरह किसी समूह या वर्ग को ताकतवर एवं मजबूत करना भी इन लोगों के ऊपर निर्भर है।

वर्तमान के संदर्भ में एक रचनाकार ही उनकी जीवन-शैली, समस्या, संस्कृति को अपनी लेखनी के माध्यम से समाज के सामने ला सकता है। उपरोक्त बताए गए रचनाकारों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से आदिवासियों के प्रति होने वाले अन्याय एवं शोषण के विरूद्ध आंदोलन व्यक्त किया है। अपनी लेखनी के माध्यम से उनकी आवाजों को सरकारी संसद तक पहुँचाया है। इसका मूल उद्देश्य ये है कि आगे जो कुछ योजनाएँ बने उसमें आदिवासी के फायदा के लिए भी कुछ कार्य शुरु हो सके। कुछ रचनाकार अपनी रचनाओं से भी 'तीर' चलाते हैं। जैसे- हरिराम मीणा ने जितनी भी रचनाएँ की हैं उसमें कुछ-न-कुछ तो मूल समस्या को वे उठाते हैं। वह तीर जिसको चुभना उसको जरूर चुभता है। आदिवासी-लेखन का जो लोग विरोध करते हैं उनको जरूर उनका लेखन चोट पहुँचाता है। जिस रचनाकार की रचना अधिकतर यथार्थ के निकट है वही रचना दिकुओं को तीर की तरह चुभती है। इस तरह आज कल के रचनाकार आदिवासी समस्या को अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज के सामने ला रहे हैं। अधिकतर रचनाओं में विमर्श

जरूर दिखाई देता है। इस वजह से आंदोलन चारों तरफ फैल रहा है। इस तरह रचना - कार्य आगे बढ़ेगा, तो आदिवासी सफलता की ओर अग्रसर होगा।

भारतीय समाज की संरचना को समग्रता में समझना है तो किसी एक समूह या वर्ग को नहीं छोड़ सकते हैं। सामाजिक-संरचना के लिए पिछड़े हुए समूह को भी शामिल करना चाहिए। दलित और आदिवासी समाज को नहीं छोड़ सकते हैं। इसलिए आदिवासी समाज का भी अध्ययन करना है। आदिवासी समाज मुख्यधारा के समाज से बहुत दूर कंदराओं में बसा है। इसलिए उनके बारे में पढ़ना है। उनकी संस्कृति का अध्ययन करना है, तभी विमर्श उभरकर सामने आता है। उनके समाज में प्रवेश कर उनकी जीवन-स्थिति, दुःख-सुख, संवेदना, संस्कृति को समझना और परखना चाहिए। इस तरह के कार्य की वजह से आदिवासी समाज, मुख्यधारा के समाज से परिचित होता है।

जंगल में प्रवेश करने के बाद ही पता चलता है कि उनकी संवेदना, आकांक्षा, संस्कृति को समझकर बाहरी दुनिया में लाने का रचनाकार प्रयास कर सकते हैं। इस कारण से आने वाले दिनों में उनके हितों के लिए भी सहयोग मिलेगा। उनका दयनीय जीवन समाज के सामने आयेगा। उनके जीवन को सुधार के लिए, नई कार्य प्रणाली लागू हो सकती है। इस तरह आदिवासी-विमर्श अग्रसर होता रहेगा जो अभी तक अज्ञात चीज या विषयों से भी ज्ञात हो सकता है छिपी हुई कई सारी बातें सामने आयेंगी।

विमर्श के आविर्भाव या उदय के लिए पर्यावरण-असंतुलन भी एक कारण हो सकता है। जब से मुख्यधारा का समाज आदिवासी समाज से जुड़ने लग रहा है, तभी से इस समाज का असंतुलन शुरू हो गया। दिकू लोगों ने जंगल में प्रवेश करके जंगल को अपने कब्जे में रखकर व्यापार का धंधा शुरू किया है। इस वजह से लाखों आदिवासी अपनी ज़मीन से बेदखल हुए हैं। इनके जल, जंगल, ज़मीन भी धोखे बाजी से इन्होंने हस्तगत कर लिया है। दिकू लोगों के मन में एक ही विचार था वह है- धन कमाना एवं वन-संपदा को लूटना। इस कारण की वजह से इस वर्ग ने आदिवासियों को अनेक यातनाएँ पहुँचाई हैं। आदिवासी जहाँ बसते, वहाँ धन ही धन है उनके इलाकों में वस्तु

रूप में धन-खनिज छिपा हुआ है । ये लोग स्वच्छ एवं शांत वातावरण में अपना जीवन बिताते हैं । लेकिन आदिवासी जहाँ रहते हैं वहाँ 'दिकू' लोग अपने स्वार्थ, अपनी कमाई, अपने हितों के लिए पर्यावरण को बिगाड़ रहे हैं । इसका परिणाम प्रत्येक जीवों के ऊपर दिखाई देता है । वातावरण के प्रदूषण की वजह से 'जीव कोटि' का विनाश शुरू होता है । वर्तमान में मुख्यधारा का समाज तो प्रदूषित है लेकिन अब जंगल भी नष्ट होकर खत्म होने की कगार पर है । 'दिकू' लोग जहाँ खनिज - संपदा है, वहाँ अपनी ताकत से कंपनियों को बसा के आस-पास के प्रदेशों को प्रदूषित कर रहे हैं । इसके द्वारा उत्पन्न होने वाले दुष्परिणाम को आम जनता को झेलना पड़ता है ।

आदिवासी विषय पर निरंतर चिंतन करने वाली रमणिका गुप्ता लिखती हैं कि "जिस धरती पर वे बसते हैं, उसके गर्भ में खनिज है यानि सम्पदा है ऊपर नदियाँ और जंगल हैं-पर वहाँ उनका प्रवेश वर्जित है । नदियाँ कोयले की धूल से काली होकर प्रदूषित हो गई । उनका पानी किसी काम का न रहा, जंगल कट गए, जमीनें गड्ढा और पोखर बना दी गईं । खेत धँस गए, पानी के स्रोत सूख गए या नीचे चले गए या पहुँच के बाहर हो गए । आग पर बैठा है आज इस क्षेत्र का आदमी । धरती के नीचे आग लगी है- कब धँस जाएगी धरती-पता नहीं है ।"[7] उपरोक्त बातों से ज्ञात होता है कि आज प्राणी संकटापन्न स्थिति में हैं । जंगल का ही नाश होगा तो जीव-जंतु की स्थिति क्या होगी ? आने वाले परिणाम के बारे में सोच भी नहीं सकते हैं । इस तरह के संकटों को आंदोलन और विमर्श के माध्यम से रोक सकते हैं । इस तरह की अन्य कुटिल नीति के विरूद्ध आवाज उठाना यही एक ही मार्ग बचा है । इस तरह के पर्यावरण-प्रदूषण की वजह से अनेक बीमारियाँ फैलती हैं। मृत्यु - संख्या बढ़ती है। प्रकृति एवं फसल खराब होती है। वर्तमान में सरकार भी बड़ी-बड़ी कंपनियों को, परियोजना के नाम पर जंगल को साफ करा रही है । इस तरह के कार्यक्रम को लेखनी रूपी विद्रोह के माध्यम से ही रोक सकते हैं । भविष्य में आगे

---

[7] आदिवासी विकास से विस्थापन, पृ सं 10

अगर इस धरा पर जीवों को देखना है तो पर्यावरण और मानव विरोधी गतिविधियों को रोकना ही होगा।

1.3 आदिवासी - विमर्श : ऐतिहासिक-अनिवार्यता -

वर्तमान में आदिवासी-विमर्श को ऐतिहासिक रूप से अध्ययन करना चाहिए तभी आगे कुछ बन सकता है। इतिहास में देखा जाय तो कहीं-कहीं आदिवासियों का ज़िक्र दिखाई देता है। तो यहाँ सवाल यह उठता है कि उस समय आदिवासी को किस रूप में दिखाया गया है ? हमें इसको समझना चाहिए। उस समय साहित्य में इनका चित्रण जानवरों से भी हीन स्थिति में किया गया है। ऐतिहासिक, पौराणिक प्रमुख ग्रंथ- 'रामायण' और 'महाभारत' में इनको 'असुर', 'राक्षस', 'दानव', 'रीछ', 'भालू' एवं 'असभ्य' आदि नाम दिया गया है। इन बातों से समझ में यह आता है कि प्राचीन काल से ही आदिवासियों के अस्तित्व एवं मानवतावाद को समाप्त करने का प्रयत्न रहा है। ईसा पूर्व से लेकर अब तक आदिवासियों को ये नाम, वो नाम और आरोप लगा के उनकी हत्या की जा रही है। इस तरह का संकट आदिवासी को छोड़कर कोई दूसरा प्राणी या समाज शायद नहीं झेला होगा। आज इन विषयों को लेकर चर्चा करना जरूरी है।

स्वतंत्रता-पूर्व से लेकर स्वतंत्रता के पश्चात् तक आदिवासी अपना अस्तित्व बचाने के लिए अनेक विद्रोह, आंदोलन, युद्ध किये हैं। लेकिन आदिवासी द्वारा किये गये आंदोलनों का ज़िक्र हमें कहीं साहित्य में नजर नहीं आता है। इस तरह अन्याय को हम खुद ही समझ सकते हैं। जागीरदार, ज़मींदार, ठाकुर, अंग्रेज लोगों से भी आदिवासी लड़े हैं लेकिन इसका ज़िक्र कहीं दिखाई नहीं देता है। आदिवासियों का नेतृत्व करने वाले नायक, योद्धाओं के कई नाम आदिवासियों के ज़ुबान पर है इसके साथ-साथ उनके इलाकों में अपने योद्धाओं की तस्वीर नजर आती है। लेकिन उनके बारे में चर्चा न तो कहीं दिखाई देती है या सुनाई देती है। आदिवासियों के लिए अपनी जान सहित बलिदान किए हुए नेताओं को हम देख सकते हैं। जैसे- बिरसा मुंडा, टंट्या मामा, गोविंद गुरू आदि नायकों

के साहस एवं धैर्य को चित्रण करने की क्षमता, ताकत, मनोबल एवं धीरज शायद किसी साहित्यकार के पास नहीं रहा होगा !

1857 के स्वतंत्रता-संग्राम में अनेक आदिवासी समूहों ने शामिल होके अंग्रेजों का विरोध किया था । अनेक लोग शहीद हुए थे । लेकिन इस तरह अपनी धरती, अपना अस्तित्व बचाने के लिए जिन वीरों ने प्राण त्याग किए हैं महान योद्धओं का ज़िक्र ही हमें कहीं देखने को नहीं मिलता है । इस तरह की भूलें भी हमें साहित्य में दिखाई देती हैं । इस तरह के तमाम कारणों की वजह से आज ऐतिहासिक-विमर्श की अनिवार्यता है । इसका मूल उद्देश्य यह है कि ऐतिहासिक भूल एवं त्रुटियों को सुधारना है । उस समय की वास्तविकता एवं सच्चाई को सामने लाना है । इतिहास को जिन्होंने भी लिखा हो लेकिन आदिवासियों का इस तरह चित्रण करना गलत है । उस समय लिखा गया नकली साहित्य को आज सही तरह से मूल्यांकन करके असली रूप देकर सच्चा साहित्य का निर्माण करना चाहिए । समाज में चारों तरफ का वर्णन साहित्य में रहता है । वह वर्णन अपनी मनमर्जी के अनुसार, भेदभावपूर्ण चित्रण होगा तो वह सच्चा इतिहास या साहित्य नहीं कहलाया जाता है । प्राचीनकाल में लिखा गया साहित्य मनमर्जी का साहित्य, भेदभावपूर्ण साहित्य है । अधिकतर साहित्य हमें वर्ण-व्यवस्था के आधार पर ही दिखाई देता है । इसलिए विमर्श के माध्यम से उन भूलों को याद दिला के गलत को सही रूप दे सकते हैं । "इतिहासकार के संस्कार, सोच, दृष्टि और विचारधारा प्रत्यक्ष-परोक्ष या जाने- अनजाने समाविष्ट होकर रचे जा रहे इतिहास को प्रभावित करने लगते हैं । यह किसी के साथ भी हो सकता है । इस उलझन से बचने के लिए हमें वाद-विवाद-संवाद की मेथोडोलॉजी को अपनाकर, उसके माध्यम से विभिन्न दृष्टिकोणों से लिखे और अनलिखे इतिहास का विश्लेषण करके निष्कर्ष तक पहुँचना चाहिए, जो बौद्धिक-तार्किक व तथ्यात्मक-वैज्ञानिक तुला पर खरा उतरे पढ़-सुनकर लगे कि हाँ, यह प्रामाणिकता है, इसे स्वीकार करने में कोई हिचक नहीं ।"[8]

[8] आदिवासी कौन, पृ सं 139

आदिवासियों के साथ आर्यों ने लड़ाई लड़कर, उनकी ज़मीन को छीनकर, उन्हें जंगल में भगाया था। आर्य एवं अनार्य के बीच जो युद्ध हुआ है उसमें लाखों आदिवासी मरे थे। जो बचे थे वे डर के मारे जंगल में भाग गये थे। उस समय से आदिवासी को समाज में उचित स्थान नहीं मिला। उस वजह से ये लोग सभ्य समाज से दूर हो गये। उस समय से ही ये लोग अपना जीवन अलग तरह से निभाना शुरू किये थे। हजारों साल बीत गए लेकिन आदिवासी समाज मुख्यधारा के समाज से जुड़ा ही नहीं और जुड़ना भी नहीं चाहता है। इसके पीछे कई कारणों को देख सकते हैं। यह भी एक तरह की समस्या है। ज्ञात इतिहास से लेकर अब तक देखा जाय तो किसी भी आंदोलन का नेतृत्व करने वाले नायक के ऊपर गलत आरोप थोपकर फाँसी दी गयी है या कूटनीति से उसकी हत्या की गयी है। इसके साथ-साथ आदिवासी ने 'दिकू' लोगों के खिलाफ यथा - ठाकुर, ज़मींदार और जागीरदार के खिलाफ़ भी विद्रोह किये हैं। जो समूह विद्रोह करता है उसके ऊपर मुख्यधारा का समाज गलत फहमी पैदा करता है और उनके अस्तित्व को नष्ट या समाप्त करने के लिए अबाध सोचता आ रहा है। यही नीति आदिवासियों के साथ लागू की है। इस तरह के यथार्थ को विजयदेव नारायण साही की **'छापामार दस्ते'** कविता के माध्यम से समझ सकते हैं-"तुम हमारा ज़िक्र इतिहासों में / नहीं पाओगे / और न उस कराह का / जो तुमने आज रात सुनी / क्योंकि हमने अपने को / इतिहासों के विरूद्ध दे दिया है... ।"[9] उपरोक्त पंक्तियों से पता चलता है कि आदिवासियों को समाज के साथ-साथ साहित्य में भी जगह नहीं मिली है यह गहराई से सोचने की बात है कि स्वतंत्रता-पूर्व से लेकर अब तक देश के अस्तित्व एवं हित के लिए जितने वर्ग, समूह, योद्धा लड़े हैं, उन सबको साहित्य में जगह नहीं मिली हैं ! एक आदिवासी को न्याय सम्मत जो जगह मिलनी थी, वह नहीं मिल पाई। साहित्य में भी साहित्यकारों ने आदिवासियों के खिलाफ पक्षपात दिखाया है।

---

[9] मछलीघर - पृ सं 89

'मिथकों' में आदिवासियों के विद्रोहों का चित्रण एवं समूह के योद्धाओं को साहित्य में उचित जगह नहीं मिली है इस तरह की भूलों को कई उदाहरणों के माध्यम से समझ सकते हैं । जैसे- महायोद्धा घटोत्कच के पुत्र बर्बरीक का चित्रण हर आदिवासी को दुःख पहुँचाता है । आदिवासी दिमाग से कमजोर है, शरीर से शक्तिशाली है । इसका फायदा उठाने के लिए भगवान कहलाने वाले कृष्ण, पक्षपात और कुटिल नीति अपनाकर एक आदिवासी के सामने भिक्षुक बनकर बर्बरीक का शीश माँगता है । इसका मूल उद्देश्य यह है कि - कौरवों की हार एवं पांडवों की जीत । इस संदर्भ में बर्बरीक से उत्तर मिलता है कि "आप तो भगवान हैं, जो करेंगे ठीक ही होगा । मेरी इतनी-सी इच्छा है कि मैं दोनों ओर से लड़ रहे इन बड़े-बड़े धुरंधरों की लड़ाई देखूँ । मैं इनकी बहदुरी देखना चाहता हूँ ।"[10] उपरोक्त प्रसंग से पता चलता है कि आदिवसी योद्धाओं या वीरों ने जिस के भी ऊपर विश्वास रखा था, वही उनके ऊपर विष का प्रयोग किया या विनाश का पात्र बना । इससे और एक - दूसरी बात समझ में आती है कि ये लोग जिसका चित्रण हीन, असुर, असभ्य के रूप में किया है । उनके हाथों से हारना नहीं चाहते हैं । सच बात यह है कि आदिवासी योद्धाओं के सामने ये लोग टिक नहीं पाये होंगे । इस कारण के वजह से एक-दूसरे के साथ सहमति से षड्यंत्र रचकर उनकी हत्याएँ की गयी थीं । उन जाति और समूहों का नाश किया गया था । उनके ऊपर आरोप लगा के उनको कमजोर कर दिया गया था । लेकिन इसका असली चित्रण साहित्यिक-ग्रंथों में नहीं है । वर्तमान में इसका मूल्यांकन एक तथ्य परक विश्लेषण की माँग करता है ।

महाभारत में देखा जाय तो और एक झूठ का प्रसंग हमारे सामने आता है, वह है- 'एकलव्य'-प्रसंग । इतिहास में 'एकलव्य' के प्रसंग के बारे में सब लोग सुने हैं । इसको गहराई से देखा जाय तो सच्चाई से दूर, झूठ की निकटता सामने आती है । आदिवासियों का प्रतीक 'तीर' माना जाता है । 'तीर' चलाने वाले योद्धा के रूप में एकलव्य प्रचलित है । एकलव्य धनुर्विद्या सीखने के लिए द्रोणाचार्य के पास जाता है लेकिन द्रोणाचार्य अपने मन में ही मंथन कर लिया था । उन्होंने जातिवाद का चिंतन करके उसको मना कर दिया ।

[10] आदिवासी कौन, पृ सं 141

इस वजह से एकलव्य ने हार मानी ही नहीं अपने लक्ष्य पर ध्यान देकर धनुर्विद्या सीख ली। कालांतर में **विश्व** विख्यात धनुर्धर के रूप में प्रचलित हुआ। इससे जो कोई लड़ेगा तो जीत का सपना भी नहीं देख सकता था। इस तरह के महान योद्धा का किस तरह अंग - वैकल्य किया जाये। इसे आदिवासी चिंतक हरिराम मीणा के उद्धरण से समझ सकते हैं- "महाभारत में चिरपरिचित एकलव्य का प्रसंग आता है। आर्यगुरू ने धनुर्विद्या सीखाने से मना कर दिया। निषादराजपुत्र से फिर भी उसको गुरू मनवा दिया और अपने बलबूते पर धनुर्धर बन जाने पर भी बतौर दक्षिणा अँगूठा काटकर दिलवा दिया। कान पक गए यह कथा सुनते-सुनते। मेरे गले यह कथा इस रूप में कतई नहीं उतरती। तर्कसम्मत यह लगता है कि एकलव्य का अँगूठा जबरन काटा होगा। इस जघन्य अपराध को ढँकने के लिए तथाकथित दक्षिणा का स्वांग रचकर थोप दिया गया। ध्यान देने की बात है कि महाभारत युद्ध में अधिकांश आदिवासी क़ौरवों के द्रोणाचार्य ने माँगा या करवाया होता तो वह कदापि उसकी सेना के पक्ष में न लड़ता। अँगूठा काटनेवाला पांडव था, इसलिए वह पांडवों के विरूद्ध लड़ा।"[11] उपरोक्त बताई गई हरिराम मीणा की बात सच लगती है। इस तरह अनेक षड्यंत्रों को रचकर आदिवासी योद्धाओं को उनमें फँसाकर आर्य कहलाने वालों ने उन्हें मार डाला। तत्पश्चात् उनके समूहों को अनेक कठिनाइयाँ पहुँचाई हैं, यह सत्य है।

अगर सही से देखा जाय तो जितने भी प्रमुख युद्ध हुए हैं उस में आदिवासी शामिल है। बाहरी लोगों के खिलाफ आंदोलन करना या युद्ध करना आदिवासियों से ही शुरू हुआ है। ये लोग शुरूआत से ही आर्यों से उसके बाद अंग्रेजों से इनके तत्पश्चात् सरकार और पूँजीपति के विरूद्ध भी आंदोलन कर रहे हैं। इनके साथ जो लड़े योद्धाओं एवं समूहों का चित्रण साहित्य में, हमें दिखाई नहीं देता है। आदिवासी नामों के जगह और किसी का नाम दिखाई देता है। इन पहलुओं से ही पता चलता है कि आदिवासियों के लिए ये कौनसा षड्यंत्र अपना रहे हैं ? आदिवासियों द्वारा किया गया आंदोलन वर्तमान में हमें

[11] आदिवासी कौन, पृ सं 140

नजर आता है । “विद्रोह के आलेखों में आदिवासियों का उल्लेख नहीं हुआ है, लेकिन जनजातियों के शोषण की चर्चा जरूर की गई है जो जनजातियाँ आज आदिवासी कहलाती हैं ।”[12] उपरोक्त बातों से पता चलता है कि साहित्य में स्थान जिसको मिलना था, उसको नहीं मिल पाया । जिसको नहीं मिलना था उसको मिल गया । इस तरह का कार्य रूप भी साहित्य में होता रहा है । आदिवासियों के खिलाफ आज आदिवासी से लेकर ग़ैर- आदिवासी भी सवाल उठा रहे हैं । ख़ैर ये अलग बात है । इस तरह की वेदना और सहयोग प्राचीन काल से होता तो आज के आदिवासी की स्थिति इस तरह की नहीं रहती। हम कुमार सुरेश सिंह के शब्दों को इस तरह देख सकते हैं- “जिस आदिवासी धारणा से आज हम परिचित हैं वह 19 वीं सदी के अंत तक नहीं बनी थी । जनजातीय विद्रोहों का सरकारी दस्तावेजों में कई नामों से उल्लेख किया गया है- कोल, भूमिज, संथाल, भील या गोंड । हालांकि इन नामों के ज़िक्र मात्र से अधिकारियों के मन में उन जनजातियों के जनसाधारण का बोध होता है जो मार-धाड़ करने वाले हैं, लड़ाकू जातियों के लोग हिंसक बदला लेने वाले और अधिक उत्तेजित हो जाने वाले , सुदूर प्रांतों में रहने वाले पिछड़े लोग हैं, और मुख्य सभ्यता से अभी नहीं जुड़ पाए हैं । कुल मिलाकर ‘आदिवासी ’ शब्द की अवधारणा इन्हीं तत्वों को मिलाकर बनी है ।”[13] इनकी बातों से पता चलता है कि आदिवासियों को अनेक नाम देकर उनको कमजोर किया गया है । उनके ऊपर गलत फहमी थोपकर उनकी हत्या की गई है । भुजंग मेश्राम की कविता इस संदर्भ में उपयुक्त है-

“बिरसा तुम्हें कहीं से भी / आना होगा / घास काटती दराती हो या / लकड़ी काटती कुल्हाड़ी / खेत-खलिहान से, मजदूरी से / दिशा-दिशाओं से / गैलरी में लाए गोटुली रंग से

[12] अरावली उद्घोष(त्रैमासिक) वर्ष-24-अंक-95, जनवरी-2012, पृ सं 18

[13] अरावली उद्घोष(त्रैमासिक) वर्ष-24-अंक-95, जनवरी-2012, पृ सं 18

/ कारीगर की भट्टी से / यहाँ-वहाँ से / पूरब-पश्चिम-उत्तर-दक्खिन से / कहीं से भी आ मेरे बिरसा / खेतों की बयार बन कर / लोग तेरी वाट जोहते !"[14]

बिरसा का आंदोलन 1895-1900 ई. तक चला है। इतने कम समय में ही बिरसा एक योद्धा एवं भगवान के रूप में प्रचलित हो गया। बिरसा के बारे में नहीं जानने वाला कोई भी आदिवासी नहीं मिलता है। हर आदिवासी के ऊपर बिरसा का प्रभाव दिखाई देता है। उन्होंने अंग्रेजों एवं जमींदारों के विरूद्ध लड़ाई लड़ी थी। इनका मूल उद्देश्य था- मुण्डाओं के अस्तित्व का संरक्षण के साथ-साथ उनको संगठित करके अंग्रेजों को चेतावनी देना। अंग्रेजों ने उन्हें षड्यंत्र करके पकड़ लिया था। जेल में बिरसा को किस तरह षड्यंत्र रचकर उनकी हत्या की गई है इसे आदिवासी रचनाकार हरिराम मीणा के लेखन के माध्यम से समझ सकते हैं। जैसे-"अंततः बिरसा को धोखे से गिरफ्तार कर लिया गया। अंग्रेजों के पास तथाकथित मुकदमों की सुनवाई का वक्त भी नहीं था। दिनांक 9 जून, 1900 ई. को उन्होंने राँची की जेल में बिरसा को जहर देकर मार दिया और प्रचार किया कि वह हैजा की बीमारी से मर गया।"[15] यह बात सुनते ही सच्चाई के निकट लगती है। अंग्रेजों ने बिरसा की हत्या करके उनके ऊपर गलत आरोप लगाकर आदिवासी आंदोलन को कुचल दिया था। बिरसा के हत्या का सही ज़िक्र हमें कहीं-नहीं मिलता है। अगर आदिवासी को सही पता चल गया तो इन आदिवासियों से कोई नहीं बच पायेंगे। अगर बिरसा बाहर रहेगा तो आंदोलन, अधिकारियों के हाथ में नहीं आयेगा। इस तरह का विचार करके उनको विष देकर हत्या की गई है। उसके बाद गलत समाचार आदिवासियों को दिया गया है। इनके आंदोलन के बारे में, मृत्यु घटना को लेकर साहित्य में कहीं नजर नहीं आता है। इसलिए ऐतिहासिक-विमर्श एवं मूल्यांकन होना चाहिए, तभी साहित्य में सुधार होगा।

प्राचीन काल में साहित्य से लेकर समाज तक आदिवासियों की स्थिति एवं जीवन के ऊपर मानवीय दृष्टिकोण कैसा रहा होगा इसे आदिवासी चिंतक हरिराम मीणा के

[14] समकालीन आदिवासी कविता- पृ सं 34
[15] आदिवासी दुनिया, पृ सं 69

अनुसार समझ सकते हैं,“भारतीय समाज के सन्दर्भ में आदिवासियों पर ब्रिटिश काल से पहले कोई व्यवस्थित अध्ययन नहीं हुआ। पौराणिक काल में सुरासुर- संग्राम-श्रृंखला एवं महाकाव्य काल के सन्दर्भों के अलावा कोई उदाहरण हमारे सामने नहीं है। यह भी उल्लेखनीय है कि ब्रिटिश काल से पहले के इतिहास में आदिवासी समाज को लेकर कोई विमर्श सामने नहीं आया। समाज के प्रबुद्ध वर्ग व राजसत्ता ने भी इस समाज की ओर कोई ध्यान देने की आवश्यकता नहीं समझी। इसका परिणाम है कि आदिवासी समुदाय अपने अतीत-कालीन जंगल, पहाड़ी इलाकों में रहते चले आये। इसके दो पहलू खासकर उभरकर सामने आते हैं। सुखद पहलू यह है कि शेष समाज या व्यवस्था ने किसी भी स्तर पर आदिवासी समाज के जीवन में हस्तक्षेप नहीं के बराबर किया। यही कारण रहा कि आदिवासी-संस्कृति, परम्परा व जीवन-शैली संरक्षित व अप्रभावित रहती चली आई। इसका दुखद पहलू यह रहा कि विकास की धारा से आदिवासी समाज अलग-थलग पड़ा रहा।”[16]

अभी तक देखे गए मुद्दों से पता चलता है कि आदिवासी समाज तक साहित्यकारों की दृष्टि नहीं पहुँची है लेकिन इसके साथ-साथ ब्रिटिश शासन काल में अंग्रेजों के अलावा, देश के महान नायकों का भी इस ओर ध्यान नहीं गया था। आदिवासी हित के लिए कोई कार्य योजना नहीं शुरू की गई है। इस तरह की यथार्थ बातें आज के लेखन में उभरकर सामने आ रही हैं। जैसे- “यहाँ तक की उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम व बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में सामाजिक एवं राजनीतिक चिंतकों तथा नेताओँ द्वारा कदाचित थोड़ा भी ध्यान उन पर नहीं दिया गया। इस प्रकार हम देखते हैं सुरेन्द्र नाथ बनर्जी, अरविन्द घोष, विपिन चन्द्र पाल, एम.जी. रानाडे, गोपाल कृष्ण गोखले, बाल गंगाधर तिलक तथा हमारे अन्य अनेक चिंतक तथा नेतागण अपने जनजातीय साथी देशवासियों के प्रति न तो बहुत जागरूक रहे और न ही उनसे कोई विशेष सरोकार रख सके।”[17] उपरोक्त बातों से

---

[16] इस्पातिका, अंक-1, वर्ष 2, जनवरी-जून,2012, पृ सं 85

[17] जनजातीय भारत (आठवाँ संस्करण)- पृ सं xviii

पता चलता है कि सौ साल से पूर्व ही यही स्थिति है तो उसके पहले की आदिवासी स्थिति के बारे में सोच भी नहीं सकते हैं। बाद में उनके नाम पर जितनी भी योजनाएँ बनी होगी इनका फायदा आदिवासियों को सीमित मात्रा में मिला है। समाज में बड़े लोग कहलाने वालों ने आदिवासियों को बाढ़ के सामने खड़ा कर दिया है। उनके कंधे पर बंदूक चला के उन्हें समाज से बेदखल कर दिया गया।

उपरोक्त बतायी गई घटनाओं के साथ-साथ और बहुत सारे आंदोलन हैं जो हमें साहित्य, इतिहास - लेखन में नजर नहीं आते हैं। इस तरह के मूल कारणों की वजह से वर्तमान समय में साहित्यिक-ऐतिहासिक विमर्श जरूर होना चाहिए । बड़े-बड़े साहित्यकार, इतिहासकार कहलाने वाले लोगों को समाज के हर हिस्सा, हर पहलू और समाज से जुड़े वर्ग से लेकर अपनी रचना करते-करते बुढ़ापा आ गया हो ! उसके बाद उनकी नजरें शायद कमजोर होने लगी होगीं ! इन कारणों की वजह से उनकी नज़र या ध्यान आदिवासी वर्ग एवं समूह तक नहीं पहुँची होगीं ! हमें ऐसा ही समझना होगा। यहाँ यह भी समझना होगा कि इतिहास लिखने वाले सब-के- सब बूढ़े इतिहासकार एवं अंधे तो नहीं रहे होंगे ? और दूसरी तरह से देखा जाये तो इतिहासकार के मन में जाति-प्रांत का भ्रम तो कहीं पला नहीं था ? अपने से नीचे समझी जाने वाली जाति के बारे में चिंतन, लेखन करने के लिए अपना दिमाग एवं हाथ का सहयोग नहीं हो सकता है। खैर, इन कारणों के साथ-साथ कोई भी कारण हो सकता है। उसकी वजह से आदिवासी को सही जगह नहीं मिल पाई है। इस तरह के भुलक्कड़ इतिहासकारों की भूल को हमें भरना है। साहित्यिक-त्रुटियों को हमें सुधारना चाहिए। वर्तमान में ऐतिहासिक - मूल्यांकन फिर से होना चाहिए। इन बातों से स्पष्ट होता है कि आदिवासी ऐतिहासिक – विमर्श की अनिवार्यता है। विमर्श का कार्यभार आदिवासी समाज के पढ़े-लिखे और युवा-पीढ़ियों को इस कार्य को अपने कंधों पर लेकर आगे चलना है।

1.4 सामाजिक-विमर्श के रूप में आदिवासी चेतना का विकास -

आदिवासी-समाज में चेतना का अनिवार्य स्वरूप मिलता है। आदिवासी समाज में चेतना को विकसित करने में दो वर्गों की विशिष्ट भूमिका है । एक है- आदिवासी रचनाकार अपनी रचना के माध्यम से आदिवासियों के मन में चेतना के बीज बोता है। दूसरा है- आदिवासियों का नेता या नेतृत्व करने वाला नायक । वे अपने भाषण और वाणी से आदिवासियों को एक-जुट करके चेतना दे सकते हैं। आदिवासियों के समाज में होने वाले अन्याय, शोषण का विरोध करने का विचार जब से मन में आता है तभी से चेतना उत्पन्न होती है। चेतना ही एक समूह या वर्ग में जोश लाती है। चेतना की वजह से ही कमजोर आदमी को भी ताकतवर कर सकते हैं। इसलिए चेतना में एक तरह की ताकत और शक्ति छुपी हुई है। चेतना को आधार बनाकर नेता या रचनाकार अन्याय एवं शोषण के विरोध में विद्रोह की ओर आम जनता को अग्रसर करते हैं। जिस समाज में चेतना नहीं है वह अंधेरे में ही बैठा रहेगा। जिस समूह ने चेतना की चेतावनी अपनायी है वह कदम-कदम प्रकाशमय दुनिया की ओर बढ़ता है। कोई भी समस्या को पहले समझना चाहिए। फिर उस समस्या का समाधान के लिए कार्य-योजना के साथ एकजुट होके आगे बढ़ना है। जनता को महसूस होना है कि इस तरह के आंदोलन का लाभ हमें भी मिलेगा। तभी एक-दूसरे में चेतना फैलेगी, आगे चलकर यही विस्तृत रूप अपनाएगी। इन दोनों के साथ-साथ गीतकार भी अपने गीतों के माध्यम से जनता को जागृत करता है। अपनी ही बोलियों में गाकर उनके अंदर चेतावनी पैदा करता है। आदिवासी समाज में अपनी ही बोली या भाषाओं में गाये जाने वाले लोक-गीतों के माध्यम से जो चेतना पैदा होती है। इसको चेतनाओं का मूल माना जाता है। जनता लोक - गीतों की ओर तुरंत आकर्षित होती है। आदिवासी समाज में गीत एवं ढोल का प्रभाव हम कई उपन्यासों में देख सकते हैं।

वर्तमान में शिक्षा की वजह से आदिवासी समाज में चेतना जागी है। हर समाज में शिक्षित विद्वान एवं आलोचक को हम देख सकते हैं। शिक्षित लोग, अनपढ़ लोगों को समझाकर उसके अंदर सुधार लाते हैं। प्राचीन काल में साहित्य में चित्रित आदिवासियों के बारे में आज ये लोग गौर करने लगे हैं। साहित्यिक-त्रुटियों को पकड़ने लगे हैं। अन्याय के विरूद्ध सवाल करने लगे हैं। अधिकतर शिक्षित आदिवासी समाज के लोग अपने

समाज के बारे में लेखनी करने में एक-से-बढ़कर- एक आगे आ रहे हैं। पढ़े-लिखे लोगों के मन में एक तरह का चैतन्य पैदा हुआ है । अपने समाज के बारे में भी लिखना है । परंपरागत रूप से चले आ रहे मौखिक साहित्य को अब हमें लेखन के रूप में समाज के सामने लाना है । अपने लेखन के माध्यम से अभी तक चुप बैठी आदिवासी जनता को आवाज उठाने की ओर अग्रसर करना है । अपने द्वारा लिखित रचनाओं से जनता में चेतना पैदा करनी है।

आदिवासी समाज में चेतना फैलाने का कार्य आदिवासी एवं ग़ैर-आदिवासी रचनाकार दोनों मिलकर किये/कर रहे हैं। समाज में चेतना के विकास में दोनों वर्गों के रचनाकारों का महत्वपूर्ण योगदान है । चेतना के विकास, फैलाव को हम कई सारी रचनाओं में देख सकते हैं। आदिवासी अपने दुःख-दर्द, समस्या खुद ही अपने लेखन से बताता है। इससे बंधी हुई बेड़ियों को तोड़ सकते हैं। रमणिका गुप्ता के अनुसार "अब हम मातृभाषा में पढ़ेंगे ताकी सब आदिम मनुष्य आपस में जुड़ सकें । अपना इतिहास भी खोज निकालेंगे हम । तुमने हमारे बलिदान और विनाश पर ही तो विकास किया है न ? इस सत्य को हम उजागर करेंगे । हम मिथकों में, प्रतीकों में, साहित्य में तुम्हारी कलम द्वारा विकृत की गई अपनी छवि को, तुम्हारे षड्यंत्र को उजागर करेंगे और साबित कर देंगे कि हम तो रक्षक थे, राक्षस नहीं थे। दानवीर थे, दानव नहीं, महाबलिपुरम के राजा थे, हमारे पूर्वज । हमने वेश बदलकर किसी को छला नहीं कभी ।"[18] उपरोक्त बातों से पता चलता है। शिक्षा से ही चेतना का विकास होगा। शिक्षित लोग ही सही रास्ता चुन सकता है। साहित्यिक-त्रुटियों को सही कर सकता है। सच और झूठ एवं सही और गलत को पहचान सकता है। दिकू लोगों के कलम से थोपे गये आरोप एवं झूठ को मिटाकर उसे सही रूप दिया जा सकता है। अपना अस्तित्व स्थापित करना और बचा के रखना भी एक तरह की चेतना ही है। विद्रोह में एक-दूसरों का साथ देना और सफल होना यह भी एक तरह की चेतना है । आदिवासियों के मन में यही भावना दिखाई देती है कि साथ में जियेंगे और जीतेंगे। इस तरह की भावना के साथ वे आगे बढ़ते हैं।

[18] आदिवासीः साहित्य यात्रा, पृ सं 6-7

वर्तमान में अनेक आदिवासी रचनाकार अपनी रचनाओं के माध्यम से जनता को चेतना प्रदान कर रहे हैं। जन-समूह में चेतना का विकास रचनाओं से ही संभव होगा। रचनाओं का प्रभाव हमें दिखाई देता है। कुछ रचनाओं को पढ़ने एवं सुनते हैं तो शरीर अपने आप पुलकित, उत्साहित एवं गर्म होने लगता है। इस तरह यथार्थवाद से जुड़ी अनेक रचनाओं को हम देख सकते हैं। आदिवासी चेतनात्मक विकास को हम कुछ रचनाओं एवं रचनाकारों के माध्यम से समझ सकते हैं। ग्रेस कुजूर 'कलम की ताकत को बंदूक की ताकत' से भी बड़ा मानते हुए कहती हैं- "क्या कर लेंगी उनकी बंदूक और गोलियाँ / लाँघते ही देहरी हजारों कहानियाँ / नस-नस हो गई कमान सब लहू तीर / देखना बाकी है कलम को तीर होने दो !"[19] उपरोक्त कविता से यह भाव व्यक्त होता है कि गोलियों से डरेंगे तो लोग और पीछा करते रहेंगे। इस वजह से हमें धीरज के साथ सामना करना चाहिए। कुछ सालों पहले देखा जाय तो आदिवासी तीरों से शिकार करते थे। कालक्रमेण तीर की जगह कलम का इस्तेमाल कर रहे हैं। कवयित्री भी यही कहना चाहती है कि अब हम लोगों को समय के अनुसार कलम से ही तीर चलाना चाहिए। रचनाकार को कलम का सिपाई बन के आगे चलना चाहिए। इनकी समस्याओं को समाज के सामने लाना चाहिए तभी समस्याओं का समाधान के लिए कोई योजना बन सके। उनके विकास, परिवर्तन के लिए नये योजनाएँ बन सके।

इतिहास में देखा जाय तो देश-विदेशों के बीच अनेक आंदोलन हुए हैं। इसमें पुरूष के साथ स्त्रियों ने भी भाग लेकर अपनी जिम्मेदारी निभाई है। इसी तरह आदिवासी एवं दिकू लोगों के बीच अनेक विद्रोह आंदोलन चले हैं। इसकी कोई पहचान नहीं मिल पायी है। यहाँ सोचने की बात यह है कि आदिवासी-स्त्रियाँ हर कार्य़ में पुरुष के साथ भाग लेती हैं। अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ने वाले पुरूष- वर्ग का साथ देती हैं। आदिवासी-स्त्रियाँ भी आंदोलन में गोफन और पत्थर लेकर नजर आती हैं। छोटे-छोटे आयुध का इस्तेमाल स्त्रियाँ करती हैं। इस तरह लड़ाई लड़ने वाली स्त्रियों का नाम भी हमें आदिवासी समाज

---

[19] आदिवासीः साहित्य यात्रा, पृ सं   8

में सुनाई देता है । इतिहास में देखा जाय तो 'सिनगी दई' जैसा नाम दिखाई देता है । ये लोग भी लड़ाई में पीछे नहीं हटे हैं । इस तरह की साहसी नारियों को आदिवासी समाज आदर्श मान के आगे चलता है । आदिवासी रचनाकार भी ऐसे लोगों को केन्द्र में रखकर अपनी रचना को पूर्ण करके सफलता पाता है । इस तरह की रचनाओं से आदिवासियों के मन में चेतना उभरकर आती है । ग्रेस कुजूर इस तरह कहती हैं कि- "अगर अब भी तुम्हारे हाथों की उँगुलियाँ थरथराई तो जान लो मैं बनूँगी एक बार और सिनगी दई ।"[20] उपरोक्त पंक्ति से यह महसूस होता है कि ग्रेस कुजूर अन्याय के प्रति विरूद्ध करती है । दिकुओं के प्रति वह शेरनी बनना चाहती है । अपनी बातों से लड़ाई के लिए जनता को अग्रसर करती है । उनके शरीर में गर्मी बढ़ा के शिकार की ओर प्रेरित करती है । वह खुद ही एक वीरांगना हैं । वे रचना के केन्द्र में आगे बढ़ने की चेतना देती हैं ।

'दिकू' लोगों की दृष्टि जंगल की संपदा के साथ-साथ आदिवासी स्त्री–युवतियों के ऊपर भी रहती है । ये लोग धन, श्रम-शोषण के साथ-साथ शारीरिक-शोषण भी करने लगे । इस तरह के शोषण का आदिवासी तीव्रगति से विरोध करते हैं । जो परिवार पीड़ित हैं । वही आवाज उठाने लगता है । सहयोगिता की कमी की वजह से इनको दबाया जाता है । लेकिन रचनाकार इस तरह के अन्याय का अपनी रचनाओं के माध्यम से विरोध करता है । इस संदर्भ में वह कलम को 'तीर' बनाता है । रचनाकार खुद अपनी बातों से तीर चलाता है । रचनाकार अपनी रचनाओं के माध्यम से आंदोलन की ओर अग्रसर होता है । अपने लेखन से सबको एकजुट करके अन्याय के विरूद्ध एक साथ आवाज उठाने को प्रेरित करता है । इस तरह के विचार हम कई रचनाओं में देख सकते हैं। निर्मला पुतुल ने इस तरह लिखा है कि "वह कौन-सा जंगली जानवर था चुड़का सोरेन/ जो जंगल में लकड़ी बिनने गई/ तुम्हारी बहन मुंगली को उठाकर ले भागा ।"[21] उपरोक्त पंक्ति से यह समझ में आता है कि अब तक जंगली जानवरों से पीड़ित स्त्रियाँ गिनती में

[20] आदिवासीः साहित्य यात्रा, पृ सं 9
[21] आदिवासीः साहित्य यात्रा, पृ सं 9

गिनाई जाती हैं । लेकिन जंगली जानवरों से हीन आदमियों द्वारा शोषित स्त्रियाँ की संख्या गिनती में भी नहीं आयेगी । इसके विरूद्ध कोई आवाज उठाये तो बंदूक चलाते हैं। ऐसे लोगों को मानवतावाद के पद में मानव-जगत को भी शामिल नहीं करना चाहिए क्योंकि वह जानवरों से भी गया-गुजरा है । हर किसी के ऊपर बंदूक उठ सकती है लेकिन रचनाओं पर न तो उठ सकती है और न खत्म की जा सकती है । जंगल में कोई अकेली औरत नजर आई हो तो समझ लो कि उसका भाग्य फूट गया । ऐसे घटना के विरोध में कवयित्री खुद ही अपनी कलम को तीर बनाकर चलाती है । आदिवासियों को एक साथ विद्रोह की ओर ले जाना चाहती है ।

प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक ज़मींदार, राजाओं और अंग्रेजों ने आदिवासियों से 'बेगार ' करवायी है । आदिवासी अपने शारीरिक-श्रम के आधार पर जीवन व्यतीत करता है । जंगल को साफ करके उसी जमीन में 'ज्वार' या 'मक्का' की फसल बोते हैं । फसल तैयार होते ही लुटेरे लोग लूटते हैं । उनके श्रम, शारीरिक शक्ति एवं कष्ट से पाई हुई फसल को भी नहीं छोड़ते हैं । तत्कालीन समय में श्रमशील आदिवासी समाज ही बिना पैसा ले के काम करता था । वे सुबह से शाम तक श्रम करते थे । उनके लिए इस श्रम का फल शून्य था । सत्तावर्ग उन लोगों से सड़क बनवाते थे । शिकारगाह बनाते थे । आदिवासी को खुद का काम है तो भी उसे छोड़कर 'बेगार' करना चाहिए । ऐसा नहीं किया गया तो बाद में होने वाले दुष्परिणाम का हम अंदाजा भी नहीं लगा सकते हैं । अगर इस तरह के अन्याय का किसी एक ने प्रतिरोध किया तो उसके ऊपर आरोप लगाकर गिरफ्तार करवाते थे । आवाज उठाने वाले को खत्म कर देते थे । उनकी हत्या भी करवाते थे । उनके समूह का कोई नेतृत्व करता था तो सबसे पहले अंग्रेज या जमींदार उसे अपने कब्जे में लेना चाहते थे । जो नेता इन लोगों की बात नहीं सुनता था उसे गिरफ्तार किया जाता था । इसके साथ-साथ उनको अनेक यातनाएं दी जाती थीं । उनके परिवार को भी कष्ट पहुँचाते थे । इस तरह अन्याय एवं शोषण की भी एक हद होती थी । अचानक उन लोगों में से विद्रोह की भावना उत्पन्न होती है । खुद घर में कुछ खाने के लिए नहीं ऊपर से बेगार करना । इस अन्याय के विरूद्ध उत्पन्न होने वाली चेतना को हम कई उपन्यासों

में देख सकते हैं। जैसे 'धूणी तपे तीर' उपन्यास के नायक गोविंद गुरू इस तरह के अन्याय के विरोध में अपनी वाणी से आदिवासियों के मन में चेतना पैदा करता है। गोविंद गुरू कहता है कि "जो गलत लीक चलती रही हैं उन्हें ही तो हमें खत्म करना है। चलो, बेगार की बात छोड़ो, यह बात मुखिया, कि यह जो काम हो रहा है वह किसलिए ? यही ना कि यहाँ इस हरे-भरे जंगल में शिकारगाह बनेगा, मोर्चे बनेंगे, दरबार व उसके खास मेहमान, वे भी भूरेटिया जिनावरों को मारेंगे। उनके लिए तो यह खेल और मन बहलावा होगा लेकिन क्या यह जिनावरों को मारने का पाप नहीं होगा ? तो तुम सब लोग मिलकर इस होने वाले पाप में हिस्सेदार बनोगे। भगवान की नज़र में यह अच्छा है या बुरा।"[22]
उपरोक्त बातों से पता चलता है कि भगतों का प्रभाव आदिवासियों पर दिखाई देता है। आदिवासी यह विश्वास करते हैं कि भगत लोग हमारी भलाई चाहते हैं। इस तरह के चिंतन की वजह से वे अपने नेता या भगतों के भाषण की वजह से अपने में परिवर्तन लाते हैं। अपने आप में परिवर्तन हो के अन्याय के विरूद्ध बिगुल बजाने लगते हैं। आदिवासियों के बहुत सारे समूहों में हम आज भी देख सकते हैं कि भगतों की बातों का वे पालन करते हैं। जैसे – बंजारा - समाज में चेतना का प्रसार करने वाले संत सेवालाल की वाणियों से आज भी यह समाज निर्देशित है। वे लोग जो रास्ता दिखायेंगे वही रास्ते पर आदिवासी चलते या अपनाते हैं। उनके मन में यही विचार बैठा है कि भगत दिखा रहे रास्ता को अपनायेंगे तो ही अपना समाज का कल्याण होगा। इस तरह की चेतना का विकास हम देख सकते हैं।

1.5 आदिवासी-विमर्श के मायने -

`मुख्यधारा के समाज से आदिवासी पूर्णतः भिन्न है। आदिवासियों की भाषा, वेश-भूषा, रहन-सहन, जीवन-विधान, संस्कृति, धर्म और कला अलग से हमें दिखाई देगी। आदिवासी हजारों साल से अपनी संस्कृति को बचाते आ रहे हैं। दूसरे समाज की तुलना

[22] धूणी तपे तीर, पृ सं 68

में आदिवासी समाज की प्रकृति भिन्न है, क्योंकि जंगल को आधार मानकर अपनी मनमर्जी से स्वतंत्र रूप से उसने जीवन जीया है। आदिवासी - समाज की स्वतंत्र भावना जैसी हमें और कोई दूसरे वर्ग या समाज में नहीं दिखाई देती है। वर्तमान में आदिवासी दूसरों से प्रभावित हो रहे हैं तो भी वे अपनी संस्कृति को नहीं छोड़ते हैं। जब से ये लोग मुख्यधारा से जुड़ने लगे तभी से इनकी संस्कृति प्रदूषित होने लगी। जैसे- वेश-भूषा, धर्म से लेकर खान-पान तक में हम देख सकते हैं।

युवा समीक्षक डॉ. प्रमोद कुमार मीणा ने 'आदिवासी विमर्श के मायने' नाम से एक महत्वपूर्ण लेख लिखा जो दिल्ली से प्रकाशित पत्रिका 'सबलोग' में छपा था। इस आलेख में आदिवासी-विमर्श के मायने के संदर्भ में समकालीन दृष्टि से विवेचन और विश्लेषण हुआ है। कुछ महत्वपूर्ण बिंदु निम्नलिखित हैं-

1.5.1 जंगल से संबंधः आदिवासियों का जंगल ही मूल आधार है। जंगल के अलावा ये लोग नहीं रह सकते हैं। ये जंगल को अपनी माँ की तरह पूजते हैं। आदिवासियों का जंगल के साथ संबंध माँ-बेटा का है। जीवन की जरूरतों की सारी चीजें ये जंगल से ही प्राप्त करते हैं। जंगल में रहते हुए प्रकृति, जानवर, पेड़-पौधों से ही वह ज्ञान प्राप्त करता है। जंगल जितना स्वच्छ है, उसी में पला-पोषा आदिवासी भी उतना ही सच्चा, शांत, ईमानदार, स्वच्छ और भोला-भाला है। बचपन से ही उसने स्वच्छ वातावरण से सच्चाई की शिक्षा प्राप्त की है। आदिवासी पर्यावरण, हरियाली एवं पेड़-पौधे के बिना नहीं रह सकते हैं। जंगल का वातावरण जितना पवित्र है, आदिवासी भी उतना ही पवित्र है। जंगल के बिना ये सही से नहीं रह पायेंगे। एक-परिवार, दूसरे-परिवार से या दूसरे - समूह से रिश्ता जोड़ते समय उस इलाके में पर्यावरण की चिंता उसके मन में सबसे पहले उभरकर सामने आती है। पेड़-पौधे के साथ स्त्री का जुड़ाव, स्नेह भी हम बहुत सारे लोकगीतों में देख सकते हैं। इसके साथ-साथ पेड़ से आदिवासियों का स्नेह संबंध को हम आदिवासी कविताओं के माध्यम से समझ सकते हैं। उदाहरणार्थ एक बंजारा लोक गीत दृष्टव्य है-

'सरा...पिंपाळेरी.. सीळिये.. छांडी....

ओरी हेटा झूरालोना चालारा... भीय्यो...
मन्ना आच्चो लागचा....

सरा...पिंपाळेरी.. सीळिये.. छांड़ी....
ओरी हेटा बोकाड् कटालरा भीय्यो...
मना आच्चो लागचा....
सरा...पिंपाळेरी.. सीळिये.. छांड़ी....
ओरी हेटा नंगारा बलाला भिय्यो.....
मना आच्चो लागचा......
सरा...पिंपाळेरी.. सीळिये.. छांड़ी....
ओरी हेटा झूरालो नचाला भिय्यो...
मना आच्चो लागचा.......'
(बंजारा लोक गायिका द्वरजण से सुनकर लिपिबद्ध)

उपरोक्त लोक गीत के माध्मम से एक औरत का अपने परिवार, सहेलियों एवं पर्यावरण के साथ संबंध व्यक्त होता है । इसके साथ-साथ आदिवासियों का पेड़-पौधों के साथ लगाव भी इस गीत के माध्यम से प्रकट हुआ है । एक औरत अपने ससुराल जाने से पहले पारिवारिक-साथियों, पेड-पौधों को लेकर जो भी उसके मन में अंतर्निहित भावनाओं को अपने भाई के सामने इस प्रकार प्रकट करती है । 'भैया पीपल के बड़े पेड़ के नीचे शीतल छाया में मेरी सहेलियों को इकट्ठा करो, भैया मुझे अच्छा लगता है । उसके साथ उसी पेड़ के नीचे शीतल छायाओं में बकरा कटाओ, साथ-साथ नगाड़ा वाले को बुलाकर वहाँ मेरी सहेलियों से गीत-नृत्य कराओ भैया मुझे भाता है ।'

1.5.2 भाषाः आदिवासी-जनसमुदायों की भी अपनी-अपनी भाषाएँ हैं । बहुत सारी भाषाओं की लिपि उपलब्ध नहीं है उनका मौखिक रूप देख सकते हैं । आदिवासी भाषाओं का अपना मायना है । कुछ वर्ग समूहों की भाषाओं की लिपि है । जैसे-संथाली, गोंडी आदि । कई भाषाएँ मौखिक बोली के रूप में नजर आयेंगी । अधिकांश आदिवासी

भाषाओं को संविधान में स्थान नहीं मिला है । यहाँ सोचने की बात यह है कि आदिवासियों की भाषा या बोली का वर्गीकरण, क्षेत्रीय आधार पर नहीं किया जाता है । आदिवासी भाषा, जाति, वर्ग और समूह पर आधारित है । जैसे- संथाल या गोंड़ पूरे भारत में कहीं पर बसने दो उनकी भाषा या बोली एक ही होती है । बंजारा जनजाति की बोली पूरे भारत या भारतेतर एक ही भाषा बोली जाती है । यह आदिवासी भाषाओं का अपना मायना है । इस तरह का उदाहरण भाषा को लेकर हम कोई दूसरे समाज में नहीं देख सकते हैं ।

1.5.3 धर्मः आदिवासियों का अपना धर्म है । हजारों साल से ये एक पीढ़ी से दूसरे पीढ़ी अपने पुरखों द्वारा दी हुई परंपराओं को अपनाते आ रहे हैं । आदिवासी-धर्म एवं पूजित देवताओं में पूर्णतः हमें उपयोगिता नजर आती है । जैसे आदिवासी 'सूर्य' एवं 'चंद्र' को पूजते हैं क्योंकि उन्हीं से प्रकाश मिलता है । ये नदी और वनस्पति-जगत्- को भी पूजते हैं। कारण यह है कि पानी से ही प्राणीमात्र का जीवन चलता है । इसके साथ-साथ वनस्पति-जगत् का मतलब है । जैसे- 'फल देने वाले पेड़' और 'दवाई के रूप में काम आने वाले पेड़ों' से हैं । उनके जीवन-यापन चलाने की चीजें जंगल और पेड़ों से ही वे प्राप्त करते हैं । बीमार को ठीक करने के लिए पेड़ के पत्ते एवं जड़ी-बूटियों का इस्तेमाल करते हैं । इस तरह हम कई उदाहरण देख सकते हैं । वर्तमान में इनके धर्म पर भी प्रभाव दिखाई देता है। जीवन सही तरह व्यतीत करने के चक्कर में और नयापन के लालच में और आर्थिक कारणों की वजह से बहुत लोग दूसरे धर्मों में परिवर्तित हो रहे हैं । आदिवासी को कहीं पर भी जाने दो, कहीं भी रहने दो, किसी के साथ भी जुड़ने दो, वह अपना धर्म-संस्कृति को न तो भूल सकता है और न ही त्याग सकता है । इसके साथ-साथ धर्म का पालन, पोषण एवं प्रसार करने वाले आदिवासियों के गुरू और भगत हमें नज़र आते हैं । जैसे- गोविंद गुरू, सेवालाल आदि ।

1.5.4 सौंदर्य-दृष्टिः आदिवासी की सौंदर्य की दृष्टि उपयोगी है, उपभोगी नहीं । इस रूप में आदिवासी सौंदर्य - दृष्टि हमें गैर – आदिवासी से भिन्न नज़र आयेगी । आदिवासी – जीवन के सौंदर्य को आदिवासी एवं गैर – आदिवासी रचनाकार किस रूप में प्रस्तुत कर

रहा है ? यह सवाल बहुत ही महत्वपूर्ण है । जो इस संदर्भ में विशेष व्याख्या की अपेक्षा करता है । आदिवासी रचनाकार आदिवासी शोषण की संरचना की परतों को पकड़कर अभिव्यक्ति दे रहे हैं । जिसके अंतर्गत आदिवासी – जीवन के आँसू, पीड़ा, पसीना, भुखमरी, स्वास्थ्य के प्रश्न ज्वलंत – मुद्दे बनकर उभर रहे हैं । जिसे हरिराम मीणा की भीलणी नामक कविता के माध्यम से समझा जा सकता है-

“फटा घाघरा
तन से लिपटा
तार-तार चोली
....
सूखी लकड़ी
बीन-बीन कर उनको चुनती
तोड़-तोड़ कर गठरी बुनती
उस गठरी को माथे धरती
खट-खट फट-फट
चलती ढोती ।”[23]

1.5.5 कलाः आदिवासी की सौंदर्य-दृष्टि उपयोगी है वह उपभोग के रूप में कभी नहीं रही है । उनकी कलाएं खुद के काम आती हैं । इसके साथ-साथ बाहरी दुनिया के भी उपयोग में आ रही हैं । जैसे- आदिवासी चटाई बनाते हैं ये उनकी महत्वपूर्ण कला- चटाईयाँ उनके साथ-साथ बाहरी दुनिया के भी उपयोग में आती हैं । उसी तरह बहुत सारी चीजें हम देख सकते हैं । जैसे- बाँसुरी, लकड़ी का पंखा, टोकरी, पत्तल आदि । इस तरह आदिवासी कलाएँ अपनी जरूरतों के साथ दुनिया के भी उपयोग में आ रही हैं । इसलिए उनकी कला-सौंदर्य ‘उपयोगी’ हैं ‘उपभोगी’ रूप में कदापि नहीं रही हैं ।

---

[23] हाँ, चाँद मेरा है, पृ सं 15-16

1.5.6 वेश – भूषाः आदिवासी की वेश-भूषा जनजातीय आधार पर निर्भर रहती है। यह उनका एक तरह का मायना है। वेश-भूषा अलग-अलग जातियों में अलग-अलग दिखाई देती हैं। जैसे-बंजारों की वेश-भूषा पूरे भारत में हमें एक ही तरह की दिखाई देती है। उसी तरह गोंड की भी रहती है। इससे पता चलता है कि आदिवासी कहीं पर भी रहने दो उनके आधार भूत चिह्नों या चीजों में परिवर्तन नहीं दिखाई देता है। आदिवासियों के अधिकतर समुदायों में अलंकरण के स्तर पर स्त्री एवं पुरूष वर्ग में समानता देखी जा सकती है। आदिवासी समाज की स्त्री, स्वतंत्र रूप से अपना वेश धारण कर सकती है। उसके ऊपर समाज में किसी का दबाव नहीं रहता है।

1.6 आदिवासी-लेखन में आदिवासी और ग़ैर-आदिवासी रचनाकारों का योगदान -

1.आदिवासी साहित्यिक - पृष्ठभूमि निर्मित करने में ऐतिहासिक - क्रम से अध्ययन किया जा सकता है। सर्वप्रथम आदिवासी साहित्य को और उसके समाज को समझने की कोशिश ईसाई वर्ग ने की और इसमें उनके धार्मिक हित छुपे हुए थे। इसमें डब्लव्यू.सी. आर्चर प्रमुख व्यक्ति थे। ईसाई वर्ग में इंग्लैड, इटली, फ्रांस, पुर्तगाल और विभिन्न यूरोपिय देशों के पादरी शामिल थे।

2.ईसाई मिशनरियों के अलावा संस्कृतिकर्मियों विशेषकर नृतत्वशास्त्रियों और समाजशास्त्रियों का एक वर्ग उभरकर सामने आया। इसमें वेरियर एल्विन जैसे व्यक्ति प्रमुख थे। जिन्होंने आजादी - पूर्व से लेकर आजादी - पश्चात् भी आदिवासी मिथकों को वैश्विक-दर्शन के रूप में देखने की हिमायत की। जवाहरलाल नेहरू की आदिवासी समझ का आधार भी इन्हीं का लेखन था।

3.भारत में आजादी-पूर्व और आजादी के पश्चात् अधिकारी वर्ग की भूमिका को इस संदर्भ में देखा जा सकता है। आजादी-पूर्व प्रशासन की जरूरत और भारतीय पुरातत्व विभाग की जरूरतों के रूप में पहला प्रशासनिक वर्ग उभरा जिसने आदिवासी भाषा, संस्कृति, इतिहास और परंपरा का अध्ययन किया। इसमें उनके प्रशासनिक हित छुपे हुए थे। आजादी के पश्चात् कुमार सुरेश सिंह, बी.डी. शर्मा जैसे प्रशासनिक अधिकारियों ने

आदिवासी जीवन के लिए विभिन्न नीतियों को क्रियान्वित किया । इसमें गांधीवादी रूझान और राष्ट्रीय सांविधानिक नीति के तहत कार्य हुआ ।

4.आजादी के पश्चात् ग़ैर-आदिवासी तबकों द्वारा साहित्यिक और भाषाई अध्ययन की शुरूआत हुई । इसमें गोपीनाथ महांति, महाश्वेता देवी, गणेशनारायण देवी का साहित्य चिंतन शामिल है ।

5.आदिवासी जनांदोलन से प्रभावित एवं उत्पन्न आदिवासी साहित्य चिंतन इस धारा में जयपाल सिंह मुंडा, शंकरसिंह निहोगी गुहा, रामदयाल मुंडा, लक्ष्मण गायकवाड़, वाहरू सोनवणे, वासवी कीडो, वीरभारत तलवार का चिंतन शामिल है ।

6.शिक्षित-आदिवासी और ग़ैर-आदिवासी तबकों द्वारा समकालीन साहित्य-सृजनः इसके अंतर्गत संजीव, रणेंद्र, हरिराम मीणा, निर्मला पुतुल, तेजिंदर, सी.के.जानु, राकेश कुमार सिंह, जितेन मरांडी, रोज़ केरकेट्टा, वंदना टेटे, अनुज लुगुन जैसे रचनाकार, संस्कृतिकर्मी और सक्रियकार्यकर्ता आते हैं ।

वर्तमान समय में आदिवासियों को केंद्र में रखकर रचना करने वाले लेखक बहुत सारे हमें नज़र आयेंगे । अपने लेखन के माध्यम से आदिवासियों में चेतना फैलाने में आदिवासी एवं ग़ैर-आदिवासी रचनाकारों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है । जितना ग़ैर-आदिवासी लेखन आ रहा है, उतना आदिवासी लेखन उभरकर हमारे सामने नहीं आ रहा है । आदिवासियों को आधार बनाकर बहुत सारा लेखन हमारे सामने आ रहा है । आदिवासियों का दुःख-दर्द, संघर्ष, कामनाएँ, संस्कृति को रचनाकार अपने लेखन में प्रस्तुत कर रहे हैं । यहाँ पर सवाल यह उठता है कि साहित्य में आदिवासियों का ज़िक्र किस रूप में हो रहा है ? आदिवासियों का जीवन-विधान, वेदना, संघर्ष को हम अनेक विधाओं में देख सकते हैं । जैसे-उपन्यास, कहानी, कविता, नाटक, यात्रावृत्तांत आदि । यहाँ सोचने की बात यह है कि आदिवासी-लेखन और ग़ैर-आदिवासी लेखन में हमें बहुत अंतर दिखाई देता है । क्योंकि अंतर इसलिए है कि आदिवासी-मौखिक साहित्य समूह में रहकर लिखा जाता है, ग़ैर-आदिवासी-लेखन शहर में रहकर लिखा जाता है । आदिवासी-लेखन में यथार्थ और भोगा हुआ जीवन प्रस्तुत होता है । ग़ैर-आदिवासी लेखन में कल्पना

पर बल दिया जाता है। आदिवासियों की समस्याओं को आदिवासी एवं ग़ैर-आदिवासी रचनाकार अपने रचनाओं में दर्शाते हैं लेकिन आदिवासियों की आंतरिक भावनाओं का वर्णन सिर्फ़ आदिवासी लेखक ही कर रहा है। आदिवासी-लेखन में भोगकर लिखने वाले एवं देखकर लिखने वाले लेखन में अंतर तो जरूर रहता है। उसी अंतर को हम प्रो. वीर भारत तलवार की बातों के माध्यम से समझ सकते हैं-"जब तक आपको उसकी अन्दरूनी जानकारी न हो, जब तक आपने वर्षों तक उनके बीच रह कर उनके साथ जीवन न जीया हो, आप उस समाज को गहराई से चित्रित नहीं कर सकते हैं। जिनका मैंने ज़िक्र किया। वे भी एक औद्योगिक सर्वहारा या खेतिहर मजदूर इस दृष्टि से उसके वर्ग-संघर्ष की चेतना को चित्रित करते हैं, यह सही है, आदिवासी में यह भी है लेकिन यही नहीं है सिर्फ। 'गगन घटा घहरानी' (उपन्यास) हो या महाश्वेता देवी के 'जंगल के दावेदार' (उपन्यास) हो वह इस प्रकार से आदिवासी की वर्ग चेतना को तो देख पाते हैं। इनके उपन्यासों में आपको कहीं भी आदिवासियों की आंतरिक कशमकश नहीं मिलेगी उनका जो आन्तरिक सांस्कृतिक द्वंद्व, आज जो चल रहा है, पिछले सौ सालों से आदिवासी जिस अन्तर्द्वन्द्व से गुजर रहे हैं। उस अन्तर्द्वन्द्व की अभिव्यक्ति आप इनके किसी उपन्यास में पहचान नहीं पायेंगे।"[24]

आदिवासी साहित्य-लेखन में आदिवासियों की समस्याएँ उभरकर सामने आ रही हैं। आदिवासियों की समस्याएँ अनेक विधाओं में आदिवासी एवं ग़ैर-आदिवासी रचनाकारों की रचनाओं के माध्यम से सामने आ रही है। आदिवासी समस्या को केंद्र में रखकर लिखने वाले रचनाकार हमें कम संख्या में नज़र आयेंगे। जैसे-पीटर पाल एक्का, वाल्टर भेंगरा 'तरूण', मंगल सिंह मुण्डा, वाहरू सोनवणे, हरिराम मीणा, वंदना टेटे, रोज केरकेट्टा, अनुज लुगुन, सुनील कुमार 'सुमन' जैसे रचनाकार हमें दिखाई देंगे। इन रचनाकारों की रचनाओं में आदिवासियों की समस्या, वेदना, संघर्ष, आंदोलन, पीड़ा और दुःख-दर्द की अभिव्यक्ति हुई है। उपरोक्त रचनाकारों ने अपने-अपने लेखन के माध्यम से

[24] आदिवासी विमर्श, पृ सं 3

आदिवासियों के अंदर चेतना के बीज बोये हैं। वर्तमान में आदिवासियों को एकजुट करके अन्याय के विरूद्ध आवाज उठाने में आदिवासी लेखन का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

आदिवासी-साहित्य लेखन में कुछ प्रसिद्ध ग़ैर-आदिवासी लेखकों की रचनाओं ने भी आदिवासी जीवन, समस्याएँ को प्रस्तुत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। ग़ैर-आदिवासी लेखन की अनेक विधाओं में आदिवासियों की वेदनाएँ उभरकर सामने आई हैं। इनकी रचनाएँ भी आदिवासियों को सही दिशा दिखाने के साथ-साथ चेतना फैलाने में सक्रिय रहीं हैं। आदिवासियों की समस्या को आधार बनकर लिखने वाले ग़ैर-आदिवासी रचनाकार गोपीनाथ महांति महाश्वेता देवी, कुमारेंद्र पारसनाथ सिंह, रणेन्द्र, रमणिका गुप्ता, भगवान दास मोरवाल, राजेन्द्र अवस्थी, संजीव, राकेश कुमार सिंह, रांगेय राघव, हबीब तनवीर आदि रचनाकारों को हम देख सकते हैं। इन रचनाकारों ने अनेक विधाओं में आदिवासी-जीवन को प्रस्तुत किया है। आदिवासी समस्याओं को अपने लेखन के माध्यम से वे समाज के साथ-साथ सरकार के सामने प्रस्तुत करते हैं। आदिवासी समस्याओं को अभिव्यक्त करने में दोनों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। आदिवासियों में चेतना के साथ-साथ सही मार्ग पर चलाने की जिम्मेदारी लेखक की ही होती है।

आदिवासी साहित्य-लेखन तभी सफल होगा जब उसको सही ढंग से प्रस्तुत करें। आदिवासी रचनाकारों को सबसे पहले आदिवासी जीवन में प्रवेश करना है। उनके साथ जीना है, इस तरह आदिवासी को, उनकी संस्कृति को समझना है, उनके संस्कृति पर संपूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के बाद लेखन शुरू करना है, तभी उस रचना की सार्थकता रहती है। आदिवासी जीवन एवं समस्याओं को सही-सही ढंग से अपने लेखन में प्रस्तुत करना चाहिए। आदिवासियों को अपने लेखन, विचारों के माध्यम से एकजुट करके उन्हें सही रास्ते पर चलाना है। अन्याय के विरूद्ध आंदोलन चलाने को प्रेरित करना है। वे लोग जो-जो समस्याएँ झेल रहे हैं उन समस्याओं को समाज के सामने रखे इसके साथ-साथ सरकार तक पहुँचाने की जिम्मेदारी लेखक की ही होती है। आदिवासी-साहित्य-लेखन का योगदान तभी रहेगा जब उनको सही ढंग से प्रस्तुत करें।

आदिवासी साहित्य-लेखन करने से पहले आदिवासी लेखक के साथ-साथ ग़ैर-आदिवासी लेखक गण भी आदिवासी इलाकों में जाकर वे लोग जो देखेंगे, महसूस करेंगे, उसको अपने लेखन में प्रस्तुत करना चाहिए । आदिवासी साहित्य में यथार्थ बोध ही उभरकर सामने आना चाहिए ।

आदिवासी जिन समस्याओं को झेल रहे हैं उनको छोड़कर हम लिख रहे हैं और वह लेखन अच्छा साहित्य नहीं कहलाया जायेगा । आदिवासी आदि से लेकर वर्तमान तक जो भोग रहा है, उसे सही ढंग से प्रस्तुत करना ही रचनाकार की जिम्मेदारी है । उनकी समस्याओं का विवरण लेखन के माध्यम से ही पता चलता है । आदिवासी-लेखन के साहित्य में यथार्थ-बोध उभरकर सामने आया है । आदिवासी – साहित्य लेखन सही ढंग से प्रस्तुत होगा तो आदिवासी वर्गों को कुछ – न – कुछ फायदा होगा । उनकी वास्तविक छवि एवं यथार्थ से सरकारों का साक्षात्कार होगा । उनकी जीवन – शैली के अनुरूप भावी योजनाएँ बनने की दिशा में कदम बढ़ेगा । आदिवासी – जीवन की सामूहिकता से भी सभ्य समाज कुछ – न – कुछ सीखेगा ।

1.7 वर्तमान संदर्भ में आदिवासी समाज के समक्ष चुनौतियाँ -

'आदि' से लेकर 'वर्तमान' तक आदिवासी अनेक समस्याओं को झेल रहा है । प्राचीन काल की तुलना में वर्तमान में आदिवासियों की समस्याएँ और जटिल होने लगी हैं। कालक्रमेण उनकी समस्याएँ बढ़ती जा रही हैं । सबसे पहले देखा जाय तो आदिवासी का प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से शोषण हो रहा है । शुरू-शुरू में शोषण की समस्या 'मूल' रही है । आते-आते शोषण के साथ-साथ अस्तित्व, अस्मिता, स्वास्थ्य, संस्कृति, भाषा, धर्म और कलाओं को बचाकर रखना भी आदिवासी के लिए एक तरह की चुनौती ही है ।

1.7.1 विस्थापन - वैश्वीकरण के दौर में आदिवासियों को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है । प्रमुख रूप से देखा जाय तो वर्तमान में 'विस्थापन' ही मूल समस्या के

रूप में हमें नज़र आयेगा । 'विस्थापन' की समस्या से बचना ही आदिवासी के समक्ष एक चुनौती है । इसके साथ-साथ इतिहास में आदिवासियों को क्यों जगह नहीं मिली ? अगर कुछ पात्र नज़र आयेंगे तो भी उसका वर्णन विकृत रूप में किया गया है । साहित्येतिहास में आदिवासी को राक्षस, असुर के रूप में ही चित्रित किया गया है । आदिवासी योद्धाओं का, किसी का नाम, ज़िक्र नहीं है ! इस तरह के वर्णन के पीछे क्या कारण रहे होंगे ? क्योंकि आदिवासी को इस तरह भी मिटाने की साजिश रची गई है । इस तरह के वर्णन के पीछे कारण यह है कि उन्हें 'विकृत' नाम दिया जाय तो उनका अस्तित्व अपने आप मिट जायेगा उनका मूल उद्देश्य यही था, उनके षड्यंत्र के पीछे । वर्तमान में पढ़े-लिखे आदिवासी रचनाकारों को साहित्येतिहास के पुनर्मूल्यांकन की जरूरत है । इतिहास में भी अस्मिता बचाकर रखना, आदिवासी के समक्ष एक चुनौती है ।

1.7.2 विमुक्त और घुमन्तू जनजातियाँ - वर्तमान समाज में घुमन्तू जनजातियों के लोगों को बहुत बड़ी समस्या का सामना करना पड़ रहा है । उन जनजातियों का न कोई राज्य, न कोई जगह, न कोई सरकार इन आदिवासियों को सरकार की ओर से कोई लाभ प्राप्त नहीं हो रहा है । इसके साथ-साथ कोई आरक्षण का लाभ भी इन लोगों को प्राप्त नहीं हो रहा है । इस जनजाति की संख्या करोड़ों में है । लेकिन इनका वोट बैंक नहीं है । इसलिए यह जनजाति अनेक समस्याओं से जूझ रही है । इस जनजाति या वर्ग के सामने चुनौती यह है कि कम-से-कम स्थिर आवास मिलें । लेकिन इन लोगों के हितों के लिए न तो समाज सोचता है, न सरकार सोचती है । इस जन समूह को भी अपनी अस्मिता बचाकर रखने के लिए निरंतर संघर्ष करना पड़ रहा है ।

1.7.3 नक्सलवाद - आधुनिक युग में 'नक्सलवाद' के कारण अनेक आदिवासी शहीद हो चुके हैं । इस तरह की समस्या से मुक्ति पाना ही आदिवासी के सामने एक बड़ी चुनौती के रूप में खड़ा है । नक्सलवाद के आरोप से अलग होना आदिवासियों के लिए एक तरह की चुनौती है । वर्तमान में आदिवासी समाज के समक्ष चुनौतियों को हम इन बिंदुओं के माध्यम से समझ सकते हैं । सबसे पहले जंगल, जल और जमीन को बचाकर रखना भी

आदिवासी के लिए एक चुनौती है । स्वास्थ्य समस्या का सामना करना, अस्तित्व, अस्मिता को बचाकर रखना, भाषा, धर्म और संस्कृति को संरक्षित करना भी आदिवासी के सामने गंभीर चुनौतियाँ हैं ।

1.7.4 आजीविका का संकट - आदिवासी का मूल आधार जंगल है । जंगल में ही आदिवासी परंपरागत रूप से अपना जीवन जीता आ रहा है । 'जंगल' के बिना हम उसके जीवन को महसूस नहीं कर सकते हैं । आदिवासी समुदाय प्राचीन से लेकर वर्तमान समय तक जंगल, जल, जमीन के आधार पर ही अपनी जिंदगी जीता चला आ रहा है । आदिवासी वन की रक्षा करता है, वन उनकी रक्षा करता है । सही कहा जाय तो ये एक-दूसरे के संरक्षक हैं । आदिवासी जहाँ रहता है वहाँ खनिज संपदा भरपूर है । आदिवासी भोला-भाला है । खनिज के बारे में आदिवासी जानते नहीं हैं । इनके पास सांस्कृतिक-ज्ञान भरपूर है जैसे- कौनसा पेड़ कब फूलेगा-फलेगा ? किस पेड़ का पत्ता या जड़ें दवाई के रूप में काम आयेगी ? इस तरह का ज्ञान उन लोगों के पास है । लेकिन उनके नीचे खनिज को लेकर उनके पास ज्ञान नहीं है । जंगल को साफ करके व्यवसाय करना, फल-फूल खाकर जिंदगी चला रहा है । इसलिए जंगल ही आदिवासियों का एक मात्र मूलभूत आधार है । कालक्रमेण बहुत सारे परिवर्तनों के साथ-साथ कानूनों में भी परिवर्तन आए हैं । वर्तमान में पूँजीपति एवं सरकार की नज़र जंगल पर पड़ी है । इसकी वजह यह है कि जंगल में खनिज़ है, उस खनिज को लूटना ही मूल उद्देश्य है । हज़ारों सालों से वहाँ रहकर जीने वाले आदिवासियों को अपना जंगल, जल और जमीन से बेदखल किया जा रहा है । जंगल में आदिवासी प्रवेश पर रोक लगी है । इस तरह की स्थिति में आदिवासी का क्या हाल होगा ? आदिवासी अपनी जमीन से कटकर अनेक समस्याओं का सामना कर रहा है । आखिर उसकी अस्मिता मिटने की कगार पर है । इसलिए आदिवासी का अपनी अस्मिता को बचाने के साथ-साथ जंगल के साथ संबंध रखना ही एक चुनौती है । आदिवासी जंगल से कटे तो अस्मिता अपने आप मिट जायेगी, जंगल से उनका संबंध बनाये रखने के लिए संघर्ष की आवश्यकता है । आदिवासियों को एक साथ जुड़कर विद्रोह करना भी चुनौती है । इस समस्या को हम चिंतक हरिराम मीणा के मत से समझ सकते हैं । "परंपरागत रूप

से आदिवासी-जीवन जंगलों पर आधारित रहता आया है । जंगल और आदिवासी सह-अस्तित्व के सिद्धान्त पर फलते-फूलते रहते आये हैं । आजादी के बाद भारत की 1500 बड़ी सिंचाई परियोजनाओं के कारण 1.6 करोड़ की आबादी विस्थापित हुई इनमें 40 प्रतिशत आदिवासी थे । इसके प्रमुख प्रभावों में वन केन्द्रित आदिवासियों के जीविकोपार्जन के परम्परागत संसाधनों का छिन जाना और आदिवासी सामाजिक – सांस्कृतिक , धरोहर को खतरा के रूप में पहचाना गया । इस सब की वजह प्रभावी कानूनी प्रणाली की कमी, परियोजनाओं के पीछे विकास के साथ –साथ व्यवसायिकता निहित स्वार्थ और विकास के नाम पर अनुचित हस्तक्षेप रहे ।”[25]

1.7.5 स्वास्थ्य का सवाल - वर्तमान समय में जंगल भी प्रदूषित हो रहे हैं । औद्योगिकीकरण के कारण जंगल में भी प्रदूषण फैल रहा है । जंगलों में अनेक कारखाने खड़े हो गये हैं । इनकी वजह से वायुप्रदूषण बढ़ रहा है । इसके साथ-साथ जल-प्रदूषण भी हो रहा है । इस तरह के प्रदूषणों की वजह से आदिवासी इलाकों में बीमारियाँ फैल रही हैं। आदिवासी स्वास्थ्य-समस्या को झेल रहे हैं । स्वास्थ्य-समस्या से मुक्त होना ही एक तरह की चुनौती है । स्वतंत्रता के पूर्व स्वास्थ्य-समस्या आदिवासी समुदायों में थी बहुत कम मात्रा में, बुखार, सिर - दर्द जैसी छोटी बीमारियाँ थीं । वर्तमान में बहुत भयंकर बीमारियाँ जैसे- टी.बी.,केंसर, श्वास् रोग आदि फैल रही हैं । इस तरह की बीमारियों के इलाज करवाने की क्षमता आदिवासी के पास नहीं है । स्वास्थ्य-संबंधी समस्या भी आदिवासी के सामने एक चुनौती के रूप में खड़ी है ।

वैश्वीकरण के दौर में सब कुछ प्रदूषित हो रहा है । जितना विकास हो रहा है उतना विनाश का सामना करना पड़ रहा है । आधुनिक युग में हर व्यक्ति किसी-न-किसी स्वास्थ्य समस्या को झेल रहे हैं । इस तरह की समस्या का सामना करना आदिवासी के साथ-साथ आम जनता के लिए भी चुनौती है । आदिवासी समस्याओं में स्वास्थ्य-समस्या को हल करना कोई चुनौती से कम नहीं है ।

[25] आदिवासी दुनिया, हरिराम मीणा, पृ सं 138

आदिवासी स्वास्थ्य संबंधी समस्या के बारे में हम डॉ. रामदयाल मुण्डा के कथन के माध्यम से समझ सकते हैं । जैसे- “खान-खदानों की अनियंत्रित खुदाई एवं भारी कल-कारखानों की सघन स्थापना से 60 प्रतिशत क्षेत्र का वन आच्छादन मात्र 13 प्रतिशत पर उतर आया है । प्रकृति पर नियन्त्रण और शोषण करने की मानसिकता वाली नई आक्रामक आबादी के प्रवेश से प्रकृति के प्रति पोषण की वफादरी द्रुतगति से क्षीण होती जा रही है । कभी राज्य की ग्रीष्मकालीन राजधानी कहा जानेवाला झारखंड क्षेत्र समतल मैदानों की तरह ही तपता नजर आ रहा है । वर्षा की कमी हो रही है । पानी का स्तर नीचे गिर रहा है, तापमान बढ़ रहा है । औद्योगिक कचरों से यहाँ की सभी नदियों का पानी इतना प्रदूषित हो गया है कि इनका पानी पीने लायक नहीं रह गया है । चन्द्रपुरा जैसे कोयला क्षेत्रों में हवा का प्रदूषण इस हद तक बढ़ा हुआ है कि उन क्षेत्रों में काम करने वाले 50 प्रतिशत से अधिक लोग श्वास रोगों से पीड़ित हैं । कहीं-कहीं (जादूगोड़ा के यूरेनियम खान एवं अन्यत्र) विषाक्त और खतरनाक खनिजों की अनियंत्रित खुदाई का असर विकलाँग शिशुओं के रूप में दिखाई देने लगा है ।”[26]

उपरोक्त डॉ. रामदयाल मुण्डा के वक्तव्य से पता चलता है कि स्वास्थ्य समस्या भी कोई छोटी समस्या नहीं है आज के दौर में इसका सामना करना ही है । जन-समूह को अगर सुरक्षित रखना तो स्वास्थ्य संबंधी समस्या को हल करने का प्रयत्न एक चुनौती के रूप में लेना है ।

1.7.6 आदिवासी-संस्कृति के संरक्षण का सवाल - भूमण्डलीकरण के युग में आदिवासी-संस्कृति, संरक्षण भी एक मूल चुनौती के रूप में खड़ी है । वर्तमान समय में उनकी संस्कृति प्रदूषित हो रही है । इसके साथ-साथ संस्कृति के मूल्य लुप्त होने की कगार पर है । इसलिए संस्कृति को बचाकर रखना आदिवासियों के लिए चुनौती है । आदिवासी प्रकृति के पुजारी हैं । आदिवासी ऐसे समुदाय हैं जिनका व्यवहार, रहन-सहन, जीवन-यापन, वेश-भूषा, भाषा, धर्म, कलाएँ पूर्णतः हमें अलग रूप से नज़र आयेंगे । वर्तमान में बाहरी दुनिया के लोग उनके इलाकों में प्रवेश करके उनकी संस्कृति को प्रदूषित कर रहे हैं । बाहर

---

[26] आदिवासी अस्तित्व और झारखंड अस्मिता के सवाल, पृ सं 30

के लोग प्रवेश के उपरांत उनकी कलाएँ, भाषा, धर्म, संस्कृति में परिवर्तन दिखाई दे रहा है। इस वजह से काल-क्रमेण उनकी संस्कृति मिटने की कगार पर है। उनकी कलाएँ लुप्त हो रही हैं। उनकी वेश-भूषा में परिवर्तन दिखाई दे रहा है। इसलिए अगर आदिवासी को अपनी अस्मिता, अस्तित्व बचाकर रखना है तो उनकी संस्कृति को बचाना है। संस्कृति खत्म होगी तो आदिवासी अस्मिता अपने आप मिट जायेगी। इस तरह के भँवर में आदिवासी फँस गये हैं। जंगल से भी इन लोगों को जबरदस्ती बेदखल किया जा रहा है।

1.7.6.1 आदिवासी-भाषा - संस्कृति के अंतर्गत कई विषय आ सकते हैं। खासतौर पर यहाँ दो विषय को लेकर विस्तार से बात रखने की कोशिश की जायेगी। एक 'आदिवासी-भाषा' को लेकर और दूसरा 'आदिवासी-धर्म'। इनको बचाकर रखना ही एक तरह की चुनौती से कम नहीं है। 'भाषा' और 'धर्म' किसी समुदाय का नहीं है तो उस समुदाय की अस्मिता अपने आप मिट जाती है। सबसे पहले हम आदिवासी भाषा को लेकर बात करेंगे। वर्तमान में आदिवासी भाषा एवं बोली की अच्छी स्थिति नहीं है। बहुत समुदायों की भाषा एवं बोली लुप्त हो गई है। आदिवासियों की बहुत सारी भाषाएँ और बोलियाँ मिटने की कगार पर है। इस विषय को लेकर न तो समाज को चिंता है और न तो सरकार चिंतित रही है। यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि कोई समुदाय की अस्मिता भाषा पर ही निर्भर है। भाषा मिट जाय तो उस भाषा से संबंधित कौम या समुदाय की अस्मिता अपने आप मिट जायेगी। इस तरह उनकी भाषा की क्या स्थिति है ? हम प्रो. वीर भारत तलवार की बातों के माध्यम से समझ सकते हैं। जैसे- "अभी हाल ही में दो-तीन साल पहले यूनस्को की एक रिपोर्ट आई भाषाओं के सिलसिले में और उसने अपनी रिपोर्ट में बताया कि दुनिया की छः हजार भाषाओं में दो सौ भाषाएँ पिछले पचहत्तर वर्षों में खत्म हो चुकी हैं। उनका अस्तित्व मिट चुका है। बाकी बची भाषाओं में 2500 भाषाएँ संकटग्रस्त हैं। उनका अस्तित्व मिटने की ओर जा रहा है। 2500 भाषाओं में से 196 भारत की हैं और इन 196 भाषाओं में 62 भाषाएँ 1950 के बाद से अभी तक यानी हिन्दुस्तान में जब से लोकतंत्र आया है, मिटने की कगार पर पहुँच चुकी है, और 9 भाषाएँ खत्म हो चुकी हैं। जो 9 भाषाएँ खत्म हुई हैं, सब की सब भाषाएँ आदिवासी भाषाएँ हैं।

इन भाषाओं का खत्म होना इनके बोलने वाले आदिवासी समुदायों के खत्म होने से जुड़ा हुआ है । हिन्दुस्तान में बहुत से आदिवासी समुदाय खत्म हो रहे हैं । पिछले साल ओंगे जनजाति का एकमात्र बचा हुआ व्यक्ति भी मर गया और उसके साथ 'ओंगे भाषा' भी खत्म हो गई । वह अंतिम व्यक्ति था बचा हुआ । जारवा और सेंटिनल दोनों समुदाय मिटने की दिशा में बढ़ रहे हैं । अण्डमान-निकोबार के ये मूल निवासी हैं जहाँ भारत के तमाम राष्ट्रवादी ही बसाये गए हैं । झारखण्ड में तो कई ऐसी छोटी-छोटी जातियाँ हैं- असुर हैं, शबर खड़िया हैं, बिरहोर हैं, इनकी जनसंख्या कुछ हजार बच गई है ।"[27]

उपर्युक्त उद्धरण से हम आदिवासियों की भाषाओं की हालत को समझ सकते हैं । यहाँ सवाल उठता है कि आदिवासी भाषाओं को कैसे संरक्षित किया जाय ? आदिवासी भाषा-संरक्षण के लिए समाज के साथ-साथ सरकार का भी सहयोग रहना चाहिए । आदिवासी भाषाओं को संरक्षित करने की जिम्मेदारी पढ़े-लिखे लोगों की है । भाषा-संरक्षण को वर्तमान में एक चुनौती के रूप में लेना है । आदिवासी भाषाओं में पढ़ाना, और उसमें लेखन को बढ़ावा देना चाहिए तभी भाषा का अस्तित्व रहेगा ।

1.7.6.2 आदिवासी-धर्म - आदिवासी की एक और मूल समस्या है- 'धर्म परिवर्तन की' (धर्मांतरण) । मुख्यधारा आदिवासी-धर्म को स्वीकारती ही नहीं । सही दृष्टि से देखा जाय तो आदिवासियों का अपना धर्म है । वे लोग प्रकृति के पुजारी हैं । इनका आराध्य देव सूर्य, चाँद, पेड़, नदी, प्रकृति आदि रहा है । जिससे इन समुदायों को लाभ हो रहा है, उसी को ये लोग पूजते हैं । हिंदूधर्म, आदिवासी धर्म कभी एक नहीं हो सकता है । आदिवासियों के धर्मांतरण के पीछे ईसाई मिशनरियों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है । कुछ आदिवासियों ने ईसाई धर्म को अपना लिया है । अपनी आर्थिक स्थिति की वजह से कुछ समुदाय ईसाई धर्म को स्वीकार किये हैं । इस तरह के धर्मांतरण का जिक्र हम 'काला पादरी' जैसे उपन्यास के माध्यम से समझ सकते हैं । यहाँ सोचने की बात यह है कि हरेक समुदाय का अपना धर्म है । अपना धर्म का संरक्षण भी आज के दौर में एक तरह की चुनौती है ।

---

27 इस्पातिका, अंक1, वर्ष-2, जनवरी-जून 2012, पृ सं 12-13

अपना धर्म को न समाज मानता है, न सरकार मानती है । आदिवासी के धर्म को बचाकर रखना कोई चुनौती से कम नहीं है ।

'आदिवासी धर्म' को लेकर मैलिनोवस्की इस तरह कहते हैं कि "आदि धर्म का मुद्दा आदिवासियों की अस्मिता और पहचान से जुड़ा हुआ है । जनगणना के दौरान उन्हें हिन्दू, मुसलमान, ईसाई या अन्य में डाल दिया जाता है । प्रथमतः यह अन्य क्या है ? जो आदिवासी धर्मान्तरित नहीं होकर उनके मौलिक धर्म को मान रहे हैं, जिन्हें सरना, सारि, संसारी, जाहेर, इत्यादि कई नाम से पहचाना जाता रहा है उन्हें 'आदि धरम' की श्रेणी में क्यों नहीं रखा जाता ? और जो धर्मान्तरित हैं वे भी पुरी तरह अपनी मौलिकता को नहीं छोड़ते । अगर वे परिवर्तित धर्म की तुलना में अपने मूल धार्मिक विश्वासों, आस्थाओं व अनुष्ठानों को मानते हैं, तो क्यों न उन्हें भी 'आदि धरम' की श्रेणी में माना जाए ?"[28]

1.8 उत्तर-आधुनिक चिंतन और आदिवासी-विमर्श -

प्रमुख रूप से देखा जाय तो उत्तराधुनिक-परिप्रेक्ष्य में आदिवासियों का जीवन खतरे में है । वैश्वीकरण के दौर में जनजाति समुदायों को अनके समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है । आधुनिकीकरण की वजह से आदिवासी अस्तित्व मिटने की कगार पर है । वैश्वीकरण के दौर में आदिवासियों ने अपनी समस्या से मुक्त होने के लिए अनेक आंदोलन चला रखे हैं । आदिवासियों की जो लड़ाई है, वो पूरी- की-पूरी राज्य-व्यवस्था के खिलाफ है । क्योंकि राज व्यवस्था एवं मल्टीनेशनल कंपनियों ने विकास के नाम पर व्यापक स्तर पर जो जमीनों का अधिग्रहण कर लिया है । जमीनों को अधिग्रहण करने के क्रम में वो लोग वहाँ के लोगों से वायदे तो जरूर कर दिये की हम आप लोगों को नौकरियाँ देंगे, पुनर्वास की नीति लागू करेंगे, लेकिन यह सब नहीं हो पाया । व्यवहार में वो चीजें नहीं आती है । उनकी बातें अमल नहीं हो पाती हैं । अमल नहीं हो पाने की वजह से उत्तराधुनिक संदर्भ में आदिवासियों का विस्थापन व्यापक स्तर पर पूरी दुनियाँ में बढ़ा है । भारत वर्ष में भी वह बढ़ा है । इस तरह की आदिवासी-विस्थापन-समस्या को

[28] आदिवासी दुनिया, हरिराम मीणा, पृ सं 107

हम निम्न उद्धरण के माध्यम से समझ सकते हैं । जैसे- “बस्तर के ही इलाके में टाटा कम्पनी ने वहाँ के राजा से बहुत ही सस्ती दर पर कौड़ियों के भाव हजारों एकड़ जमीन लेकर बड़ी खदानों खोली थीं । टाटा कम्पनी ने मजदूरों के रहने के लिए तो घर बनाए पर गाँव के स्थानीय लोग, न तो रोजगार पा सके और न ही कम्पनी ने जनता के हितार्थ वहाँ स्कूल व अस्पताल ही खोला । कुछ वर्षों बाद टाटा कम्पनी बोरिया-बिस्तर समेटकर बिहार में जमशेदपुर चली गई, जहाँ उसने विशाल व्यापारिक साम्राज्य स्थापित कर लिया । वह अपने पीछे छोड़ गई, असंख्य गड्ढे, पोखरियाँ, टूटे मकान और खेती के अयोग्य ऊबड़-खाबड़ जमीनें, जिन पर बाहर के लोगों ने कब्जा करके अपने घर-बार बना लिए, दुकानें खोल लीं और व्यापार-धन्धा शुरू कर दिया । वहाँ के आदिवासी उजड़कर विस्थापित हो गए । वे रोज़गार की खोज में अंडमान-निकोबार, कर्नाटक, असम, दिल्ली, हरियाणा, बिहार और पंजाब के खेतों, चाय-बागानों, पत्थर खदानों, सड़कों या ईट-भट्टों में बँधुआ मजदूर बनकर पहुँच गए ।”[29]

इस वैश्वीकरण के दौर में आदिवासियों की दूसरी समस्या यह है कि उनकी सांस्कृतिक-पहचान, सांस्कृतिक-स्वतंत्रता की बात इसके साथ-साथ आदिवासी भाषा का अस्तित्व भी उबरकर सामने आता है । अगर सही दृष्टि से देखा जाय तो आदिवासियों की सांस्कृतिक-भाषाएँ, सांस्कृतिक-परंपराएँ बाहरी समाज से हमें भिन्न नज़र आयेंगी । जो जाति-व्यवस्था से ताल-मेल नहीं खाती है । आदिवासी समुदायों की जो लड़ाई है इनसे भिन्न लड़ाई है । आदिवासी की जो लड़ाई है पूँजी से है । जबकि उत्तराधुनिक के परिप्रेक्ष्य में पूँजी ही खुले रूप में दुनियाँ में घूम रही है । इसलिए बाजार का व्यापक स्तर पर प्रचार-प्रसार बढ़ा है । जितना पूँजी का विस्तार हो रहा है, उतना ज्यादा आदिवासियों का दलन हो रहा है । इस पूंजी ने हमारे जीवन में भी लालच, लोभ, स्वार्थ पैदा कर दिया। इस कारण की वजह से हमारे अंदर से ही एक ऐसा वर्ग पैदा हो गया कि हमारे लोगों का शोषण करने लगा ।

[29] आदिवासी विकास से विस्थापन- पृ सं 13

वर्तमान में देखा जाय तो आदिवासियों की भाषाएँ लुप्त हो रही हैं । अधिकतर भाषाएँ मिटने की कगार पर है । आदिवासियों की भाषाओं को लेकर कुछ पढ़े-लिखे आदिवासी समुदाय के लोग चिंतित हैं । आदिवासी भाषाओं को बचाने के लिए निरंतर प्रयास कर रहे हैं । जैसे- 'प्यारा केरकेट्टा फाउंडेशन' के माध्यम से आदिवासी लेखकों के समूह आदिवासी भाषा-रक्षण के लिए कार्यरत हैं । इस फाउंडेशन के माध्यम से यह सवाल उठता है कि झारखण्ड में अनेक समुदाय है, उनकी बहुत सारी भाषाएँ हैं । अलग-अलग उन भाषाओं मे जो साहित्य लिखा जा रहा है उस साहित्य पर बात होनी चाहिए । जैसे- हमने, हमारे सामने दो तरह की भाषाएँ अपना ली हैं या तो प्रादेशिक भाषा हिंदी या अंग्रेजी, तो वो लोग कहते हैं कि नहीं आदिवासियों की अलग पहचान है । वो है,- भाषिक पहचान है । ये संस्कृति की पहचान है तो उनकी भाषाओं में अलग से उन्होंने लेखन किया । उनकी लिपियाँ भिन्न-भिन्न हो सकती हैं । कोई प्रादेशिक लिपियों का इस्तेमाल कर रहा है । कोई देवनागरी का, कोई रोमन का, इसके साथ-साथ कुछ स्वतंत्र रूप से अपनी लिपियाँ उन समाजों की हैं । लेकिन वो कहते हैं कि ये प्रश्न बहुत महत्वपूर्ण है । आधुनिक युग में आदिवासी भाषाओं की क्या स्थिति है ? किस तरह वह मिट रही है? हम निम्न उद्धरण के माध्यम से समझ सकते हैं । जैसे- "जाहिर है कि जब एक ही गांव होगा, तो भाषा-साहित्य भी एक ही होगा । इसलिए **विश्व** पूंजी बाजार दुनिया की सभी भाषाओं को लील जाने की तैयारी में है । पहले निशाने पर आदिवासी साहित्य और भाषाएँ हैं क्योंकि आदिवासी इलाकों में ही धरती की विशाल धन-संपदा, खनिज, जमीन, पानी और अन्य दूसरे संसाधनों का भंडारण या तो सुरक्षित है या अभी भी बचा हुआ है । इसे आसानी से लूटने और हड़पने के लिए जरूरी है उन्हें पूंजीवादी जिसमें कि संघर्ष की चेतना जीवित है । इसलिए आदिवासी भाषा-साहित्य को खत्म कर डालने के लिए बाजार विभिन्न देशों की बड़ी-बड़ी भाषाओं को हथियार बना रहा है ।"[30]

इस वैश्वीकरण के दौर में आदिवासियों को हर जगह से बेदखल किया जा रहा है । इस वजह से आदिवासी अस्तित्व के मिटने की संभावना है । इसके साथ-साथ विकास के

---

[30] आदिवासी साहित्य विमर्श- पृ सं 65

नाम पर उनका विस्थापन किया जा रहा है । इस वैश्वीकरण के दौर में आदिवासियों के मध्य में क्या-क्या चीजें घट रही हैं ? प्रमुख रूप से देखा जाय तो आदिवासी के पास 'भूमि' है । 'भूमि' उसकी पहचान है । इसलिए वर्तमान में ज़मीन का जो मुद्दा है आदिवासियों के लिए प्राथमिक होकर उभरा है । अगर ज़मीन है तो कहेंगे जंगल भी है । क्योंकि जंगल के साथ ही उनका रिश्ता है । ऐतिहासिक विकास-क्रम से देखा जाय तो जहाँ-जहाँ जंगल है वहाँ-वहाँ पर 'रिसोर्स' भी है । संसाधन भी हैं तो संसाधनों को लूटने के लिए मल्टीनेशनल कंपनियाँ आदिवासियों को जंगल से विस्थापित करना चाहती है । इसके प्रतिरोध में आदिवासी कहते हैं कि 'हम हमारा जंगल नहीं देंगे । हम अपनी ज़मीन नहीं देंगे ।' और जहाँ जंगल भी है और जहाँ जमीन भी है, वहाँ पर जल की उपलब्धता भी है तो वो कहते हैं कि 'अपना जल भी नहीं देंगे ।' तुम इस जल को दूषित कर रहे हो । तो ये जो मुद्दे हैं एक तरह से पर्यावरण से भी जुड़े हैं । उनके अस्मिता से भी जुड़े हैं । जो अस्मिताएँ उनकी सांस्कृतिक भी हैं । जो अस्मिताएँ उनकी सामाजिक भी हैं । जो अस्मिताएँ उनकी राजनीतिक जीवन के लिए भी हैं । उनका सांस्कृतिक जीवन कहीं-न-कहीं प्रकृति पर आधारित है । आदिवासी अपनी भूमि से भूमिहीन किस तरह बन रहा है । उनका अस्तित्व मिटाने की किस तरह की साजिश रची जा रही है । हम केरल के पहाड़ियों में रहने वाले आदिवासियों के उद्धरण के माध्यम से समझ सकते हैं- "1.2 लाख आदिवासी लोगों में से 75,000 भूमिहीन हैं । कुरूचियार व कुरूमार लोग कभी अपनी जमीनों के मालिक होते थे, आज स्थिति यह है कि कर्ज के एवज में उनकी जमीनें बाहरी लोगों के हाथों में चली गई हैं । ऐसा माना जाता है कि 1960 से जनवरी 1982 के दौरान आदिवासियों की जमीन पर दूसरे प्रदेशों के लोगों ने छल-कपट या शोषण करके कब्जा जमा लिया । कुरूमार आदिवासियों के अशिक्षित होने के कारण, अनुचित लाभ उठाते हुए दलालों ने पाँच रूपये की मामूली शराब के बदले, उनकी जमीन पर अवैध रूप से कब्जा कर लिया ।"[31]

---

[31] आदिवासी विकास से विस्थापन-पृ सं 60

निष्कर्ष के रूप में आदिवासियों को लेकर यह कहा जा सकता है कि उत्तराधुनिक-परिप्रेक्ष्य में दुनिया का माल एक जगह से दूसरी जगह जाता है, बिकता है । भूमण्डलीकरण एक तरह से भूमंडीकरण है । जहाँ देंखें वहाँ पर बाजार ही बाजार है । पूरी भूमि पर मंड़ियाँ हैं । इस समय आदिवासियों के लेकर यह सवाल उठता है कि इस बाजारीकरण में आदिवासी कहाँ ठहरेंगे ? आदिवासी भाषाएँ कहाँ ठहरेंगी ? आदिवासियों का अस्तित्व कहाँ ठहरता है ? उनकी पुनर्वास की नीति कहाँ लागू होती है कि या नहीं ? इस तरह के अन्याय के खिलाफ आदिवासियों ने राज्य-सत्ता, कंपनियों, स्थानीय सामंत के विरोध में अनेक आंदोलन चलाये हैं । आदिवासी हक की लड़ाई लड़ रहे हैं । लेकिन इनकी लड़ाई अधूरी है आज भी ।

द्वितीय अध्याय

हरिराम मीणा की रचनात्मक-चेतना का विकास

किसी भी रचनाकार की रचनात्मक-चेतना पर विचार करने से पूर्व उसके जीवन-परिचय, परिवेश, शिक्षार्जन और साहित्य-लेखन पर दृष्टिपात करना तर्कसंगत होगा । रचनाकार अपने परिवेश, संस्कार, शिक्षा, काल-विशेष में क्षण- विशेष से, मूड, रुचि-अभिरुचि और स्वयं की प्रकृति विशेष से जुड़कर ही लेखन को बहुआयामी बनाता है । दूसरे / अन्य के, संपर्क का प्रभाव भी कभी-कभी रचना में विशिष्ट होकर उभरता है । लेखक की रचना के स्रोतों की पड़ताल में कभी स्थानीयता या प्रादेशिकता भी प्राथमिक होकर उभरती है और कभी-कभी रचना पर समय का दबाव अत्यल्प दिखाई पड़ता है । रचनाकार अपने समय की परिस्थितियों से प्रभावित भी होता है और कभी-कभी रचनात्मक-प्रतिभा के बल पर समय से होड़ लेता हुआ विपरीत परिस्थितियों को अनुकूलित दिशा प्रदान करते हुए कला को सृजित करता है । रचना, समय के संकट के साथ होते हुए भी अपनी संरचना में भविष्योन्मुखी दृष्टि को लिये हुए आगे बढ़ती है । इस में रचनाकार की रचनात्मक-चेतना, लेखन की दिशा और उद्देश्य विशिष्ट भूमिका निभाते हैं । रचना में सृजन की प्रेरणा, क्षण, सृजन-प्रक्रिया, सामाजिक और ऐतिहासिक परिस्थितियों से उसके संबंध को देखना अति आवश्यक है । रचनाकार की रचना-दृष्टि का विकास किस प्रकार विकसित होता है ? इसको भी रचनाकार के दृष्टिकोण से समझा जा सकता है । श्री हरिराम मीणा की रचनात्मक-चेतना का विकास भी इसी दृष्टि से देखा जा सकता है ।

2.1 जन्म-परिचय एवं परिवेश –

श्री हरिराम मीणा का जन्म एक मई, सन् 1952 को राजस्थान राज्य के सवाई माधोपुर जिले के बामनवास गाँव में रहने वाले एक आदिवासी किसान परिवार में हुआ । इनके पिता को केवल अक्षर ज्ञान था और माँ एकदम अनपढ़ महिला थीं । लेकिन इनके

माता-पिता, दोनों ने हरिराम मीणा को शिक्षा दिलाने की उत्सुकता दिखाई। हरिराम जी की बचपन से ही दिलचस्पी अपने परिवेश के लोक-गीतों और लोक-समाज को समझने की ओर रही है । इन समाजों के लोक-साहित्य का स्थानीय सभ्य समाज घोर उपेक्षा करता था । इसका हरिराम जी के बाल-मानस पर गहरा प्रभाव पड़ा । इसी कारण, उनकी दृष्टि स्थानीय आदिवासी जन-समुदायों के समाज, संस्कृति और परंपराओं को समझने की ओर गई ।

2.2 शिक्षा-दीक्षा -

'शिक्षा' का सामान्य अर्थ है- वह विद्या जो बालक अपने परिवेश से ग्रहण करता है। इसी की बुनियाद पर वह समाज, राजनीति और अर्थनीति को समझने का प्रयत्न् करता है। इसलिए 'शिक्षा' ज्ञान की परंपरा का अभिन्न हिस्सा है । 'शिक्षा-दीक्षा' से तात्पर्य है कि- जो भी मानव, शिक्षा-संस्थानों और जीवन को देखकर / समझकर अर्जित करता है उसको, समाज, देश और वैश्विक मानवता को किस प्रकार लौटा रहा है ? शिक्षा को लौटाने से तात्पर्य है- देश और समाज की उन्नति के लिए जो भी मनन-चिंतन, सार्थक रूप से रचनाकार करता है उसे सोद्देश्यपूर्ण दिशा के साथ मानवता के कल्याण के लिए वापिस लौटाना । हरिराम जी की दृष्टि में 'शिक्षा-दीक्षा' से तात्पर्य है कि- देश, समाज और मानवता के समक्ष संकटों की पहचान करना और उनके समाधान को प्रस्तुत करना ही सर्वोत्तम-कार्य है ।

श्री हरिराम जी ने प्रारंभिक-शिक्षा अपने गाँव बामनवास एवं निकटवर्ती कस्बा गंगापुर सिटी में रहकर प्राप्त की । तत्पश्चात् उच्च शिक्षा राजस्थान कॉलेज एवं राजस्थान **विश्व**विद्यालय, जयपुर से क्रमशः स्नातक एवं स्नातकोत्तर डिग्री राजनीति विज्ञान में प्राप्त की । बचपन से ही इनको लिखने- पढ़ने में रूचि रही । इन्होंने विशेष रूप से भारतीय दर्शन, परम्परा, साहित्य, संस्कृति व लोक से सम्बन्धित विषयों का विशेष अध्ययन किया है । वे बचपन से ही आदिवासी-साहित्य एवं लोक-साहित्य की जानकारी की ओर अधिकतर उत्सुक रहे हैं ।

2.3 रूचि – अभिरूचि और संपादन -

हरिराम मीणा की मूल रूप से रूचि कविता – कर्म में रही है । इसके अलावा इनकी गति शास्त्रीय संगीत में भी है । इन्होंने जयपुर दूरदर्शन के लिए धारावाहिकों में भी विशिष्ट भूमिका निभाई है । हरिराम मीणा ने जन के प्रश्नों को मानवाधिकार के संदर्भ में समझने का प्रयत्न् किया है । इन्होंने वास्तव में 'आदिवासी दुनिया' के सवालों को सरकार, बुद्धिजीवी और हिंदी - जगत के समक्ष ईमानदारी और प्रमाणिकता से प्रस्तुत किया है । संवाद का स्पेस इन्होंने बनाया है और उसे अपने ब्लॉग के मार्फत अंतरराष्ट्रीय तकनीक की दुनिया से भी जोड़ा है ।

रचनात्मक-लेखन की दृष्टि से श्री हरिराम मीणा कवि, कथाकार (कहानी, उपन्यास), यात्रावृत्तांतकार, संस्मरणकार, संपादक और विमर्शकार के रूप में अनेक भूमिकाएँ निभा रहे हैं । 'युद्धरत आम आदमी' (संपादन सहयोग) के आदिवासी-विशेषांकों में इन्होंने विशिष्ट भूमिका निभायी । 'अरावली उद्घोष' (त्रैमासिक पत्रिका) के अनेक अंकों का संपादन भी इन्होंने किया है और उसे निरंतर दिशा, सहयोग प्रदान करते आ रहे हैं ।

2.4 साहित्य-सृजन –

सर्वप्रथम हमारे लिए यह जानना अति आवश्यक है कि हरिराम मीणा का साहित्य-सृजन के प्रति लगाव क्यों जागृत हुआ ? इस संदर्भ में हरिराम जी लिखते हैं कि- 'हर वर्ग या जाति का साहित्य है, लेकिन आदिवासियों के ऊपर साहित्य क्यों नहीं लिखा गया ? क्यों इन लोगों को दबाया गया ?' इस तरह अनेक सवाल वे उठाते हैं । वे यह भी लिखते हैं कि- 'हमारे ऊपर कोई ग़ैर- आदिवासी साहित्यकार लिखेगा ? यह कभी संभव

ही नहीं होगा । हमारे बारे में हमें रचना करनी होगी' । इसी तरह के अनेक कारणों से, वे साहित्य की ओर बढ़े ।

हरिराम जी ने सर्वप्रथम कविता-लेखन को अपनाया । उनकी यह साहित्य की विकास-यात्रा कॉलेज के दिनों में ही शुरू हो चुकी थी । इसका प्रमाण है- 'खाकी में कलमकार' संस्मरण । यथा-"वैसे बेहद अटपटा लगता है पुलिस और कविता का संबंध, पर यह है । जब कविता की मेरी पुस्तक पर राजस्थान साहित्य अकादमी का सर्वोच्च मीरां पुरस्कार दिया गया था तो जिन एकाध लोगों की ओर से अंगुली उठी उनकी नज़र में मैं कवि से पहले पुलिसवाला था । साहित्य-सृजन के आरंभिक दौर में मैंने कुछ कविताएं लिखी थीं और तब तक मैं पुलिस की नौकरी में आ चुका था । जयपुर के राजस्थान कालेज में जिस गुरू ने मुझे हिंदी पढ़ाई, मैं उन कविताओं को लेकर सीधा पहुंचा उन गुरूजी के पास । जैसे ही कविताओं के विषय में उन्हें अवगत कराया, गुरूजी की त्वरित प्रतिक्रिया हुई, 'अरे ! पुलिस में होकर कविताएं कहां से करने लग गए ?' मैंने मन-ही-मन सोचा, 'जब इंसानों में से ही कवि बनते हैं तो पुलिस वाले इन्सान नहीं ?' खैर, बाद में उन्होंने मेरी कविताएं सुनी-पढ़ी भी ।"[32]

उपरोक्त वक्तव्य से यह स्पष्ट हो जाता है कि संवेदनशील व्यक्तित्व से युक्त व्यक्ति किसी भी अपराध को रोकने वाले पेशे में भले ही नौकरी करता हो लेकिन उसका रचनाकार का मन कोमल भावनाओं और संवेदनाओं की ओर अग्रसर होता है । हरिराम जी पुलिस सेवा में रहते हुए भी रचनाकार के दायित्व को निरंतर निभाते रहे हैं । उनकी स्वाभाविक रूचि कविता-कर्म की ओर रही है । उनका मन कवित्व-शक्ति से युक्त है जिसका विकास विभिन्न विधाओं में लिखे गये उनके साहित्य-सृजन में परिलक्षित होता है। 21वीं शताब्दी के दूसरे दशक के महत्वपूर्ण आदिवासी लेखकों में श्री हरिराम मीणा का नाम गिना जाता है । उन्होंने अपनी रचनाओं के द्वारा आदिवासी समस्याओं को

[32] खाकी में कलमकार, पृ सं 35

अभिव्यक्त किया है । उन्होंने आदिवासी और मुख्यधारा के समाज में अपनी रचनाओं के द्वारा चेतना के बीज बोये हैं । इनकी अब तक 11 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं । जिनका वर्गीकरण दो स्तरों पर किया जा सकता है-

1. **विधा के आधार पर रचनाओं का वर्गीकरण ।**
2. **कालक्रमिक आधार पर रचनाओं का वर्गीकरण ।**

2.4.1. विधा के आधार पर रचनाओं का वर्गीकरण-

(क). कविता-संग्रह-

1. हाँ, चाँद मेरा है (1999)
2. रोया नहीं था यक्ष (प्रबंध-काव्य, 2003)
3. सुबह के इन्तजार में (2006)
4. समकालीन आदिवासी कविता (संपादन,2013)

(ख). यात्रा-वृत्तांत-

5. साईबर सिटी से नंगे आदिवासियों तक (2001)
6. जंगल- जंगल जलियांवाला (2008)
7. आदिवासी लोक की यात्राएँ (2016)

(ग). उपन्यास-

8. धूणी तपे तीर (2008)

(घ). इतिहास-

9. मानगढ़ धाम (आदिवासी जलियाँवाला, 2013)

(ङ). आलोचना-

10. आदिवासी दुनिया (चुनिंदा मुद्दों पर विमर्श,2012)

(च). संस्मरण-

11. खाकी में कलमकार (2015) ।

2.4.2. कालक्रमिक आधार पर रचनाओं का वर्गीकरण-

हरिराम जी की रचनाओं का परिचय ऊपर विधावार दिया गया है । इसका कारण यह है कि उन्होंने साहित्य की विभिन्न विधाओं में कलम चलाई है । उससे शोध के

अध्येताओं और साहित्य के पाठकों को परिचित कराना अति आवश्यक है । अब हम उनकी रचनाओं का परिचय विधावार से इतर रचना-वर्ष या काल-क्रम की दृष्टि से करेंगे। इसका कारण है कि- विचारों की अनंत-श्रृंखला के सूत्रों का विकास, कालक्रम के रूप में देखने से रचनाकार की रचनात्मक-यात्रा के अंतः सूत्रों को सूक्ष्मता से पकड़ा जा सकता है। उन रचनाओं में कालक्रम की दृष्टि से कैसे उत्तरोत्तर विकास हुआ है ? रचनाकार की रचनात्मक-चेतना का उत्तरोत्तर विकास हुआ है या उसमें गिरावट के संकेत प्राप्त होते है ? इन सब सवालों को जानने के लिए ऐतिहासिक कालक्रम के आधार पर अध्ययन करना तर्क संगत जान पड़ता है ।

2.4.2.1 'हाँ, चाँद मेरा है' (1999) –

इस काव्य-संग्रह में कुल 67 कविताएँ संकलित हैं । इस कृति की भूमिका कवि ने 'मेरी ओर से' नाम से लिखी है । भूमिका के अंतर्गत विभिन्न सवालों को उपस्थित किया है जो उन्हें या उनके दौर के रचनाकारों को चिंता में डालते हैं । कविता क्या है ? कविता का प्रभाव किन-किन रूपों में कवि पर पड़ता है ? कवि के लिए कविता के मायने क्या हैं? कवि की अपने समय से क्या अपेक्षाएँ हैं ? इत्यादि सवालों को बहुत ही विचारपरक बहस का हिस्सा बनाकर हरिराम जी ने प्रस्तुत किया है । कवि की दृष्टि में कविता का मतलब है "मेरे लिए कविता ना तो कोई वंशानुगत रिक्थ है और ना ही किसी संगत का असर । जीवन में कोई ऐश्वर्य या लालित्य भी नहीं मिला जो काव्यसृजन के लिए सौंदर्य के महीन तंतु अंकुरित कर पाता । जीवन के क्रूर यथार्थ को देखा ही नहीं, प्रत्युत भोगा भी है, इसलिए कोरी कल्पनाओं के आसमान भी मुझे नहीं मिले । मुझमें शब्दों के कोई 'जागरन' नही हैं, न ही समझ में नहीं आ सकने वाले कोई गूढ़ रहस्य । दुनिया को अर्थपूर्ण

निकटताओं तक देख पा सकने का भ्रम मैंने अभी तक नहीं पाला है ।...घुप्प अँधेरों में मेरे भी रोंगटे खड़े होते हैं, मगर मेरी त्रासदी है कि मुझे इनमें अभी और चलना है ।"[33]

उनके अनुसार- "जहाँ तक कविता का प्रश्न है, मैं इसके किसी भी पक्ष को जानने का दावा नहीं करता, चाहे वह वैयक्तिक, सामाजिक, राष्ट्रीय या मानवीय उपादेयता का हो, शास्त्रीय, ऐतिहासिक, परंपरावादी या प्रगतिवादी बहस का हो, कोमलकांत पदावली या यथार्थ के कठोर धरातल का हो, एकाकी या बहुआयामी पीड़ाओं या प्रसन्नताओं की अविरत श्रृंखला का हो अथवा किन्हीं भावों या अभावों से प्रस्फुट ऊर्जा की तरंगों का हो । लेकिन, जब कोई एकांती मन अपने भीतर के तहखानों को परत-दर-परत उघाड़ता चला जाता है और अँधेरों में भटकते किसी अनजान प्रकाशकण से टकराता है तो शायद कविता होती है । कविता की पंक्तियों या उनके मध्यांतरों की कितनी उपादेयता होगी यह तो प्रभावों पर निर्भर करेगा ।"[34]

कवि की दृष्टि समय / काल पर गयी है । कवि की चिंता है कि हम किस वक्त पर विश्वास करें ? उनके अनुसार- "हम जिस परिवेश और वातावरण में जी रहे हैं उसको भूत ने छला है,.... जो कुछ शेष रह गया है उसमें हम संतोष कर बैठे हैं। वर्तमान ने एक उद्वेग पैदा किया है । पहले शहरों की ओर गाँव भागे थे और अब शहर भाग रहे हैं गाँवों की ओर। भविष्य एक अनिश्चय का प्रेत बनकर मँडराता नज़र आ रहा है ।"[35]

किसी भी कालखण्ड के कवि के हिस्से अपने समय की चिंताएँ ही आयी है । हरिराम जी की चिंता है कि इस दौर में सुगंधित पवन तो बह नही रहा, फिर बसंत कैसे आ सकता है ? नीर की निर्मलता पर पहले जैसा विश्वास तो अब रह नहीं गया है ! चारों ओर शोरगुल-ही-शोरगुल है कैसे मनुष्य घरों में चैन से रहे ? कवि को चिंता है कि

---

[33] हाँ, चाँद मेरा है, पृ सं 6

[34] हाँ, चाँद मेरा है, पृ सं 5

[35] हाँ, चाँद मेरा है, पृ सं 6

ताकतवर इन्सान इस दुनिया को धर्म-युद्ध की ओर अग्रसर कर रहे हैं। दुनिया बारूद के ढेर पर लाकर खड़ी कर दी गयी है। महानगरों में उग रहे हैं कंकरीट के जंगल। गाँव बहुरूपी वर्गों में विखण्डित हुए जा रहे हैं। उनके शब्दों में- “लोकजीवन को लीलते जा रहे हैं महानगर और महानगरों के सौंदर्य को डस रही है पाश्चात्य उद्दंडता।...नारी को छोटे और बड़े पर्दे पर नर्तकी और अभिसारिका तक ही कौन समेटे जा रहा है ? सांध्य गीत कहाँ खो गए ? कहाँ खो गई गुड़िया और झुनझुना ? इनकी जगह ए.के.47 लिए ये बच्चे क्यों घूम रहे हैं ? राष्ट्र के केनवास पर इतने लड़ाकू और ठगों को गहरे रंगों में कौन उभारे जा रहा है ? आम आदमी इतना सस्ता और कमजोर क्यों हो गया ? इन्हीं प्रश्नों की जटिलताओं और अर्द्धविक्षिप्त वातावरण में शायद कविता की कोंपलें फूट रही हैं।”[36]

इस संग्रह की दो कविताएँ हैं- ‘वह आदमी (एक)’ और ‘वह आदमी (दो)।’ इन कविताओं में आदमी की सोच में वक्त के साथ आये हुए बदलाव को एक उदाहरण के द्वारा समझा जा सकता है-

“उसे वक्त नहीं
जो वह तय कर सके
कि-
उसे क्या खाना चाहिए
इसलिए
मशीनों का तयशुदा और पैकशुदा
खाना खाता है वह आदमी।”[37]

इस संग्रह में कवि की आदिवासी विषयक दृष्टिकोण के संकेत सूत्र भी देखे जा सकते हैं। भारत के लोक-जीवन में परंपरागत मिथकों का विशेष महत्व है। इन मिथकों में आदिवासी जीवन की चेतना से जुड़े हुए पात्रों में से एक पात्र विशिष्ट है- ‘एकलव्य’।

---

[36] हाँ, चाँद मेरा है, पृ सं 6

[37] हाँ, चाँद मेरा है, पृ सं 9

एकलव्य हाशियाकृत आदिवासी जीवन का प्रतिनिधित्व करता है । उपेक्षित आदिवासी जीवन की संचित चेतना के रूप में एकलव्य को देखा जाता है । ज्ञान का पिपासु और सत्तातंत्र द्वारा छला गया एकलव्य असंख्य चेतनाओं के जीवन की प्रतिध्वनि बन गया । एक उदाहरण देखा जा सकता है-

"एक बार
की थी उसने धनुर्धर होने की उद्दंडता
काट देना पडा था
बतौर 'दक्षिणा'
'सहर्ष' अपना अँगूठा ।"[38]

इस रचना की प्रसिद्ध कविता 'भीलणी' के माध्यम से कवि ने स्त्री की मनोदशा के साथ स्त्री- विमर्श को भी अभिव्यक्ति प्रदान की है । कवि ने अरावली पर्वत-श्रृंखला की काली घाटियों में, मेवाड़ अंचल के अंतर्गत एक भील नवयुवती का शब्द-चित्र उकेरा है जो अपने अस्तित्व को बचाने के लिए संघर्षरत है । इस भीलणी का निर्मल और शुभ्र हृदय है। इस संवेदना को अभिव्यक्ति देते हुए कवि ने लिखा है कि- 'फटा घाघरा तन से लिपटा, तार-तार चोली, लज्जा की रक्षा करती, अंतिम साँसें रोक ओढ़नी सर को ढकती ....' के माध्यम से भील जनजाति की आर्थिक-विद्रूपता के प्रति संवेदना को उकेरा है । वर्तमान सामाजिक-व्यवस्था में मनुष्य जब संवेदनाशून्य / हीन होता जा रहा है, तब कवि भीलणी की आर्थिक-दुर्दशा से अवगत कराते हैं । कवि का आशय है कि - आम आदमी कभी मरता नहीं है, वह अभावों में भी ज़िन्दा रहता है । दरारों से बाहर आने को प्रयासरत, नंग-धड़ंग कंकाल, कुछ बड़े, कुछ छोटे, कुछ नर, कुछ मादा । बिना किसी रक्त, गोश्त, खाल और नाड़ियों के ठोस हड्डियों से बने एक से ये नर-कंकाल शायद जूझ रहे हों शताब्दियों से अपनी मुक्ति के लिए । मनुष्य की यह मुक्ति की छटपटाहट सदियों से बरक़रार है, फिर भी उसके प्रति संवेदनाएँ क्षीण होती जा रही हैं । कवि व्यक्ति की सामाजिक भूमिका के

[38] हाँ, चाँद मेरा है, पृ सं 12

दायित्व बोध को विशिष्ट मानते हैं। कवि की दृष्टि में इस दुनिया में व्यक्ति के कर्मों का लेखा-जोखा ही उसकी पहचान को निर्धारित करता है। मृत्यु से पूर्व रचनात्मक और मानवता के हित में किया गया कार्य ही मनुष्य को जिंदा रखता है। जैसे- "सच तो यह है

कि-
आदमी अकेला ही आता है
और अकेला ही जाता है।
आते सब एक ही तरह हैं
मगर,
बड़ी बात तो यह है
कि-
जाता कौन किस कदर है ?"[39]

2.4.2.2 'साइबर सिटी से नंगे आदिवासियों तक' (2001) -

यह यात्रा-वृत्तांत 12 भागों में विभक्त किया गया है। जो इस प्रकार से हैं- 'दिल्ली से साइबर सिटी', 'हैदराबाद के तहखाने एक प्रेम-कथा के बहाने', 'तिरुपति की एक झलक', 'विशाखापतनम् के सहारे डालफिनों तक', 'भुवनेश्वर के इर्द-गिर्द हिंसा और 'ईश्वर' के करीब', 'कलकत्ता (महानगरीय अतियों से गुजरते हुए)', 'पोर्टब्लेयर हवाई अड्डे से सेल्यूलर जेल वाया जोली बॉय', 'सरदार बख्तावरसिंह के बहाने से आदिवासियों तक', 'उस 'जारवा' दंपत्ति से मिलकर', 'रॉस एवं वाइपर द्वीपों के खण्डहरों तक', 'पोर्टब्लेयर से महाबलीपुरम्-नारी त्रासदी की एक अंतर्यात्रा सहित' और 'चेन्नई के रास्ते वापस हैदराबाद'।

इस यात्रा-वृत्तांत में देश की वर्तमान राजधानी दिल्ली, देश की साइबर सिटी हैदराबाद से लेकर अंडमान निकोबार द्वीप समूह के आदिम एवं नंगे आदिवासियों तक की

[39] हाँ, चाँद मेरा है-पृ सं 32

जीवन-स्थितियों का बहुत ही मार्मिकता से चित्रण किया गया है । इस रचना में उन्होंने प्रकृति, मानव और मानवेतर अंडमान निकोबार द्वीप समूह के प्राणी जगत् की समस्याओं का संवेदनशीलता के साथ वर्णन किया है । उन्होंने लिखा है कि- “यात्रा-वृत्तांत निश्चित रूप से साहित्य की एक सशक्त विधा है । अतीत में इस विधा के माध्यम से इतिहास लिखे गए हैं । जिसके उदाहरण के रूप में मेगस्थनीज, फाह्यान, ह्वेनसांग से लेकर कर्नल टॉड तक हमारे सामने हैं ।”[40]

इन्होंने जहाँ-जहाँ की यात्रा-की, वहाँ के बुजर्गों से पूछताछ कर उस स्थान विशेष की ऐतिहासिकता और महत्व के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी साहित्य प्रेमियों को उपलब्ध कराई है । सबसे पहले ये दिल्ली से साइबर सिटी (हैदराबाद) पहुँचे । यहाँ आने के बाद उन्होंने शहर के निर्माण के बारे में जानकारी को खोज निकाला । उन्होंने यहाँ के निज़ाम शासन की हर शिल्प कलाओं को यात्रा के दौरान देखा । जैसे- चारमीनार, सालारजंग म्यूजियम इसके साथ-साथ गोलकोंडा किला का दर्शन उन्होंने किया । इस महानगर के पीछे एक कहानी छुपी हुई है । मुगल शासन काल में मुहम्मद कुली को एक बार शिकार करते समय एक सुंदर औरत की झलक मिली । उस सुंदरी का नाम भागमती था । जिस समय भागमती को देखा तभी से मुहम्मद कुली, भागमती के प्यार के लिए पागल हो गया। जैसे- “शहजादे ने युवती से पूछा- “सुनिए ! आपका नाम क्या है ?” “मेरा नाम भागमती है । आप कौन ?” युवती ने जवाब को सवाल में बदलते हुए अपनी बात कही । “मैं गोलकुण्डा का शहजादा मुहम्मद कुली हूँ । शिकार खेलते - खेलते इधर आपके गाँव आ गए, यहाँ आपको देखा तो बरबस खिंचा चला आया । क्या कुछ देर आपसे बातें कर सकता हूँ ?” “शहजादे ! मैं तो इस गाँव की एक मामूली नर्त्तकी हूँ । आप कहाँ और मैं कहाँ ? खैर, जैसी आपकी मर्जी । आप आइये, यहीं आगे मेरा घर है ।””[41] रोज शहजादे और भागमती का मिलन किसी-न-किसी बहाने होता था । जैसे- “इसके बाद भी शिकार

[40] साइबर सिटी से नंगे आदिवासियों तक, आवरण पृष्ठ

[41] साइबर सिटी से नंगे आदिवासियों तक,पृ सं 18

के बहाने शहजादा कई बार भागमती के पास आया । प्रेम - प्रसंग की चर्चा पूरे इलाके में फैल गई ।"[42] शहजादे एवं भागमती की विरह - वेदना को हम निम्न उद्धरण के माध्यम से समझ सकते हैं । जैसे- ""नहीं भागमती ! अब मैं वहाँ नहीं जाऊँगा । हम दोनों कहीं भी चले जायेंगे लेकिन अब एक पल भी अलग नहीं होंगे ।" "शहजादे ! हमारा प्रेम सच्चा है और ऐसे प्रेम को भगवान को भी स्वीकार करना पड़ेगा । अतः आप फ़िक्र मत करो । वापस जाओ और वक्त का इन्तजार करो ।" "वह सब ठीक है । लेकिन अब्बाजान मानने वाले नहीं ।" नहीं शहजादे ! तुम कुछ भी कहो, इस वक्त वापस गोलकुण्डा जाना ही होगा। तुम्हें मेरी कसम... ।"[43] हैदराबाद और भागनगर शहर के नामकरण के पीछे क्या रहस्य छुपा है ? यात्रा-वृत्तांतकार ने बड़े ही रोचक रूप में आसानी से इस ऐतिहासिक ज्ञान के साथ पाठक को संवर्धित करने का नूतन प्रयास किया है । जैसे- "सन् 1580 में इब्राहीम कुतुबशाह का देहान्त हो गया और मुहम्मद कुतुब कुली शाह गद्दीनसीन हुए । गद्दीनसीन होते ही मुहम्मद कुतुब कुली शाह ने भागमती से शादी कर ली । इस तरह मुकम्मल हुई यह प्रेम - कथा पति - पत्नी सम्बन्धों के रूप में तब्दील होकर । भागमती के नाम पर उसका छोटा-सा गाँव चिचलम अब बना दिया गया भागनगर । आगे भागमती को 'हैदरमहल' का खिताब दिया गया और बेगम हैदरमहल की मौत के बाद भागनगर की जगह बना दिया गया खूबसूरत हैदराबाद ।"[44] उन्होंने हैदराबाद के बाद तिरूपति की ओर यात्रा आरम्भ की । उन्होंने, उस समय रास्ते में देखी गई घटनाओं और भगवान बालाजी के दर्शन का वर्णन किया है । इसके बाद वे विशाखापट्टनम् पहुँचे । वहाँ उन्होंने बहुत सारी चीजें देखीं । जैसे - उस शहर के बगल में समुद्री तट और उसके अगल- बगल

[42] साइबर सिटी से नंगे आदिवासियों तक,पृ सं 19

[43] साइबर सिटी से नंगे आदिवासियों तक,पृ सं 21-22

[44] साइबर सिटी से नंगे आदिवासियों तक,पृ सं 23-24

फैली हुई हरियाली और समुद्र में उछलने वाली 'दो डॉलफिन' का वर्णन बड़े ही रोचक अंदाज में प्रस्तुत किया गया है ।

अंडमान निकोबार द्वीप समूह में श्री हरिराम मीणा को बख्तावरसिंह की वजह से भी बहुत जानकारी प्राप्त हुई । सिंह ने मीणा के साथ में रहकर उन्हें आदिवासी इलाकों में घुमाया । उनको कुछ घटनाओं एवं वहाँ की संस्कृति के बारे में बताया । इस फिल्ड - कार्य में मीणा को अनेक नई जानकारियाँ मिलीं । इन लोगों की समस्या एवं शोषण को उन्होंने खुद देखा । इस तरह देखी और सुनी हुई घटनाओं को उन्होंने रचना के माध्यम से समाज के समक्ष रखा । इस फिल्ड कार्य करने के दौरान उन्हें यहाँ के आदिवासियों की संस्कृति एवं खान-पान की जानकारी मिली । जैसे- "जंगली सुअर, मछली और नारियल इनके मुख्य खाद्य-पदार्थ हैं । सुअर की खोपड़ी इनकी अस्थायी झोंपड़ियों में लटका दी जाती है जिसे ये अपनी खेल प्रतिस्पर्द्धाओं में 'ट्रॉफी' के रूप में इस्तेमाल करते हैं । सम्पति के नाम पर इनकी पूँजी, धनुष, बाण, चाकू, लकड़ी एवं छाल की टोकरी, सपाट लकड़ीनुमा नाव और शंख-सीपियों के माला के अलावा कुछ नहीं ।"[45]

यात्रा-वृत्तांतकार ने इस रचना में महिलाओं के साथ हो रहे लैंगिक / जेंडरगत भेदभाव की समस्या का मुद्दा उठाया है । इन्द्र की सभा से लेकर काली घाट तक की वेश्याओं की समस्याओं का वर्णन किया गया है । इन्होंने भारतीय समाज में महिलाओं के ऊपर होनेवाले अत्याचार एवं शोषण का बड़ी संवेदनशीलता के साथ चित्रण किया है । यात्रा-वृत्तांतकार की चिंता है कि प्राचीन काल से लेकर आज तक स्त्रियों की समस्याएँ किसी को नहीं दिखाई दे रही हैं । इनको समस्याओं से मुक्ति कौन देगा ?

समाज में "मुक्ति के लिए इनकी पुकार और चीत्कार को कोई अभिव्यक्ति नहीं मिल सकी । गाँवों से शहरों और झोंपड़ी से महलों तक इनके शोषण के पदचिह्न स्पष्ट अंकित होते रहने के बावजूद कोई विकल्प सामने नहीं आ सका । यात्रा के असमतल पड़ावों और

[45] साइबर सिटी से नंगे आदिवासियों तक,पृ सं 82

ऊबड़-खाबड़ रास्तों में इनकी संतान यत्र-तत्र अनाथ और असहाय भटकती रही। वासना के अनेकानेक ठिकानों में पुरूष के क्रूर पंजों में स्त्री जाति की यह जमात बार-बार छटपटाती रही और उम्र भर त्रिशंकु-सी हकीकत बनकर जीती चली गई। चाहे चन्द्रवंश की आद्यजननी पुरूरवा-पत्नी उर्वशी हो या सूर्यवंश के आदिजनक दुष्यन्त की पत्नी शकुन्तला की माँ हो जिसकी वजह से इस महादेश को संज्ञा देने वाला भरत अन्ततः पैदा हुआ, चाहे महाकवि कालिदास के नाटकों की महानायिकाएँ बनीं हों, चाहे इन्द्र का दरबार इन्हीं के उपयोग या दुरुपयोग से सुरक्षित रहता आया हो, चाहे समुद्र के महामंथन के बाद सहोदर रत्नों के साथ एक रत्न के रूप में यह भी निकली हो, फिर भी इतिहास ने इनकी गरिमा को नहीं स्वीकारा।"[46]

2.4.2.3 'रोया नहीं था यक्ष' (2003) - भारतीय कविता के प्रसिद्ध कवि केदारनाथ सिंह ने इस प्रबंध-काव्य के बारे में लिखा है कि "'रोया नहीं था यक्ष' हरिराम मीणा की एक प्रदीर्घ कविता है-बल्कि सीधे-सीधे कहें तो एक प्रबंध-रचना- जो मेघदूत के यक्ष की कथा को इक्कीसवीं सदी के साँचे में ढालने की कोशिश से पैदा हुई है। कविता के आरंभ में ही प्रेत के माध्यम से- जो कि असल में यक्ष का ही रूपांतर है-कवि ने अपनी मूल सृजन-प्रतिज्ञा इस रूप में व्यक्त की हैः

कथ्य हूँ मैं बहुत प्यारा - नहीं बासी
सुगढ़ भाषा की नौका में बिठाओ
....
करो तुम संकल्प
कि अभिव्यक्ति में स्वतंत्र हो।"[47]

'रोया नहीं था यक्ष' प्रबंधात्मक लंबी कविता है। उत्तर-आधुनिक समय में, विचारों का क्षरण बड़ी तेजी से घटित हुआ है ऐसे दौर में यह संग्रह दृढ़ वैचारिक पृष्ठभूमि पर निर्मित एक ऐसी कवि की संकल्पना है जिसमें नारी, दलित और आदिवासी मुक्ति के

---

[46] साइबर सिटी से नंगे आदिवासियों तक,पृ सं 103-104

[47] रोया नहीं था यक्ष, आवरण पृष्ठ से

विद्रोह के बहुआयामी-संदर्भ दिखलायी पड़ते हैं। आज कल कुबेरवादी वैश्विक समाज को अपने हाथों में थामकर किस प्रकार से शोषण कर रहे हैं, ऐसी घटनाएँ हमें इस रचना में दिखाई देती हैं। इस कविता-संग्रह में 'यक्ष' को नायक के रूप में दिखाया है। उसी के माध्यम से शोषण एवं अन्याय का प्रतिरोध भी रचनाकार ने अभिव्यक्त किया है। आज की दुनिया अर्थ की सभ्यता पर आधारित है जिसके अगुआ कुबेर रूपी बिलगेट्स हैं। यह स्वार्थभरी सभ्यता बहुत ही क्रूर, आम आदमी के श्रम का शोषण करने वाली, व्यक्ति की गरिमा का निरादर करने वाली और स्त्री-अस्मिता का हरण करने वाली है। इस शोषणवादी व्यवस्था का सर्वप्रथम प्रतिरोध यक्ष ने किया था। हरिराम मीणा ने इस संग्रह की 'भूमिका' में लिखा है कि-"यक्ष ने कुबेरवादी व्यवस्था के विरूद्ध बिगुल बजाया। इस प्रतिरोध में उसकी पत्नी ने स्त्री-जाति की प्रतिनिधि के रूप में उसका साथ दिया। इस उत्पीड़न में यक्ष का साथ शासक वर्ग के अलावा अभिजात्य- अन्य दो- वर्गों, यथा ब्राह्मण और वणिक-वर्ग ने नहीं दिया चूँकि ये भी सामंत के ही साथी थे। इसलिए यक्ष का यह प्रतिरोध निश्चित रूप से अभिजात्य के विरूद्ध था और जन-साधरण के हितार्थ।"[48]

कवि ने काव्यार्थ उद्भावना का नया संदर्भ तलाशा है। उनके अनुसार- यक्ष की सोच को कवि कालिदास ने प्रकृतिजन्य पात्र 'मेघदूत' के द्वारा लोक-मुक्ति के संदेश के रूप में अलकापुरी प्रवास- काल में जन-जन तक पहुँचाया, जो समानांतर उत्पीड़ित था। शोषण और दासता की बेड़ियों में जकड़ा आदमी पहले आज़ाद तो हो फिर कहीं जाकर वह आगे की सोचे।

इस प्रबंध काव्य में श्रम का शोषण एवं स्त्रियों के अस्तित्व का हरण का यथार्थ रूप में चित्रण किया गया है। प्रमुख रूप से इस कृति में रचनाकार ने सामंतवादी व्यवस्था का वर्णन किया है। आदिवासी समाज में, सामान्य जनता में किसी की शादी होती थी तो वह वधू को प्रथम रात्रि सामंत के पास भोग के लिए भेजने को विवश था। यह कार्य परम्परागत रूप से चल रहा था। इस तरह सामंतवाद का यक्ष ने विरोध किया था। वह

[48] रोया नहीं था यक्ष, पृ सं 11

खुद अपनी पत्नी यक्षिणी को सामंत के पास नहीं भेजता है । वह इस तरह संघर्ष करता है । यहाँ यक्ष का आत्म-संघर्ष नहीं है, बल्कि पूरे समाज का संघर्ष इसके माध्यम से व्यक्त हुआ है । वह अन्याय एवं शोषण का विरोध करने के लिए जनता को प्रेरित करता है । जैसे-

"प्रिय यक्ष,
डगमगाओ नहीं
तुम्हीं तो हो प्रजा का दृढ़ संकल्प
डटे रहो
संघर्ष से हटकर नहीं कोई विकल्प
मैं बाहर का भूत नहीं, तुम्हारा ही अंतर्बोध हूँ... ।"[49]

2.4.2.4 'सुबह के इन्तजार में' (2006) - कवि ने इस काव्य-संग्रह को दो भागों में विभाजित किया है- 'आदिवासी' और 'आसपास' । ये कविताएँ हमें उनकी ही नहीं, हमारी अपनी दुनिया में भी ले जाती हैं और हम उसके अहसास का हिस्सा हो जाते हैं । इन कविताओं के पाठ के बाद प्रत्येक पाठक चिंतन की ओर अग्रसरित होता है । इन्होंने इस कविता- संकलन के माध्यम से आदिवासी संस्कृति, अन्याय, अकाल, अस्तित्व की पहचान और समस्याओं का वर्णन समाज के सामने रखा है । इसके साथ-साथ आदिवासी जनता के मन में चेतना की भावना अपनी रचनाओं के माध्यम से उत्पन्न की है । इस कविता- संग्रह की शुरूआत आदिवासियों के महान नेता 'बिरसा मुंडा' से शुरू हुई है । बिरसा मुंडा का नाम आदिवासी क्रांतिकारियों के नामों में सर्वोपरि है । कवि हरिराम मीणा 'बिरसा मुंडा की याद में'.....कविता के माध्यम से जनता को चेतना की ओर अग्रसर करते हैं । जैसे-

"खेलने-कूदने की उम्र में

लोगों का आबा बन गया था वह
दिकुओं * * के खिलाफ

[49] रोया नहीं था यक्ष,पृ सं 103

बाँस की तरह फूटा था धरती से
जैसे उसी पल गरजा हो आकाश
और काँपे हों सिंहों के अयाल।
नौ जून, सन.....उन्नीस सौ
सुबह नौ बजे-
वह राँची की आतताई जेल
जल्लादों का बर्बर खेल
अन्ततः ....
बिरसा की शान्त देह !"[50]

बिरसा मुंडा ने झारखंड में जन्म लिया। इनको आदिवासियों का जननायक के रूप में पहचाना जाता है। इन्होंने आदिवासी समाज के आत्मविश्वास को जगाया। इन्होंने ब्रिटिश राज के लगान का विरोध किया। आदिवासियों की जमीन को अंग्रेज सरकार और जमींदार ने धोखेबाजी से छीन लिया। इसके साथ-साथ आदिवासियों के ऊपर होने वाले शोषण का बिरसा ने विरोध किया। बिरसा ने 1899-1900 में मुंडा आदिवासी विद्रोह का नेतृत्व किया। अंग्रेजों और शोषक वर्ग के विरूद्ध आंदोलन किया। इसके परिणाम-स्वरूप फिरंगियों ने बिरसा को गिरफ्तार कर लिया। आदिवासियों के बीच खड़े होकर बिरसा बार-बार यह कहता था कि - पुश्तैनी जंगलों पर हक हमारा है। जंगलों पर अधिकार परंपरा से हमारे पुरखों का रहा है। अब उस पर हक उन्हीं के वंशजों का होता है। हमारी संस्कृति एवं सभ्यता जंगल के बिना नहीं रह सकती है। इसलिए बिरसा ने अपने समूहों में चेतना के बीज बोये थे। जंगल नष्ट करने वालों के विरोध में नारा देने को प्रेरित किया था। इस तरह बिरसा ने अपनी वाणी से जनता के मन में चेतना उत्पन्न की। ब्रिटिश सरकार ने यह सोचा कि इसको जिंदा छोड़ दिया तो आंदोलन और खतरनाक होगा। इस कारण से बिरसा की जेल में हत्या कर दी। इस कविता के माध्यम से पता चलता है कि - जमींदार, जागीरदार/साहूकार एवं ब्रिटिश सरकार जो भी हो, जो आंदोलन उनके विरूद्ध हो रहे थे, इन आंदोलनों की ताकत बढ़ाने वाले कोई-न-कोई नायक उन आंदोलनों के केंद्र में रहकर जनता को जगाते थे। लेकिन आंदोलन या समूह या

[50] सुबह के इंतजार में, पृ सं 10

वर्ग के नायक को गिरफ्तार कर जब उसकी हत्या कर दी जाती थी तब आंदोलन कमजोर हो जाता था। क्रांतिकारियों से ब्रिटिश सरकार या सत्ता भयभीत रहती थी। इसी तरह ब्रिटिश सरकार कुचक्रों को अपनाती थी।

कवि हरिराम मीणा ने नर्मदा नदी पर बनाये जा रहे 'सरदार सरोवर बाँध' को आधार बनाकर 'सरदार सरोवर में डूबा आदिवासी भविष्य' नाम से कविता लिखी है। जिसका एक अंश इस प्रकार है-

"मैंने खूब सुना है इन दिनों
सरदार सरोवर परियोजना के बारे में
मैं शौकिया गया था
उस बाँध को देखने
......
सूरज करीब उगा हुआ
बाँध के बाहर सामने
दूर-दूर तक सुनहरी ताजा धूप मगर,
भीतर विरह जलराशि पर बिखरा था
खून का ताजा और तरल रंग।"[51]

इस कविता के माध्यम से हमें यह पता चलता है कि जहाँ इस बाँध परियोजना का निर्माण हो रहा था वहाँ सर्वाधिक आबादी आदिवासियों की रही है। सरकार ने बाँध की शुरूआत और उसके विस्तार के नाम पर आदिवासियों की जमीन को छीन लिया और उनको, उनकी परंपरागत जीवन-शैली जल, जंगल और जमीन से बेदखल करके विस्थापित जीवन जीने को बाध्य कर दिया है। सत्तातंत्र ने आदिवासियों को जबरदस्ती जंगलों से खदेड़ा और इसके कारण उनकी रहवास और आजीविका के स्रोत छीन गये। इस दमनपूर्ण तरीके के कारण आदिवासियों को जंगल से शहर की ओर पलायन करना पड़ा। शहर में उनको नये वातावरण में नहीं ढल पाने की वजह से, अनेक संकटों का

[51] सुबह के इंतजार में,पृ सं 14-16

सामना करना पड़ता है । जैसे- वेश-भूषा, खान-पान एवं भाषा का अवरोध नये वातावरण में हास्यास्पद स्थिति को जन्म दे देता है ।

उपर्युक्त बताये गये कारणों से आदिवासी अपनी पहचान खो रहे हैं । वे अपने जंगल एवं जमीन से छिन्न-भिन्न होकर अपने अस्तित्व की पहचान के लिए लड़ रहे हैं । जिन चीजों को आधार मानकर आदिवासियों की पहचान होती है । वे ही चीजें उनके पास नही हैं । जैसे जंगल और जमीन । हमारे देश में सरकार ने विकास के नाम पर आदिवासियों की व्यापक जमीन को छीना है । इन्हीं कारणों से आदिवासी अनेक समस्याओं में फँस गये हैं । अपनी संस्कृति एवं अस्तित्व खो रहे हैं ।

नीचे दी जा रही 'आदिवासी लड़की' नामक कविता के माध्यम से कवि हरिराम मीणा ने आदिवासी-स्त्री के प्रति परंपरागत कवियों के सौंदर्य-बोध पर प्रश्न चिह्न लगाते हुए उन्हें यथार्थ विरोधी के रूप में रेखांकित किया है । आदिवासी जीवन पर लेखन के लिए केवल रोमानी, अद्भूत और परंपरागत दृष्टि से नहीं लिखा जा सकता है । इसके लिए यथार्थ-बोध, विषय की जानकारी और ईमानदारीपूर्वक अभिव्यक्ति संवेदनशीलता के साथ होगी तभी वह आज के गंभीर साहित्य के पाठकों के गले उतरेगी । परंपरागत कवियों ने आदिवासी स्त्री की छवि को फार्मूलाबद्ध रूप में कैद करने की कोशिश की है । कवि ने इसे कवियों की भूल माना है और उस पर व्यंग्यात्मक रूप में कटाक्ष किया है । जैसे-

"गोल-गोल गाल
उन्नत उरोज
गहरी नाभि
पुष्ट जंघाएँ
मदमाता यौवन.... ।"[52]

उपर्युक्त कविता से हमें यह पता चलता है कि जिन रचनाकारों ने आदिवासी समाज/जीवन को बाहर से देखकर रचनाएँ की हैं, उन्हें यहाँ की समस्याएँ कैसे पकड़ में

---

[52] सुबह के इंतजार में,पृ सं 17

आयेंगी ? उन रचनाकारों की रचनाओं में अधिकतर काल्पनिक सौन्दर्य-बोध दिखाई देता है । इसकी वजह से आदिवासी युवतियों के वर्णन में गोल-गोल गाल, उन्नत उरोज, आकर्षक नाभि, पुष्ट जंघाएँ और मदमाते यौवन के अलावा उनके दुख-दर्दों का क्रूर यथार्थ उन्हें कहीं नजर नहीं आता । क्योंकि इन रचनाकारों ने आदिवासियों के जीवन को निकट से कभी नहीं देखा । इस तरह के कारणों की वजह से घटना या विषयों को लेकर सही ज़िक्र अपने साहित्यिक-लेखन में वे नहीं कर पा रहे हैं । इस बात को लेकर कवि चिंतित रहते हैं । इसके साथ-साथ नये रचनाकारों को विषय के साथ जुड़कर रचना-कर्म करने को प्रेरित करते हैं । और लिखते हैं कि- तुम जिस नारी का वर्णन कर रहे हो उसको पास से देखो तब उसकी पीड़ा, दुख-दर्द एवं वास्तविक समस्याओं की जानकारी के साथ उस आदिवासी महिला की वेदना और उसकी दरिद्रता का वर्णन भी करो । इसके लिए तुम्हें उनके बीच जाना होगा । इस तरह का विमर्शात्मक मुद्दा कवि हरिराम मीणा ने उठाया । इस कविता के माध्यम से मीणा ने नारी के आत्मसम्मान और उसकी दयनीय परिस्थिति के प्रति संवेदना व्यक्त की है । इसी दृष्टिकोण से नारी को देखने का वे प्रबल आग्रह करते हैं।

कवि ने इस कविता के माध्यम से आदिवासी समाज और लड़कियों की समस्याएँ, पीड़ा, दुख-दर्द को हमारे सामने रखा है । आदिवासी लड़की जंगली-काँटों, धूप और श्रम में जंगल के भीतर और बाहर किस प्रकार के संकटों का सामना कर रही है । इससे हमें अवगत कराया है ।

'खत्म होती हुई एक नस्ल' कविता के माध्यम से कवि ने इतिहास में हुए आदिवासियों के साथ अन्याय को समकालीन जीवन-स्थितियों से जोड़कर उसकी अबाध धारा को अभिव्यक्त किया है । जैसे-

"हमें पता नहीं-
हम बन्दर की औलाद हैं
या भगवान की मंसा
मगर, पैदा आदम-जात ही में हुए ।

......

मगर-

जिन्होंने हमें गोलियों से भूना- वे इन्सान थे !

जिन्होंने हमें टापूओं में इधर-उधर खदेड़ा- वे इन्सान हैं

और जो हमारी नस्ल को उजाड़ेंगे- वे इन्सान होंगे !!!"[53]

उपर्युक्त कविता में यह अर्थ देख सकते हैं कि आदिवासी नस्ल अब खत्म होती जा रही है । इसका कारण न तो प्राकृतिक शक्तियाँ हैं और न जंगली जानवर । बल्कि इसका कारण है- 'इंसान' । इसके अनेक कारण हम देख सकते हैं । जैसे- जहाँ आदिवासी निवास करते हैं वहाँ ब्रिटिश सरकार एवं जमींदार दोनों वर्ग एक-दूसरे से मिलकर उनकी जमीन हड़प लेते थे । आज बाँध के निर्माण, पावर-प्लांट के निर्माण या विकास के नाम पर हजारों एकड़ भूमि आदिवासियों से छीन ली गयी है । उस वजह से भूमि के मालिक, भूमिहीन बन गये हैं । यहाँ रहने वाले आदिवासियों को नौकरी देने का झांसा देकर उस क्षेत्र के कई आदिवासियों की भूमि हड़प ली गई है । उनकी जमीन अधिग्रहण करने के बाद भी संबंधित लोगों को प्रबंधन द्वारा नौकरी नहीं दी जा रही है ।

इस तरह एक इंसान का इंसान ही शोषण कर रहा है । सामान्य जनता का खून चूस रहा है । इस तरह के अन्याय का कवि ने विरोध किया है । उनके आग्रह को अपनी कविता में व्यक्त किया है । उनकी रचना में अधिकतर यथार्थवाद दिखाई देता है । क्योंकि वे खुद आदिवासी इलाकों में सक्रिय रहते हैं । इसके साथ वहाँ की जनता से संपर्क करते रहते हैं । देखी हुई घटनाओं को रचना के माध्यम से समाज के सामने रखते हैं ।

'राजस्थान में, भीषण अकाल' कविता में अकाल का वर्णन किया गया है । उस समय आम जनता को किस तरह की विपरीत स्थितियों में जीवन जीने को बाध्य होना पड़ा । उस अकाल ने मनुष्य को विस्थापित ही नहीं किया बल्कि उसकी चेतना को भी संज्ञाशून्य बना दिया । जैसे-

"इतने बड़े अपने साम्राज्य में

[53] सुबह के इंतजार में, पृ सं 32-33

सूरज को यहीं मिली
अपना अलाव जलाने की जगह !

....

और झुलस गया-
अन्न का आखिरी दाना
चारे का तिनका-तिनका
पानी का कतरा-कतरा ।"[54]

इस कविता में अनेक समस्याओं को कवि ने हमारे सामने रखा है । जैसे- अन्न और पानी ये दो भौतिक और लौकिक तत्व और द्रव्य प्रत्येक मनुष्य को जिलाये रखने वाले आवश्यक जीवन-प्रणाली के आधारभूत तत्व हैं । राजस्थान के इलाकों में इस तरह के भीषण अकाल के बारे में सुनने पर मन द्रवित हो जाता है । उस समय वहाँ अनेक लोग भूख से मर गए थे । इसके साथ-साथ अधिकतर लोगों ने उस जगह को छोड़कर दूसरे प्रांतों की ओर पलायन किया था । कवि ने इस कविता में अपनी संवेदनात्मक भावना को गहराई से व्यक्त किया है । इस प्रकार कवि ने आदिवासियों की मूल समस्याओं, उनकी भावनाओं का मार्मिक वर्णन करते हुए आदिवासियों में सामाजिक चेतना उत्पन्न करने का प्रयास किया है । साहित्यकारों, कवियों का भी यही कर्त्तव्य है कि वर्तमान में अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रहे आदिवासियों के प्रति सकारात्मक सहयोग दें, जिससे उन्हें सामाजिक बदलाव में सहायता मिले ।

2.4.2.5 'जंगल-जंगल जलियांवाला' (2008) - इस रचना को श्री हरिराम मीणा ने यात्रा-वृत्तांत के आधार पर लिखा है । इस रचना में 'मानगढ़', 'भूला-बिलोरिया' एवं 'पालचित्तरिया' इन तीन महत्वपूर्ण घटनाओं का वर्णन है । ब्रिटिश कालीन आदिवासी-संघर्षों पर श्री हरिराम मीणा ने महत्वपूर्ण कार्य किया है । मध्य भारत के राजस्थान एवं गुजरात की जलियांवाला जैसी तीनों घटनाओं पर उन्होंने शोध किया । इस शोध को उन्होंने यात्रा-वृत्तान्त विधा के रूप में लिपिबद्ध किया, जो वर्ष 2008 में 'जंगल- जंगल

---

[54] सुबह के इंतजार में,पृ सं *77*

जलियांवाला’ शीर्षक से पुस्तकाकार रूप में सामने आया है । यह पुस्तक भी एक चर्चित कृति के रूप में सामने आयी है । इस पुस्तक में वर्णित घटनाएँ 1913 एवं 1922 की हैं जिनमें ब्रिटिश सामंती- फौजों से लोहा लेते हुए करीब साढ़े तीन हजार आदिवासी शहीद हुए ।

2.4.2.5.1 मानगढ़ -

“हाँ, राजस्थान का दक्षिणी अंचल । बागड़ प्रदेश । आगे पहाड़ पीछे पहाड़ । पहाड़ ही पहाड़ । पहाड़ों के बीच छः सौ फीट ऊँचा एक पहाड़- मानगढ़ । मानगढ़ का ऊबड़-खाबड़ पठार । पठार पर जन-सैलाब । हजारों औरत-मरद-बच्चे । कम से कम चालीस पचास हजार । अधढँके साँवले आदिवासी ।”[55] यात्रा-वृत्तांतकार ने अपने फिल्ड कार्य में नाथूराम जैसे लोगों द्वारा कुछ सामग्रियों एवं घटनाओं की जानकारी प्राप्त की । इन्होंने सबसे पहले गोविंद गुरू के बारे में जानकारी प्राप्त की । इनका जन्म बंजारा परिवार में हुआ था । उन्होंने आदिवासियों के मन में चेतना पैदा की और गोविन्द गुरू कहलाये । वे आदिवासियों के बीच धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक चेतना फैला रहे थे । इसके साथ-साथ ‘संप सभा’ में आदिवासियों को इकट्ठा करने के बाद सामाजिक कुरीतियों,धार्मिक अंधविश्वासों के प्रति सचेत करते हुए अंततः उन्होंने राजनीतिक-आर्थिक शोषण के विरूद्ध विद्रोह किया था । गोविन्द गुरू आदिवासियों में बदलाव लाना चाहते थे । इसलिए उन्होंने उनके मन में जागृति की भावना को पैदा किया । वे कहते हैं कि “शराब मत पिओ । और मांस मत खाओ । चोरी, डाका, लूटपाट मत करो । मेहनत से काम करो । खेती, मज़दूरी करके अपना व परिवार का जीवन गुजारो । गाँव-गाँव में पाठशाला खोलकर बच्चों व बड़ों में ज्ञान का प्रकाश फैलाओ । भगवान में आस्था रखो । रोज स्नान करो । अपने बच्चों को संस्कारित करो । अदालतों में मत जाओ और अपने गाँव के झगड़ों को गाँव की पंचायत में ही निबटाओ । स्वदेशी का उपयोग करो । देश से बाहर

[55] जंगल जंगल जलियांवाला,पृ सं 26

बनी किसी भी वस्तु का इस्तेमाल मत करो.... ।”[56] गोविन्द गुरू ने सामान्य जनता को इस तरह की जानकारी दी थी । इसके साथ-साथ अन्याय एवं अत्याचार के विरूद्ध लड़ना सिखाया था । राजस्थान के आस- पास के आदिवासी इलाकों के ऊपर गोविन्द गुरू का प्रभाव दिखाई देता है । इनके विचारों के प्रभाव स्वरूप कुछ समस्याओं से आदिवासियों को फायदा हुआ । गोविन्द गुरू के नाम का नगाड़ा बजा । इसकी वजह से आदिवासी दूर-दूर से आकर ‘धूणी स्थल’ पर वार्षिक मेला के रूप में एकत्रित हुए थे । ब्रिटिश सरकार एवं जमींदार ने इस सभा को दबाने की कोशिश की । इसके परिणामस्वरूप देशी व अंग्रेजी सत्ता ने विशेष रणनीति बनाई । उसके बाद सभी फौजी टुकड़ियाँ मानगढ़ मेला दिवस से पूर्व अपने-अपने मुख्यालयों से रवाना होकर आम्बदरा में एकत्रित हुईं ।

उसके बाद आदिवासियों ने मानगढ़ मेले के दौरान पंचायत की । “यह तारीख 17 नवम्बर, सन् 1913 का दिन था । गुप्त रणनीति के अन्तर्गत देशी व फिरंगी फौजें चुपचाप पृथक-पृथक जंगली-पहाड़ी रास्तों से मानगढ़ पर्वत पर चढ़ती गईं ।

अचानक-

“फायर !” आदेश हवा में गूँजा ।

तड़ातड़....तड़ातड़.....तड़ातड़......

“फायर !!”

तड़ातड़...तड़ातड.....तड़ातड़....तड़ातड़.....

कमाडेंट जे.पी.स्टोक्ले की अगुवाई में मेवाड़ भील कोर की दो, राजपूत रेजीमेंट व जाट रेजीमेंट की एक-एक कम्पनियों की फौज ने पहाड़ के दक्षिणी उठान पर चुपचाप चढ़कर बिना किसी चेतावनी के आदिवासियों पर बन्दूकों और मशीनगनों से हमला बोल दिया ।”[57]

---

[56] जंगल जंगल जलियांवाला,पृ सं 26-27

[57] जंगल जंगल जलियांवाला,पृ सं 30,31

इस भयानक संघर्ष में 1500 आदिवासी शहीद हुए थे । उस दिन मानगढ़ पर्वत पर, मेला के अवसर पर 50,000 आदिवासी अपने दुःख-दर्द भी पूरी तरह नहीं बाँट सके, गोविन्द गुरू का संदेश भी पूरा न सुन सके, इस घटना के बाद गोविन्द गुरू को गिरफ्तार कर लिया गया । इस तरह आदिवासी इलाकों में घटित त्रासद घटना की शहादत को यात्रा-वृत्तांत के रूप में खोजी- अन्वेषक हरिराम जी समाज के सामने लाए ।

2.4.2.5.2 भूला-बिलोरिया - भूला गाँव में यात्रा-वृत्तांतकार को नानजी और सुरत्या दो बुजुर्गों के द्वारा पर्याप्त जानकारी मिली । सुरत्या ने भूला-बिलोरिया घटना को खुद अपने आँखों से देखा था तब उनकी उम्र दस-बारह साल की थी । उस समय लगान एवं शोषण के विरूद्ध मोतीलाल तेजावत ने आंदोलन चला रखा था । सुरत्या के अनुसार- “मोतीलाल बनिया (तेजावत) ने ‘एक्या’ का ऐलान किया । मुख्य मुद्दा लगान का था । सरकार ने हर परिवार से पाँच माणें (20 सेर) मक्का या सवा रूपया माँगा । आदिवासियों के लिए यह लगान चुकाना संभव नहीं था ।”[58] यह आंदोलन मोतीलाल तेजावत के नेतृत्व में लगान के विरोध में ही शुरू हुआ था । जैसे - “तारीख 5 मई, 1922 को सुबह से लीलूड़ी-बड़ली की तलाई पर चारों तरफ के आदिवासी इकट्ठे होने लगे । सुबह दस बजे एकदम फौजें आयीं । उनके पास बन्दूकें थीं । फौजों में कुछ ठिगने कद के गोरे रंग के (गोरखा पलटन) कुछ लम्बे-भूरे (जाट व राजपूत रेजीमेंट) और कुछ ठिगने साँवले (मेवाड़ भील कोर) थे । तड़ातड़ गोलियाँ दागी । मोतीलाल ने शुरू में कहा कि- “डरो मत, बन्दूकों की नली में से गोली नहीं निकलेगी, वरन् पानी निकलेगा ।” लोग डटे रहे । लेकिन जब देखा आसपास आदमी हताहत होने लगे, चिल्लाने लगे तब भगदड़ मच गयी । मोतीलाल भी पहाड़ों में भाग गया ।”[59]

इस मरणकाण्ड के डर से आदिवासियों ने जंगल एवं पहाड़ों की ओर पलायन किया। इस घटना में बहुत सारे आदिवासी शहीद हुए थे । इस घटना के बाद जो लोग

---

[58] जंगल जंगल जलियांवाला,पृ सं 55-56

[59] जंगल जंगल जलियांवाला,पृ सं 56

जिंदा बच गये उनको पकड़कर मारा गया । “आसपास के गाँव भूला-बिलोरिया, मोरस,कम्बोई, कूकावास, माँडवा, बाखर व नीचला गढ़ क्षेत्र के आदिवासी अपने गाँवों में लौटे । दोपहर बाद भूला व बिलोरिया गाँवों में फौजियों ने आग लगा दी । झोपड़ियाँ, सामान, अन्न, चारा, मवेशियाँ व अन्दर मौजूद छुपे औरतें, मरद व बच्चों में से काफी जलकर राख हो गये । कुछ अधजले शरीर नाले के एकाध गड्ढों में भरे पानी में जान बचाने के लिए कूदे । उनमें से भी कई मर गये थे । अगले दस-पन्द्रह दिनों तक बचे हुए आदिवासी लोग पहाड़ियों पर रहे । पाँच मई की रात भर फौजें लोगों को ढूँढती रहीं । जो पकड़ में आया, उसे पीट-पीटकर अधमरा करती रहीं” ।[60] इस तरह घटित दुर्घटनाएँ किसी समाज में हमें नहीं दिखाई देती हैं । हत्याकाण्ड के साथ-साथ झोपड़ियों को जलाना इस तरह का क्रूर संहार हमें आदिवासी इलाकों में दिखाई दिया ।

“इस हत्याकाण्ड की पृष्ठभूमि में आदिवासियों के अनेक दुख-दर्द थे, जिनमें अकाल, रियासत व जागीरदारों के द्वारा ली जाने वाली बेगार, वन-सम्पदा के उपयोग पर सत्ता की पाबन्दी, भारी लगान, छोटे- ठिकानेदारों, उनके मातहत अफसरों व कर्मचारियों द्वारा अन्य प्रकार के शोषण, जिनमें आदिवासी महिलाओं का दैहिक शोषण आदि प्रमुख थे” ।[61] आदिवासी इलाकों में अकाल के समय में भी लगान वसूल किया जाता था । इनका जीवन जंगल के ऊपर पूर्णरूपेण निर्भर था । ये लोग जंगलों में फूल-फल, लकड़ी, तेंदू पत्ता के आधार पर अपनी जीविका/आजीविका चलाते थे । लेकिन ब्रिटिश सरकार ने आदिवासियों के जंगल प्रवेश को रोका इसी वजह से उन्होंने विरोध किया । इसके साथ-साथ जागीरदार, अफसरों व कर्मचारियों का प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में दैनिक शोषण का ये लोग विरोध करने लगे । इस तरह सरकार के विरोध में बैठे हुए एक्या सभा के आंदोलन को दबाने के लिए मुखिया, जागीरदार एवं ब्रिटिश सरकार सब मिलकर फौजियों को साथ में लेकर आदिवासियों के ऊपर टूट पड़े । इन लोगों के सामने खड़े रहने के लिए न इसके पास बंदूक न ठीक तरह से हथियार एवं तीर थे ।

[60] जंगल जंगल जलियांवाला,पृ सं 56

[61] जंगल जंगल जलियांवाला,पृ सं 58

2.4.2.5.3 पालचित्तरिया -

आदिवासियों एवं ब्रिटिश सरकार दोनों के बीच में 'मानगढ़', 'भूला-बिलोरिया' हत्याकाण्ड के साथ 'पालचित्तरिया' में घटित घटना को भी महत्वपूर्ण आदिवासी हत्याकाण्ड के रुप में देख सकते हैं । 'पालचित्तरिया' गाँव में अंग्रेजी रियासती फौजों से लड़ते हुए अधिकतर आदिवासी शहीद हुए थे । इस तरह हत्याकाण्ड के बारे में सुनकर यात्रा-वृत्तांतकार ने लिखा है कि-" मैं आदिवासियों के उस बलिदान स्थल की यात्रा करूँ, लोगों से मिलूँ और जो कुछ भी प्रामाणिक व आधिकारिक तथ्य सामने आये, उन्हें इकट्ठा करूँ ।"[62] इस तरह का निर्णय लेकर यात्रा-वृत्तांतकार घटना-स्थल पर पहुँच गया ।

यात्रा-वृत्तांतकार ने घटना स्थलों से जुड़े हुए लोगों से बात-चीत कर कुछ जानकारी प्राप्त कीं । जैसे- सुरेश भाई ने पालचित्तरिया के बारे में बताया था, उसकी बातचीत के अनुसार "मोतीलाल तेजावत के नेतृत्व में विजयनगर रियासत के उस स्थल पर आठ से दस हजार आदिवासी एकत्रित हुए थे । मेवाड़ भील कोर के तत्कालीन कमाण्डेंट मेजर एच.जी. शटन की अगुवाई में ब्रिटिश एवं रियासती हथियारबन्द फौजों ने उन्हें घेर लिया और बन्दूकों व मशीनगनों से अन्धाधुन्ध गोलियाँ दागीं । आदिवासियों में भगदड़ मच गयी । वे मोर्चा भी नहीं संभाल पाये । यह घटना 7 मार्च, सन् 1922 की थी जिसमें हजार-बारह सौ आदिवासी शहीद हुए जिसकी पुष्टि राजस्थान सेवा संघ की रिपोर्ट करती है । दरअसल घटना स्थल पर बलिदान हुए आदिवासियों की संख्या उतनी नहीं थी जितनी कि घायल होने वाले और बाद में इलाज के अभाव में सेप्टिक होकर मरने वालों की थी ।"[63] घटना-स्थल पर जिस स्मारक का उद्घाटन गुजरात के तत्कालीन मुख्यमंत्री नरेन्द्र मोदी (वर्तमान में भारत के प्रधानमंत्री) ने किया वहाँ रोपे गये प्रस्तर-पट्ट की इबारत इस प्रकार है- "1922 में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरूद्ध अपने हक की

---

[62] जंगल जंगल जलियांवाला,पृ सं 68

[63] जंगल जंगल जलियांवाला,पृ सं 104

लड़ाई में जलियांवाला काण्ड से ज्यादा बड़ा काण्ड यहाँ हुआ जिसमें 1200 आदिवासी शहीद हुए । आदिवासी अमर रहें ! इस स्मारक का 22 मार्च, 2003 में गुजरात के मुख्यमंत्री नरेन्द्र मोदी ने उद्घाटन किया ।"[64]

यात्रा-वृत्तांतकार ने 'यात्रा से पहले' भूमिका के रूप में लिखा है कि- आदिवासी बलिदान की इन तीन बड़ी घटनाओं को मैंने तो यात्रा-वृत्तांतिक शैली में समेटने का प्रयास इस कृति में किया है । अब यह ईमानदार इतिहासकारों का धर्म व कर्म है कि वे इनका इतिहास लिखें । यह पुस्तक मैं उन आदिवासी शूरमाओं को समर्पित करता हूँ, जो अपने हिस्से की ही नहीं बल्कि भारत देश की स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ते-लड़ते शहीद हुए।

2.4.2.6 'धूणी तपे तीर' (2008) -

'धूणी तपे तीर' उपन्यास को मानगढ़ नरसंहार को केंद्र में रखकर श्री हरिराम मीणा ने पूर्ण किया है । इस उपन्यास का श्री हरिराम मीणा ने शोध के आधार पर ही लेखन-कार्य शुरू किया था । इसलिए 'धूणी तपे तीर' उपन्यास को शोध परक उपन्यास की श्रेणी में रखा गया है । इस उपन्यास में उपन्यासकार ने मानगढ़ (धूमाल) आदिवासी आंदोलन को अपना विषय का केंद्र बिंदु बनाया है । आदिवासियों एवं अंग्रेजों के मुठभेड़ का ज़िक्र हमें इतिहास - लेखन में कम ही नज़र आता है । जिस विषय को, जिस घटना को इतिहास में जगह नहीं मिली, उसी विषय को आधार के रूप में लेकर रचना करना कोई चुनौती से कम नहीं है । श्री हरिराम मीणा ने इस रचना-कर्म को एक चुनौती के रूप में लेकर मानगढ़ की वास्तविक घटना को ऐतिहासिक उपन्यास के रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है । इस कृति को रचकर उपन्यासकार हरिराम मीणा ने साहित्य के बड़े-बड़े विद्वानों की, इतिहासकारों की एवं रचनाकारों की इस तरह की ऐतिहासिक घटनाओं को अनदेखा किये लोगों की आँखें खोल दीं । इस तरह की घटनाओं को इतिहास में जगह देने के लिए इस रचना के माध्यम से अपना विचार उपन्यासकार ने अभिव्यक्त किया है ।

[64] जंगल जंगल जलियांवाला,पृ सं 104

गोविंद गुरू आदिवासी इलाकों जैसे- बांसवाडा, डूंगरपुर, उदयपुर, प्रतापगढ़, रतलाम, सैलाना, झाबुआ, झालौद और सूंथ आदि में घूमकर आदिवासियों को समझाते रहते थे। आदिवासियों को एकजुट करके अन्याय के विरूद्ध आंदोलन करने को कहते थे।

बेगार, लगान, शोषण के विरूद्ध में 'संपसभा' के सदस्य गोविंद गुरू के आदेश से आदिवासी मानगढ़ पर्वत पर एकत्रित हुए थे। उस समय अंग्रेजों की फौजों ने आदिवासियों को चारों तरफ से घेर लिया। उसके बाद सूचना दिये बिना आदिवासियों पर गोलियाँ बरसाने लगे। इस मुठभेड़ में 1500 आदिवासी शहीद हुए, उससे ज्यादा घायल हुए थे। यह घटना नवंबर 17, 1913 ई. में घटित हुई थी। जलियांवाला-काण्ड से भी चार गुणा अधिक आदिवासी लोग शहीद हुए थे। लेकिन इस तरह की यथार्थ घटना का ज़िक्र हम इतिहास में नहीं देखते हैं। इस तरह आदिवासियों के साथ होने वाले अन्याय को लेकर उपन्यासकार चिंतित रहते हैं। जैसे- " जलियांवाला काण्ड अमृतसर (1919) से छः वर्ष पूर्व दक्षिणी राजस्थान के बांसवाड़ा जिला के मानगढ़ पर्वत पर घटित हो चुका था जिसमें जलियांवाला से चार गुणा शहादत हुई। अब छः सौ फीट की ऊंचाई के पहाड़ पर 54 फीट ऊंचा शहीद-स्मारक बना दिया गया है। गोविन्द गुरू की प्रतिमा भी है, फिर भी उस स्थल पर और ध्यान देना अपेक्षित है।"[65]

2.4.2.7 'आदिवासी दुनिया' (चुनिंदा मुद्दों पर विमर्श, 2012) -

'आदिवासी दुनिया' इस आलोचनात्मक कृति में श्री हरिराम मीणा के लेखों का संकलन है। इस कृति में अधिकतर लेख वे हैं जो विभिन्न साहित्यिक- पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। श्री हरिराम मीणा की इस आलोचना-कृति में आदिवासी- विमर्श के विभिन्न मुद्दे उभरकर सामने आये हैं। इस कृति में आदिवासियों के अतीत से लेकर वर्तमान तक की समस्याएँ हम लोग देख सकते हैं। हरिराम मीणा की इस कृति में आदिवासी-अस्तित्व और अस्मिता पर संकट, उसकी विरूपित छवि, नक्सलवाद, प्रदूषण, विस्थापन और पुनर्वास आदि मुद्दों पर विशेष बल दिया गया है। चिंतक हरिराम मीणा

---

[65] धूणी तपे तीर, पृ सं 20

मिथक को खंगाल कर वहीं से आदिवासी-जीवन को देखते हैं। मिथकों में आदिवासियों को कितनी जगह मिली है ? मिली है तो किस रूप में ? आदिवासी की छवि को किस रूप में चित्रित किया गया है ? आदिवासियों द्वारा किये गये युद्धों का ज़िक्र इतिहास में कहीं देखने को क्यों नहीं मिलता है ? इस तरह के सवालों को लेकर आलोचक ने गंभीरता से आदिवासी- विमर्श की बहसों को सही दिशा के साथ सृजनात्मक संदर्भ दिया है।

इस किताब के माध्यम से आलोचक श्री हरिराम मीणा ने साहित्येतिहास के पुनर्मूल्यांकन की बात की है। आदिवासियों को विकास के नाम पर जल, जंगल और जमीन से क्यों विस्थापित किया जा रहा है ? उन कारणों की सही- सही पड़ताल उन्होंने इस पुस्तक में की है। आदिवासियों का धर्म और धर्मांतरण का मुद्दा भी विमर्शकार की दृष्टि का अभिन्न हिस्सा बना है।

आदिवासी जंगल को आधार बनाकर अपना जीवन जीता है। हज़ारों सालों से उसी परंपरा में रहकर जी रहा है। वर्तमान में उनकी जमीन किस तरह हस्तगत करके उन्हें भूमिहीन किया जा रहा है, इसे हम हरिराम मीणा के लेखन के माध्यम से समझ सकते हैं। इसके साथ-साथ आदिवासियों का धर्म, संस्कृति एवं भाषाओं पर बाहरी समाज का कुप्रभाव किस तरह पड़ रहा है ? इसे भी हम लोग देख सकते हैं। इतिहास में थोड़ी-बहुत जगह आदिवासी को मिली भी है तो उसे किस रूप में प्रस्तुत किया गया है ? इसकी सम्यक् जानकारी भी इस पुस्तक में उपलब्ध है। जैसे- “राम-रावण युद्ध में दोनों ही तरफ से मरने वाले आदिवासी-अनार्य और युद्ध किसके लिए ? इससे भी आगे-आपके लिए जो मानव समुदाय शत्रुपक्ष था उसे मनुष्य न मानकर राक्षस, असुर, दैत्य, दानव न जाने किस-किस तरह से विरूपित किया गया और जिन्होंने आपका साथ दिया उन्हें गिद्ध, रीछ, वानर आदि की संज्ञा देकर जंगली जानवरों की श्रेणी में रख दिया ताकि भविष्य तक में कभी उनकी असली पहचान न हो सके ?”[66]

---

[66] आदिवासी दुनिया, पृ सं 24-25

2.4.2.8 'मानगढ़ धाम' (2013) -

'मानगढ़ धाम' 'धूणी तपे तीर' उपन्यास का ही संक्षिप्त कथा रूप है । श्री हरिराम मीणा ने मानगढ़ आंदोलन को संक्षिप्त रूप में 'मानगढ़ धाम' के माध्यम से समाज के सामने प्रस्तुत किया है । इस कृति के प्रधान पात्र गोविंद गुरू के माध्यम से रचनाकार ने आदिवासी समुदायों के मध्य एकजुटता की भावना को विकसित करने का प्रयत्न् किया है । श्री हरिराम मीणा की इस कृति का मूल उद्देश्य यह रहा है कि- आदिवासियों को जागृत करके उन्हें सही राह दिखाना । जैसे- "जब मन के भीतर भूत नहीं रहेगा तो बाहर का कैसा भूत आकर खा जायेगा । भूतों के किस्से वहम के किस्से हैं । ऐसी बेतुकी बातों पर विश्वास नहीं करना चाहिए । बेचारी औरतों को डाकिन बताकर मार तक देते हो । मुझसे भोपे नाराज क्यों हैं ? इस सवाल पर सोचो ! वह इसलिए कि ये भोपा लोग मंतर-तंतर, जादू-टोना, मूँठ देने और झाड़ा-फूँकी का ढोंग रचकर भोले-भाले लोगों को बहकाते हैं और ठगते हैं । मैं इसका विरोध करता हूँ । वह इसलिए कि ये लोग जो कुछ करते हैं वह बहकाने वाली बातें हैं ।"[67]

2.4.2.9 'समकालीन आदिवासी कविता' (2013) -

'समकालीन आदिवासी कविता' कवि हरिराम मीणा के द्वारा संपादित कविता-संकलन है । इस कविता-संकलन में 29 कवियों / कवयित्रियों की कविताओं का ज़िक्र हम देख सकते हैं । प्रमुख रूप से देखा जाय तो इस कविता-संकलन में आदिवासी-विमर्श के विभिन्न मुद्दे उभरकर सामने आये हैं । इस कविता-संकलन में सभी कविताएँ आदिवासी-जीवन को आधार बनाकर लिखी गईं हैं । इन कविताओं में संस्कृति, आंचलिकता, आदिवासियों की मनोदशा, अतीत, प्रकृति-प्रेम, सौंदर्य-बोध, पीड़ाएँ, संघर्ष एवं चेतना आदि को अपनी-अपनी रूचि के अनुसार कवियों / कवयित्रियों ने अभिव्यक्त दी है ।

---

[67] मानगढ़ धाम, पृ सं 67

वर्तमान-संदर्भ में आदिवासी किस तरह की समस्याओं से जूझ रहा है । हम लोग इन कविताओं के माध्यम से समझ सकते हैं । इन कविताओं में प्रकृति के साथ छेड़छाड़, पर्यावरण का हनन इसके साथ-साथ सांस्कृतिक - प्रदूषण भी हम देख सकते हैं । इन कविताओं के माध्यम से अन्याय के विरूद्ध जंग छेड़ने की चेतना का विकास होता है । प्रकृति- छेड़छाड़ को लेकर कवयित्री यहाँ आदिवासियों के साथ-साथ आम जनता को भी सचेत कर रही है कि जितना प्रकृति को छेड़ेंगे आनेवाले दिनों में होने वाले परिणाम का हम अंदाजा भी नहीं लगा सकते हैं । इस तरह प्रकृति-प्रदूषण के बारे में हम लोग ग्रेस कुजूर की 'हे समय के पहरेदारो' नामक कविता के माध्यम से समझ सकते हैं । जैसे-

"इसलिए फिर कहती हूं
न छेड़ो प्रकृति को
अन्यथा यही प्रकृति
एक दिन
मांगेगी
हमसे
तुमसे
अपनी तरूणाई का
एक-एक क्षण
और करेगी
भयंकर....बगावत
और तब
न तुम होगे
न हम होंगे !"[68]

उपरोक्त कविता के माध्यम से हमें यह पता चलता है कि विकास के पैरोकार जितना प्रकृति को छेड़ेंगे उतना प्रतिफल उन्हें भोगना होगा । एक पीढ़ी ने प्रकृति के संतुलन को बिगाड़ दिया तो इसका प्रतिफल दूसरी पीढ़ी के लोगों को भोगना होगा ।

[68] समकालीन आदिवासी कविता, पृ सं 25-26

जैसे- सालों-साल अकाल, पानी की समस्या, स्वास्थ्य की समस्या आदि को हम देख सकते हैं।

इस संग्रह में हरिराम मीणा की 'आदिवासी और यह दौर' नामक कविता संकलित की गई है। इस कविता में कवि को चिंता है कि परंपरागत और आदिम मानव समुदाय भविष्य के ब्लेक होल में समाता जा रहा है। ज्ञात आदिमता सजीव संग्रहालयों में तब्दील की जा रही है। ग्लोबल-विकास के पैकेज पर प्रकृति-पुत्र विस्थापित और आतंकित किये जा रहे हैं। चौतरफा असंतुलित विकास का चक्र आदिम संस्कारों को निगल रहा है। पूँजी का प्रेत चारों ओर चुपचाप घने जंगलों के सपनों को समाप्त कर रहा है।

2.4.2.10 'खाकी में कलमकार' (2015) -

'खाकी में कलमकार' श्री हरिराम मीणा के द्वारा लिखा गया संस्मरण है। रचनाकार ने जीवन से जुड़े अनुभवों के आधार पर इस रचना को पूर्ण किया है। नौकरी मिलने से पहले रचनाकार की क्या स्थिति है ? सबसे पहले उन्होंने रिजर्व बैंक में नौकरी प्राप्त की। उसके बाद उन्होंने पुलिस की नौकरी प्राप्त की। पुलिस-कर्म और साहित्य-कर्म के मध्य एक सेतु बनाने की कोशिश इस रचना में दिखती है। इस संस्मरण के द्वारा हम साहित्य के प्रति उनकी रूचि के बारे में जान सकते हैं। साहित्य-लेखन की शुरूआत में रचनाकार श्रमशील लोक-जीवन से संबंधित कविताएँ करते थे। इनकी प्रधान रूचि कविता-लेखन में रही है। पुलिस की नौकरी पाने के बाद उन्हें समय कम मिलता था, समय का अभाव, समय का दबाव ये सब उनके जीवन की अनुभूति का हिस्सा रहे हैं। अपने कार्य में व्यस्त रहने पर भी वे साहित्य-लेखन के लिए समय निकालते थे। इस तरह की अनेक घटनाओं का वर्णन हम इस संस्मरण के माध्यम से देख सकते हैं। साहित्य को लेकर वे सपनों में भी चिंतन करते रहते हैं। दिन में अनेक घटनाओं को देखते हैं, जो देखी हुई घटनाएँ सपनों में उन्हें किस तरह डराती है, हम इस संस्मरण के माध्यम से समझ सकते हैं। इस कृति में सपनों से संबंधित एक उद्धरण को देख सकते हैं। जैसे- "इलाका में कोई अपराध हो जाए और उसकी सूचना उच्चाधिकारियों को दी जाती तो ऐसा लगता

जैसे हमने ही वह अपराध किया हो । जैसा माहौल वैसे ही सपने आने लगे । एक अजीबोगरीब डर भीतर बैठता जा रहा था । बेचैनी काटने को दौड़ती थी । एक सपने ने मुझे चौंका दिया ।"[69]

2.4.2.11 'आदिवासी लोक की यात्राएँ' (आदिवासी यायावरी) (2016)-

'आदिवासी लोक की यात्राएँ' हरिराम मीणा का हाल ही में प्रकाशित यात्रा-वृत्तांत है । इस पुस्तक की योजना वर्ष 2015 में बनी थी लेकिन इसका प्रकाशन इस वर्ष ही (2016) हुआ है । प्रस्तुत पुस्तक को हरिराम मीणा ने श्री जयपाल सिंह मुंडा को समर्पित किया है जो भारत की संविधान निर्मात्री सभा के मुखर एवं प्रभावशाली आदिवासी सदस्य थे । जिन्होंने आदिवासी समाज के स्वर को अभिव्यक्त किया । इस पुस्तक में देश के विभिन्न क्षेत्रों के 12 आदिवासी जन-समुदायों के जीवन को लेकर लेखन हुआ है । ये आदिवासी जन-समुदाय हैं – अंडमान की आदिम जनजातियाँ (जारवा, ओंग), बैगा (वेरियर एल्विन साहब, याद है क्या कोशीबाई ?), बंजारा (खाली करो रायसीना हिल्स), भील, चेंचू, गरासिया, गोंड, लेप्चा, मीणा, मुंडा, नीलगिरि पर्वतमाला के आदिवासी और सहरिया । इस पुस्तक की भूमिका यात्रा-वृत्तांतकार ने 'प्रस्थानः यहाँ से देखो' नाम से लिखी है । यात्रा-वृत्तांतकार भारत की आदिवासी दुनिया के भूगोल और उसके वर्तमान से हमें अवगत कराते हैं । समकालीन दौर में रचना का लोक पक्ष से जुड़ाव व्यापकतर हुआ है । भारत के आदिवासियों की स्थिति, इतिहास और जीवन – विधान को इस यात्रा-वृत्तांत में प्रमुखता से अभिव्यक्ति प्राप्त हुई है । यात्रा-वृत्तांतकार की साहित्य के पाठकों से यह अपेक्षा है कि भारत देश को यदि समझना है तो उसकी वास्तविक जमीन आदिवासी भारत से उन्हें गुजरना ही होगा । भारतीय समाज को लेकर शिक्षित मध्यवर्ग

---

[69] खाकी में कलमकार, पृ सं 23

का उदासीन रवैया कहीं-न-कहीं रचनाकार को बेचैन करता है । भारत के आदिवासी जन-समुदायों की सोच से परिचित होकर ही समग्र रूप में उन्हें हम विकास की राह से जोड़ सकते हैं । आदिवासी समाज को जानना ही भारत को जानना है । यह एकांगी वक्तव्य तो है लेकिन इसको बिना समझे हुए समग्र भारत की तस्वीर उभरकर सामने नहीं आ सकती है । आदिवासी दुनिया, बहुरंगी दुनिया है । 'आदिवासी लोक की यात्राएँ' देश के आदिवासियों के इतिहास, समाज, संस्कृति और वैश्वीकरण के दौर में उन समाजों पर पड़ते हुए प्रतिकूल प्रभावों की चिंताओं को अपने में समेटे हुए बहुत ही महत्वपूर्ण रचना है। यात्रा-वृत्तांतकार का एक महत्वपूर्ण उद्धरण इस प्रकार से है –" आदिवासी अस्तित्व में रहेगा तो जंगल सुरक्षित रहेगा, जंगल सुरक्षित रहेगा तो प्रकृति बचेगी, प्रकृति बचेगी तो पृथ्वी और पृथ्वी सही सलामत है तो उसका आसमान भी बचेगा । इसलिए संसार का प्रत्येक आदिम समुदाय धरती को माँ तथा आकाश को पिता मानकर चलता है, हवा व पानी को क्रमशः बहन तथा भाई और अग्नि को मित्र, चाहे वह उत्तरी अमरीका रेड इंडियन हो, दक्षिण अमरीका का बुश नीग्रो हो, अफ्रीका का जूलू हो या फिर अंडमान का जारवा हो ।"[70]

2.5 सम्मान और पुरस्कार -

श्री हरिराम मीणा को सामाजिक सेवा एवं साहित्यिक रचना के आधार पर अनेक सम्मान एवं पुरस्कार दिये गये हैं । इन्हें हम तीन वर्गों में विभाजित करके देख सकते हैं ।

1.प्रशासनिक एवं पुलिस सेवा में योगदान से संबंधित सम्मान / पुरस्कार –

श्री हरिराम मीणा का व्यक्तित्व बहुमुखी और बहुआयामी है । भारतीय पुलिस सेवा के अंतर्गत भी इन्हें राष्ट्रपति मेडल से सम्मानित किया जा चुका है । निदेशक, सोसाइटी फॉर स्टडीज़ इन द एरियाज ऑफ़ ट्रेडीशन एंड ह्यूमन डिग्निटी, माननीय

[70] आदिवासी लोक की यात्राएँ, पृ सं 10

राज्यपाल, राजस्थान के प्रतिनिधि के रूप में इनकी सेवाएँ और महत्वपूर्ण सुझाव वर्तमान में लिये जा रहे हैं । इसके अलावा बोर्ड ऑफ मैनेजमेण्ट, जनजातीय **विश्व**विद्यालय, उदयपुर के ये सदस्य भी हैं।

2.सामाजिक एवं पर्यावरण के क्षेत्र में योगदान से संबंधित सम्मान / पुरस्कार –

वन्य जीव-रक्षणा के लिए सबसे पहले उन्हें वर्ष 1999 में 'पदम् श्री साँखला अवार्ड' नेचर क्लब ऑफ इन्डिया द्वारा प्रदान किया गया। इसके साथ-साथ दलित चेतना के क्षेत्र में कार्य करने की वजह से श्री मीणा को वर्ष 2000 में 'डॉ. आम्बेडकर राष्ट्रीय अवार्ड' मिल चुका है।

3.भाषा, साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में योगदान से संबंधित सम्मान / पुरस्कार –

श्री हरिराम मीणा का पहला कविता - संग्रह 'हाँ चाँद मेरा है' शीर्षक से प्रकाशित हुआ है इसी पुस्तक पर इन्हें राजस्थान साहित्य अकादमी का 'सर्वोच्च मीरां पुरस्कार' वर्ष 2003 में प्रदान किया गया। उन्हें राष्ट्र भाषा हिन्दी समिति डूंगरगढ़ द्वारा 'साहित्य श्री' सम्मान वर्ष 2005 में प्राप्त हो चुका है । पाँचवा सिद्ध फाउण्डेशन का 'साहित्यिक पुरस्कार' भी इन्हें वर्ष 2007 में मिल चुका है। इसके साथ-साथ केन्द्रीय हिन्दी संस्थान का अत्यन्त प्रतिष्ठित 'महापंडित राहुल सांकृत्यायन पुरस्कार'-वर्ष 2007, श्री हरिराम मीणा को उनके खोजी साहित्य एवं हिंदी भाषा को अवदान के लिए दिनांक 16-2-2009 को राष्ट्रपति भवन में दिया गया। 'के.के. बिडला फाउंडेशन' की ओर से राजस्थान के मूल निवासी रचनाकारों को दिया जाने वाला 'बिहारी पुरस्कार' (2012) भी इन्हें प्राप्त हुआ है। भोपाल में आयोजित '**विश्व** हिंदी सम्मेलन' (2015) में उन्हें रचनात्मक योगदान के लिए पुरस्कृत भी किया गया है। हैदराबाद **विश्व**विद्यालय के दलित-आदिवासी अध्ययन

एवं अनुवाद केंद्र (CDAST) ने इन्हें विजिटिंग प्रोफेसर के रूप में भी आमंत्रित किया था, जहाँ पर इन्होंने 'आदिवासी-विमर्श' से संबंधी विशेष पाँच व्याख्यान दिये, जो पुस्तकाकार रूप में 'आदिवासी-विमर्श' नाम से छप चुके हैं। हरिराम मीणा जी को जयपुर लिटरेरी फेस्टिवल में विशेष रूप से आमंत्रित किया गया जहाँ उन्होंने अपनी रचना का पाठ किया।

वर्तमान में ये अध्यक्ष हैं- 'अखिल भारतीय आदिवासी साहित्यिक मंच' के।

4.भावी – योजनाएँ -

श्री हरिराम मीणा की दृष्टि भारतीय मिथकों में आदिवासी की छवि के डिकोडीकरण करने की है। भारतीय साहित्य में (मौखिक, लिखित रूप) आदिवासी मिथकों और लोक से उसके संबंध को जोड़ने की भी इनकी योजना आगे बढ़ी है। समेकित भारतीय आदिवासी साहित्य का प्रकाशित रूप सामने लाने के लिए ये अलख प्रकाशन से जुड़कर कार्य कर रहे हैं। जिसके अंतर्गत मलयालम, तेलुगु, मराठी और भारत की विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं में लिखित आदिवासी – साहित्य को हिंदी भाषा में अनुवादित करवाने का सार्थक और महत्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं। श्री हरिराम मीणा शब्द-शिल्पी हैं जो निरंतर शब्द की साधना को महत्व देते आ रहे हैं। उन्होंने डाँग क्षेत्र (धौलपुर, भरतपुर, करौली) में पुलिस सेवा के अनुभवों पर आधारित एक नवीन और अप्रकाशित उपन्यास भी लिखा है जो उनकी शब्द के प्रति अटूट निष्ठा, राग को ही दर्शाता है। मानव जीवन में अपराध के स्वरूप और अपराधी के समाज – मनोविज्ञान को समझने की उन्होंने निरंतर कोशिश की है। सामाजिक – दायित्वबोध को निभाते हुए उन्होंने इस अनुभव – संपदा को साहित्य में प्रविष्ट कराया है। इससे समाज की परंपरागत सोच में बदलाव आया है और एक संवाद का स्पेस तैयार हो रहा है।

आदिवासीयत की चिंता इनके-लेखन में विशिष्ट होकर उभरी है। मानवता का वह अंश जो हमारे परिवेश और स्वभाव के अनुकूल है जो सहज एवं सादगी से युक्त है। उसे

बचाने की मुहिम को लेकर ये आगे बढ़ रहे हैं और रूढ़ियों, विकास विरोधी स्थितियों के खिलाफ इनके लेखन में प्रतिरोधी स्वर उत्तरोत्तर मुखर होता जा रहा है।

तृतीय अध्याय

हरिराम मीणा की कविताओं में अभिव्यक्त आदिवासी-जीवन

कवि के रूप में हरिराम मीणा ने अभी तक कुल तीन कविता-संग्रह लिखे हैं । इन सब के अलावा एक और संग्रह का संपादन उन्होंने किया है । इन चारों संग्रहों में उनकी आदिवासी-जीवन को देखने की दृष्टि बहुआयामी संदर्भों को उपस्थित करती है । समकालीन परिस्थितियों में आदिवासी जीवन के समक्ष विभिन्न चुनौतियाँ ही इनकी कविता के मूल में हैं । कवि की चिंताओं में निम्नांकित आदिवासी जीवन के बिंदु देखे जा सकते हैं-

1. आदिवासी जीवन की प्रगतिशील परंपराओं के संरक्षण पर बल
2. परंपरा और इतिहास का द्वंद्व
3. आदिम आदिवासियों के अस्तित्व का प्रश्न
4. आदिवासी दुनिया का विस्थापन
5. वर्तमान विकास के स्वरूप पर प्रश्न चिह्न
6. आदिवासी शिक्षा और आदिवासी स्त्री के सवाल ।

कवि हरिराम मीणा की कविताओं में भारत के आदिवासियों की वेदना, सांस्कृतिक-क्षरण, दुःख-दर्द, संघर्ष, अकाल की मार और शोषण, आदिवासी स्त्री का जीवन-संघर्ष से इतर आदिम आदिवासियों के अस्तित्व पर गहराते संकट की अनेक संवेदनात्मक अभिव्यक्तियाँ देखी जा सकती हैं । कवि ने आदिवासियों के जीवन- यथार्थ को बड़ी बारीकी से अभिव्यक्त किया है । हरिराम मीणा के काव्य-संग्रहों में यथार्थ-बोध की झलक हमें दिखाई देती है । हरिराम मीणा का जो रचना-संसार है वह आदिवासियों की दुनिया से जुड़कर लिखा गया है । इनकी रचनाएँ गहन शोधपरकता से उपजी हैं । हरिराम मीणा की कविताओं की भाषा-शैली सरल एवं सुबोध है । उन्होंने शोध-कार्य हेतु जिन-जिन इलाकों में पर्यटन किया है उन राज्यों की संस्कृति, जीवन-विधान एवं समस्याओं को अपनी रचनाओं में प्रस्तुत भी किया है । इसके साथ-साथ आदिवासी

घटनाओं से जुड़े लोगों से रचनाकार ने बातचीत करके उनकी मनोदशा एवं पीड़ा को अपनी रचनाओं में अभिव्यक्ति दी है। प्राक्-ऐतिहासिक-युग से लेकर समकालीन दौर में आदिवासियों के समक्ष चुनौतियों को प्राथमिकता से इन्होंने अभिव्यक्त करने की कोशिश की है। आदिवासी के अस्तित्व को लेकर रचनाकार हमेशा चिंतित रहे हैं।

कवि हरिराम मीणा ने आदिवासी जीवन की समस्याओं को केंद्र में रखकर अनेक कविताएँ रची हैं। प्राचीन-काल से लेकर वर्तमान-काल तक आदिवासी किस तरह की समस्याओं से जूझ रहा है ?, यह हम उनकी कविताओं के माध्यम से समझ सकते हैं। कवि हरिराम मीणा की कविताओं के अंतर्गत निम्नांकित कविता-संग्रह हैं-

1. 'सुबह के इंतजार में',

2. 'हाँ, चाँद मेरा है',

3. 'रोया नहीं था यक्ष' (प्रबंध - काव्य),

4. 'समकालीन आदिवासी कविता' (संपादन)।

इनकी कविताओं में आदिवासियों के जीवन का निकटतम संबंध के बोध का अहसास पाठक को होता है। इनकी रचना में आदिवासियों के आंतरिक - संघर्ष की अभिव्यक्ति को भी हम देख सकते हैं। हरिराम मीणा की कविताओं के अध्ययन से हमें आदिवासी समाज का जीवन-यथार्थ, वास्तविकता और सच्चाई की एक नई राह दिखाई देती है।

3.1 'सुबह के इंतजार में' अभिव्यक्त आदिवासी - जीवन -

यह कविता-संकलन दो भागों में बाँटा गया है। पहला-भाग में कवि ने अण्डमान के आदिवासियों को केंद्र में रखकर कविताएँ लिखीं हैं। दूसरा - भाग के अंतर्गत आदिवासियों के ज़िक्र के साथ-साथ गैर-आदिवासी की आदिवासी विषयक दृष्टिकोण की भी यहाँ अभिव्यक्ति हुई है। इस कविता-संकलन में आदिवासियों की जीवन-शैली के साथ-साथ प्रकृति, पर्यावरण, अस्तित्व, वेश-भूषा, अस्मिता, खान-पान, अकाल, विस्थापन, वैश्वीकरण का प्रभाव, आदिवासियों के विश्वास, आदिवासी-वीरों की वीरता

एवं स्त्री-विमर्श आदि विषय उभरकर सामने आये हैं । इन तमाम विषयों को लेकर विस्तारपूर्वक जानकारी कविताओं के माध्यम से प्राप्त कर सकते हैं-

3.1.1 ऐतिहासिक आदिवासी नायकों से प्रेरणा ग्रहण करना -

सबसे पहले हम हरिराम मीणा के पद्य-साहित्य के अंतर्गत 'सुबह के इंतजार में' कविता-संग्रह को लेकर चर्चा करेंगे । इस कविता संग्रह में कुल 46 कविताएँ हैं । ये सभी कविताएँ आदिवासियों की वेदनाओं से भरी है । इस कविता- संग्रह को हम दो भागों में बाँटकर देख सकते हैं । पहला भाग- **'आदिवासी'** और दूसरा भाग **'आसपास'** । इस कविता-संग्रह की शुरूआत 'बिरसा मुंडा की याद में' ...कविता से होती है । इस कविता के माध्यम से आदिवासी योद्धाओं की किस तरह हत्या की जाती है ? इसे हम समझ सकते हैं । जैसे-

"अभी-अभी
सुन्न हुई उसकी देह से
बिजली की लपलपाती कौंध निकली...
तीर की तरह जंगलों में पहुँची ...
वहाँ की हवा, धूल, जमीन में समा गई...
मैं केवल देह नहीं
मैं जंगल का पुश्तैनी दावेदार हूँ ...
मुझे कोई भी
जंगलों से बेदखल नहीं कर सकता
उलगुलान ! उलगुलान !! उलगुलान !!!"[71]

बिरसा मुंडा आदिवासियों का नेतृत्व करने वाला लोक नायक था । आदिवासियों को एक जगह पर एकत्रित करके उनके अंदर चेतना के बीज बोने में बिरसा मुंडा की इतिहास में महत्वपूर्ण भूमिका रही है । उन्होंने आदिवासियों को अन्याय, अत्याचार एवं शोषण के विरूद्ध आवाज उठाना सिखाया । उन्होंने लगभग 1895-1900 ई. तक अंग्रेजों

---

[71] सुबह के इंतजार में, पृ सं 9

एवं दिकुओं के खिलाफ लड़ाई लड़ी थी । आदिवासियों को जंगल पर अपने अधिकारों के लिए लड़ना सिखाया । उनकी आवाज ही जनता को जागृत करती थी । बिरसा के विचार हमेशा लक्ष्य की ओर अग्रसरित करते हैं । वे हमेशा आदिवासियों को प्रबोधित करते थे और कहते थे कि- 'जंगल के अधिकारी हम ही हैं ।' 9 जून, 1900 में राँची जेल में बिरसा मुंडा की हत्या कर दी गई । बिरसा मुंडा की हत्या को लेकर सरकार ने एक बीमारी का बहाना प्रस्तुत कर दिया । कवि हरिराम मीणा बिरसा मुंडा की हत्या को लेकर कहते हैं कि इसके पीछे एक षड्यंत्र रहा है ! यह बात सुनते ही लगता है कि यथार्थ का दूसरा प्रतिरूप सामने आ जाता है । बिरसा का नाम सुनते ही जनता में जोश, उमंग और उत्साह का भाव पैदा हो जाता है । लगता है कि बिरसा का नारा अभी भी झारखण्ड के जंगलों में गूँज रहा है । जनता को प्रेरणा देना और संघर्ष की राह की ओर बढ़ाने में उपरोक्त कविता का मूल भाव निहित है । कोई हमें हमारे जंगलों से बेदखल नहीं कर सकता यह प्रतिरोधी चेतना 'उलगुलान ' के द्वारा विकसित हुई है । जिसको लेकर कवि आगे बढ़ना चाहता है ।

बिरसा मुंडा की मौत के बाद भी 'दिकुओं' का डर और बढ़ने लगा । बिरसा को लेकर दिकू किस तरह की डरपोक जिंदगी जी रहे थे । बिरसा का नाम सुनते ही दिकुओं के मन में किस तरह के विचार फैल रहे थे इसे हम निम्न पंक्तियों के माध्यम से समझ सकते हैं-

"क्या किया जाए इसका ?
हैरान थे,
दिकुओं के ताकतवर नुमाइंदे
जिन्दा रहा खतरनाक बनकर
मार दिया तो
और भी भयानक
अगर दफनाया तो धरती हिलेगी
जो जलाया-आँधी चलेगी ।...
वे छुपाते रहे सुनसान अन्धी गुफा में
जिसके दूसरे छोर पर गहरी खाई

वहीं उन्होंने

बिरसा मुंडा से निजात पाई ।"[72]

उपर्युक्त काव्य-पंक्ति के माध्यम से पता चलता है कि जब बिरसा मुंडा जिंदा था तब भी दिकुओं को डराया और मृत्यु के पश्चात् भी बिरसा मुंडा को लेकर दिकुओं के मन में भय फैला हुआ था । बिरसा दिकुओं के विरूद्ध घातक हो गया था । इसलिए बिरसा इतनी छोटी उम्र में 'धरती का आबा' बन गया । बिरसा मुंडा के मरने के बाद भी दिकुओं के लिए खतरनाक बनकर उनके अंदर भय का संचार कर गया । उनकी मृत्यु के उपरांत 'उलगुलान आंदोलन' और भयंकर रूप धारण कर रहा था । अगर बिरसा मुंडा की मृत्यु की खबर आदिवासियों तक पहुँची तो बाद में होने वाले दुष्परिणामों को लेकर कोई सोच भी नहीं सकता था । इसलिए बिरसा की मृत्यु को लेकर 'दिकू' और डरे हुए थे । इसलिए दिकुओं ने बिरसा को दफनाया नहीं । बिरसा को चुपचाप एक षड्यंत्र करके जला दिया ।

बिरसा का व्यक्तित्व प्रेरक एवं आदिवासी लोक मानस के अनुकूल बन गया । झारखंड के आदिवासी बिरसा मुंडा को 'आदिवासी आबा' के रूप में पूजते हैं । बिरसा मुंडा आदिवासियों को जंगल पर अपने हक के लिए, लड़ने को प्रेरित करता था । बेगार, शोषण, अत्याचार के विरोध में आदिवासियों को साथ लेकर बिरसा मुंडा ने आवाज उठायी थी । इस तरह आदिवासियों के अंदर चेतना फैलाने वाले नायक के साथ-साथ उनका नेतृत्व करने वाले नेताओं से भी दिकुओं को डर था । दिकुओं के कानून का कोई विरोध किया तो ये लोग सबसे पहले उसकी हत्या करवाते थे । इसका मूल कारण यह था कि- आंदोलन को कमजोर करना है । इसी तरह बिरसा मुंडा की हत्या की गई थी ।

बिरसा मुंडा की मृत्यु के बाद भी दिकूओं के मन में कैसी विचारधाराएँ, चिंताएं एवं भावनाएँ हैं इसे हम निम्न काव्य-पंक्तियों के माध्यम से समझ सकते हैं । जैसे-

"कहते हैं-

[72] सुबह के इंतजार में, पृ सं 10-12

काले साँप को मारकर गाड़ देने से
खत्म नहीं हो जाती यह सम्भावना कि
पुरवाई चले और वह जी उठे ...
उन्होंने
आदमी समझकर बिरसा को मार दिया
मगर बिरसा आदमी से बढ़कर था
वह आबा
वह भगवान्
वह जंगल का दावेदार .... ।"[73]

बिरसा मुंडा आदिवासियों से कहता था कि- जंगल पर अधिकार एवं जंगल का मालिक, परंपरा से आदिवासी ही है । जंगल से मुझे और मेरे साथियों को हमारे आदिवासी समुदाय को कोई अलग नहीं कर सकता है । बिरसा मुंडा हमेशा यह सोचता रहता था कि आदिवासी-जीवन के समक्ष समस्या से मुक्त होना है तो विद्रोह करना ही है । बिरसा आदिवासी को संदेश देता है कि अपना मूल अस्त्र विद्रोह है, इसके साथ ही हमें आगे बढ़ना होगा । बिरसा दिकुओं से हमेशा यही कहता था कि 'जंगल हमारा है ।' 'जंगल पर अधिकार हमारा है ।' 'जंगल के मालिक हम हैं ।' 'हमें जंगल से बेदखल कोई नहीं कर सकता ।' इस तरह बिरसा आदिवासियों के बीच रहकर अपना प्रबोधन देता रहता था । वीरोचीत गुणों से युक्त बिरसा मुंडा का व्यक्तित्व, पाठकों के अन्तःकरण में उत्साह, अन्याय के खिलाफ लड़ने का जज्बा पैदा करता है । वह हमेशा आदिवासियों से कहता था कि- 'जंगल के लिए जान देंगे लेकिन जंगल से कटकर नहीं रहेंगे ।' हम एक साथ रहकर एक ही आवाज में विरोध करेंगे तो हमें हमारे पुश्तैनी जंगल से कोई बेदखल नहीं कर पायेगा! इस तरह संदेश देकर बिरसा ने आदिवासियों को आंदोलन की ओर अग्रसर किया था । उनको सामान्य आदमी समझकर हत्या की गई थी लेकिन आदिवासियों के दिल-

[73] सुबह के इंतजार में, पृ सं 12-13

दिमाग में वह भगवान बनकर अमर हो गया। इसलिए उनका प्रभाव मध्यभारत के हर आदिवासी के ऊपर दिखाई देता है।

3.1.2 आदिवासी-युवतियों के प्रति ग़ैर-आदिवासी कवियों की सौंदर्य-दृष्टि का प्रत्याख्यान-

आदिवासी-लेखन में किस तरह का सौंदर्य-बोध व्यक्त हो रहा है ? आदिवासियों के प्रति ग़ैर-आदिवासी रचनाकारों का नज़रिया कैसा रहा है ? रंगीन चश्मा पहनकर लेखन करने वाले रचनाकारों के विरूद्ध आदिवासी रचनाकार किस तरह का संघर्ष करता है ? इस तरह के आदिवासी-विमर्श को हम हरिराम मीणा की 'आदिवासी लड़की' कविता के माध्यम से समझ सकते हैं। जैसे-

"आदिवासी युवती पर
वो तुम्हारी चर्चित कविता...
गोल-गोल गाल...
मदमाता यौवन
अहा,
क्या कहना कवि
तुम्हारे सौन्दर्य-बोध का
देखो गौर से उस लड़की को
जिसके गोल-गोल गालों के ऊपर -ललाट है
जिसके पीछे दिमाग
दिमाग की कोशिकाओं पर टेढी-मेढ़ी खरोंचें
यह एक लिपि है
पहचानो,
इसकी भाषा और इसके अर्थ को ...
फिर से लिखना

उस आदिवासी लड़की पर कविता ।”[74]

हरिराम मीणा की प्रतिबद्धता हाशिये पर जीवन जी रहे आदिवासी-जन के प्रति है। अतः कपोल-कल्पना को कवि आधारहीन और आदिवासी जनता के प्रति दुर्भावना के रूप में देखता है । वे इतिहास को नीचे की ओर से देखते हैं । अपनी संवेदना आदिवासी जन को देते हैं जो आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और सामाजिक रूप से अभावों में जीवन जी रहा है । यह कवि की प्रतिबद्धता को भी व्यक्त करता है । साहित्य या कविता में व्यक्त आदिवासी-स्त्री की छवि कलावादी, भद्रलोक के इच्छानुकूल है लेकिन आदिवासी जीवन-दृष्टि इसके प्रतिकूल । कवि हरिराम मीणा हमारे सामने प्रस्तुत होने वाले झूठे-साहित्य एवं गलत-लेखन का पुरजोर विरोध करते हैं । सही-लेखन सामने आने के लिए प्रयास करते हैं । पढ़े-लिखे रचनाकारों से इस कविता के माध्यम से रचनाकार आग्रह करता है कि कोई भी रचनाकार को लेखन-कार्य शुरू करने से पहले विशेषकर आदिवासी समाज से जुड़ना चाहिए । उनके साथ रहकर, आदिवासी-जीवन एवं समस्या को देखकर जो अनुभव करता है उसे सही-सही ढंग से अपने लेखन में अभिव्यक्त करना चाहिए । आदिवासियों को केंद्र में रखकर रचना करना आसान काम नहीं है । इनका साहित्य पूर्णतः अलग है । बाकी साहित्य की तुलना में आदिवासी-साहित्य लेखन को नहीं देखा जा सकता है । कल्पना के आधार पर आदिवासी-लेखन किया जाय तो वह साहित्य या रचना प्रमाणिक एवं सच्चाई के निकट नहीं होगी ।

आदिवासी लड़कियाँ जिन समस्याओं को लेकर जूझ रही हैं । उन समस्याओं को छोड़कर उनका सौंदर्य-वर्णन करना कहाँ तक तर्कपूर्ण है ? इसलिए कवि हरिराम मीणा रचनाकारों से विरोध के स्वर में कहते हैं कि कल्पना-जगत से बाहर निकलकर अपने रचना-कार्य को आगे बढ़ाए । कल्पना में कुछ भी जुड़ सकता है । इसलिए आदिवासी लड़की को समग्रता में रखकर रचना करनी चाहिए । तभी वास्तविक स्थिति का पता चलेगा । उसकी क्या स्थिति है ? उनके साथ रहेंगे तो रचनाकार भी अनुभव कर सकता है कि आदिवासी किस तरह का सुख भोग रहा है!

---

[74] सुबह के इंतजार में, पृ सं 17-19

आदिवासी राज्यों में हो रहा कुछ और रचनाकार प्रस्तुत कर रहा और कुछ ! इस तरह नहीं होना चाहिए । हरिराम मीणा की इस कविता का आशय है कि- आप जिस समुदाय पर लिखना चाहते हो, सबसे पहले वातानुकूलित कमरे से बाहर निकल कर आदिवासी समाज में प्रवेश करके अपनी आँखों में लगे रंगीन चश्मे को उतार कर देखो उनकी असली जिंदगी किस तरह की है ? उनके दर्द को महसूस करो । उनकी वेश-भूषा, खान-पान, रहन-सहन को देखते ही आप लोगों को उनकी असलियत समझ में आ जायेगी। उनके पास शरीर ढँकने को वस्त्र नहीं है, उन्हें अधनंगे देखकर उनका सौंदर्य-वर्णन करें । उनको कभी भी पेट भर खाना नसीब नहीं रहा इसका वर्णन हमारे लेखन में प्रस्तुत होना चाहिए । उनके आवासों तक बिजली नहीं पहुँची । आदिवासियों का रहन अंधेरे में, मच्छर-साँप-बिच्छू, खूँखार जानवरों के बीच बीतता है उनका जीवन-यापन देखकर आप लोग उनका सौंदर्य वर्णन कीजिए । आदिवासी समुदाय एवं स्त्रियों की वेदनाएँ, पीड़ाएँ, दुःख-दर्द सही ढंग से उभरकर लेखन के माध्यम से सामने आना चाहिए । हरिराम मीणा इस कविता के माध्यम से नये रचनाकारों को जागृत करते हैं कि वे सही-सही लेखन कार्य करें । उनकी समस्याओं की तह तक जाने की जिम्मेदारी रचनाकारों पर ही हैं । उनकी असली समस्याओं को केंद्र में रखकर अनेक रचनाएँ उभरकर सामने आनी चाहिए ।

3.1.3 आदिवासियों के अस्तित्व के प्रति चिंता -

इस समाज-व्यवस्था में एक मनुष्य, दूसरे मनुष्य को परेशान करता है । आदिवासियों को दिक्कत ऐसे मनुष्य से रही है । जंगल में बहुत सारे खूंखार जानवर रहते हैं । विषैले-सर्प और कीट उनके आस-पास रहते हैं । इससे आदिवासी कभी नहीं डरते । उन जन-समुदायों में कोई बाहर का व्यक्ति दिखाई देगा तो उन्हें डर लगता है । इसके पीछे कारण यह रहा है कि कौन होगा जो अपनी पवित्र-संस्कृति को अपवित्र कर सकता है ? शरण का नाम लेकर लोग आदिवासी इलाकों में आते हैं आखिर में आदिवासियों का शोषण करके सताते हैं । धोखेबाजी से उनकी हत्या भी करवा देते हैं । इस तरह का विचार उनके दिमाग में चलता रहता है । एक इन्सान की हत्या इन्सान ही कर रहा है । ये लोग किस तरह का षड्यंत्र रचकर कूटनीति पूर्वक आदिवासी समुदाय को मिटाना चाहते

हैं, इसे हम हरिराम मीणा की ‘खत्म होती हुई एक नस्ल’ नामक कविता के माध्यम से समझ सकते हैं। जैसे-

“नहीं छेड़ी हमने हिफाजती मुहिम -मौसमों के खिलाफ
घर नहीं बनाए
मगर, बेघर महसूस नहीं किया
रहे अपरिग्रही
फिर भी धनी।
हमने युगों-युगों से
खतरनाक सुअरों से लोहा लिया
-उन्हें खूब छकाया
मगर, खरोंचों के अलावा
कोई हादसा नहीं हुआ। ...
तूफानों ने हमारा कुछ नहीं बिगाड़ा
यहाँ तक कि - भूकम्प और ज्वालामुखियों ने भी
हमें नहीं उजाड़ा।...”[75]

उपर्युक्त कविता के माध्यम से कवि हरिराम मीणा यह बताना चाहते हैं कि बाहर से आनेवाले ‘दिकू’ ‘विषैले सर्प’ एवं ‘खूंखार जानवरों’ से भी खतरनाक हैं। आदिवासियों ने जंगल के साथ छेड़-छाड़ नहीं की है। एक इन्सान को दूसरे इन्सान का साथ देना या सहयोग करना चाहिए लेकिन आदिवासियों के प्रति ऐसा नहीं रहा। आजकल इन्सान के अंदर स्वार्थ-ही-स्वार्थ है। मुनाफा के लिए वह कुछ भी करने को तैयार है। कोई एक समुदाय समस्याओं से जूझ रहा हो तो उन पर सहानुभूति रखनी चाहिए लेकिन आदिवासी को और सताया जा रहा है। पूँजीपति अपना धनबल का प्रयोग आदिवासियों पर कर रहा है। उनका लक्ष्य- मुनाफा कमाना है। उनके जंगल, जमीन और जान माल को लेकर किसी को कोई चिंता नहीं है। कारखाने खड़ा करने के लिए लाखों आदिवासियों

[75] सुबह के इंतजार में, पृ सं 32-33

को उनकी जड़ों से उखाड़कर बेदखल कर रहे हैं। वे 'बेघर' सपने लेकर जी रहे हैं। वे अपनी नस्ल से कटने लगे हैं। यदि आदिवासी अपने हक के लिए लड़ेगा तो उसे 'नक्सल' कहकर उस पर गोली चलाते हैं। विद्रोह करने वाले समुदाय को विकास-विरोधी का आरोप लगाकर उनकी हत्या करवा रहे हैं। प्रकृति ने उन्हें कभी परेशान नहीं किया। पराये लोगों ने आदिवासियों को हमेशा प्रताड़ित किया है। .

3.1.4 आदिवासी - चेतना -

हरिराम मीणा की अधिकांश कविताएँ प्रबोधनपरक हैं। आदिवासियों को जागृत करना ही इनकी कविता का मूल उद्देश्य है। आदिवासियों पर होनेवाले अन्याय के विरूद्ध आंदोलन चलाने के प्रति इनकी कविता आदिवासियों को अग्रसर करती है। आदिवासियों में उत्साह लाने में इनकी कविताओं का योगदान रहा है। हरिराम मीणा की कविताएँ आदिवासियों को किस तरह जागृत करती है इसे हम 'सभ्यता के विस्तार के नाम पर हादसा' नामक कविता के माध्यम से समझ सकते हैं। जैसे-

"देखो ! वो आ रहे हैं
तुम देख रहे हो
तुम्हारी नसें तन रही हैं
तुम्हारी भुजाएँ फड़क रही हैं
तुम्हारे तीर-कमान तने हैं
तुम एकजुट हो
मगर, तुम कुछ नहीं कर रहे हो ?
देखो ! वो तुम्हारे टापू की तीर पर हैं
अब तुम्हारे टापू पर आ चुके हैं ...
-और तुम चुप हो ?
देखो ! उन्होंने आखिर तुम्हें खदेड़ ही दिया
-तुम्हारी जमीन से

तुम्हें नेस्तनाबूत करने के लिए
और तुम चुप हो !!!”[76]

इस कविता के माध्यम से हमें यह पता चलता है कि आदिवासी इलाकों में दिकुओं के प्रवेश के पश्चात् आदिवासी संस्कृति के साथ किस तरह की छेड़-छाड़ की जा रही है ? आदिवासी-संस्कृति को किस तरह प्रदूषित किया जा रहा है ? किस तरह आदिवासियों को अपना टापू, जंगल, संस्कृति से बेदखल कर रहे हैं । आदिवासियों को जंगल से मिटाने के लिए किस तरह का षड्यंत्र रचा जा रहा है ? इन मुद्दों को हम हरिराम मीणा की कविता के माध्यम से समझ सकते हैं । इसलिए कवि हरिराम मीणा इस कविता के माध्यम से सबसे पहले आदिवासी को जागृत करता है । उनके अंदर चेतना के बीज बोता है । उनके जंगल, जल, जमीन और संस्कृति को संरक्षित करने के लिए उनको खुद ही आवाज उठानी है । आदिवासी जब तक चुप रहेंगे तब तक ‘दिकू’ उन्हें चूसते रहेंगे । इसलिए कवि कहता है कि अपना, अस्तित्व, अस्मिता एवं संस्कृति को बचाना है तो शोषण एवं अन्याय के विरूद्ध विद्रोह करना ही होगा । तब आगे जाकर आदिवासियों को समस्याओं से मुक्ति मिल सकेगी । वर्तमान समय में ‘दिकू’ इनके जंगलों में कारखाने खड़ा कर के इनके जंगल, जमीन और जल को प्रदूषित कर रहे हैं । उनके जीवनाधार को छीनकर उन्हें बेदखल किया जा रहा है । इसलिए कवि अपनी लेखनी से आदिवासियों को संदेश देता है कि चुप्पी छोड़कर, विद्रोह की ओर आवाज उठायें तो आगे जाकर न्याय प्राप्त करने की संभावना बन सकेगी । इस तरह कवि आदिवासियों को अपनी सृजनात्मक-वाणी से चेतना फैलाकर आगे बढ़ने के लिए अग्रसरित करता है ।

3.1.5 अकाल का आदिवासी – जीवन पर प्रभाव -

‘अकाल’ में आदिवासियों की क्या हालत थी ? उन्हें किस तरह की समस्याओं का सामना करना पड़ा ? ‘अकाल’ ने आदिवासियों पर कैसा प्रभाव छोड़ा ? ‘अकाल’ ने

---

[76] सुबह के इंतजार में, पृ सं 43-44

आदिवासी जिंदगियों से किस तरह खेलकर उनको अपनी जमीन से पलायन करवाया ? इनको हम हरिराम मीणा के 'राजस्थान में भीषण अकाल' नामक कविता के माध्यम से समझ सकते हैं। जैसे-

"रेत के समन्दर पर
उगे थे मरगोजों की तरह उनके पुरखे
लाखों वर्ष पूर्व विस्थापित-
विराट जलराशि से नमी खोज कर।
आँधियों के जत्थे
गुजार दिए मरूधारा ने ऊपर से
अपनी देह पर
रेतीली लहरों के मांढणे उकेरने की जिद में
बादलों की बेरूखी के बावजूद
उनकी राह से बटोरी बूँदों में
अपना खून-पसीना मिलाकर सींचते रहे
-धरा को यहाँ के बाशिंदे।
अकाल बहुत-बहुत बार...किन्तु नहीं हार
संघर्ष लगातार....।
मगर इस बार
पिछली सदी दे गई सूखे की सौगात
जिसे स्वीकारता इस सदी का आगाज
साल-दर-साल-चार साल
अकाल-अकाल-अकाल
-हाल बेहाल।"[77]

उपर्युक्त कविता के माध्यम से यह पता चलता है कि अकाल में गरीबों की यानी कि राजस्थान में रहने वाले आदिवासी एवं मजदूरों की क्या स्थिति है ? किस तरह की

[77] सुबह के इंतजार में, पृ सं 76-77

समस्याओं से ये लोग जूझ रहे थे ? इसे हम लोग समझ सकते हैं । आदिवासियों को अंग्रेज, पूँजीपति एवं सरकार ने सताया था लेकिन उनके प्रति प्रकृति को भी दया नहीं आती है । सालों-साल अकाल, उनके जीवन से किस तरह खेल रहा है ? यहाँ सोचने की बात यह है कि अकाल चार साल तक उस धरती पर तांडव कर रहा है । अमीर लोगों के पास भविष्य के लिए इकट्ठा किये हुए धन-धान्य की कमी नहीं है । लेकिन गरीब समुदायों की जो स्थिति है, हमें अलग तरह से नज़र आयेगी । गरीब समुदाय रोजी- रोटी का ही इंतजाम कर सकते हैं । आदिवासी-समुदाय का जीवन जोखिम में है । इसलिए कवि इस कविता में अकाल पर ही बल देकर कह रहा है कि लगातार अकाल, चार साल, इस पृथ्वी पर सूर्य तांडव कर रहा है । इस भीषण अकाल में कितने लोग काल-कवलित हुए किसी को अंदाजा नहीं ! राजस्थान में बसने वाले सहरिया, गरासिया, भील, मीणा एवं बंजारा समुदायों की क्या स्थिति रही होगी ? इस बात को लेकर रचनाकार अपना विचार व्यक्त कर रहा है । कई आदिवासी समुदायों को अपनी पुश्तैनी भूमि को छोड़ना पड़ा । इस अकाल की वजह से आदिवासी एवं गरीब तबके के लोग अपनी जमीन से बेदखल हुए । सूखी जमीन को छोड़कर आगे बढ़े । इस तरह के भीषण अकाल के कारण मानव समुदायों के साथ-साथ जीव-जंतुओं को भी अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा था । इन समुदायों के जीवन जीने के प्राकृतिक-संसाधन मिट गये थे । आदिवासियों की कला-सामग्रियाँ नष्ट हुई हैं । उन समुदायों का मन कदापि अपनी जमीन को छोड़कर जाने को स्वीकार नहीं करता लेकिन जिंदगी चलाने हेतु जीने के लिए वे लोग अपनी जमीन से कटकर, पुरखों की पुश्तैनी परंपरा से कटकर आकाश की ओर ताकते-ताकते आगे बढ़ रहे थे । उन समुदायों की रक्षा तो प्रकृति ही करती थी । अकाल की वजह से उन समुदायों को बेसहारे आगे बढ़ना पड़ा ।

3.1.6 अण्डमान के आदिम आदिवासियों की चित्रित छवि -

'जारवा' भारत की एक ऐसी जनजाति है, जो किसी से मिलती-जुलती नहीं है । यह जनजाति अण्डमान के जंगलों में दिखाई देगी । इस जनजाति के लोग वर्तमान समय

तक सभ्य समाज से नहीं जुड़ पाए हैं । इनका समुदाय घने जंगलों में रहता है । इस जारवा जनजाति समुदाय की एक गर्भवती स्त्री अपनी प्रसव-वेदना के कारण अपने समुदाय से कट जाती है । अपने समुदाय से कटने के बाद उस जारवा औरत को किस तरह की समस्याओं का सामना करना पड़ा ? उस औरत के ऊपर किस तरह का दबाव पड़ रहा है ? किस तरह की सजा उसे भोगनी पड़ी है ? जारवा औरत के आत्म-संघर्ष को हरिराम मीणा ने 'कबीले से बिछुड़ी जारवा औरत' नामक कविता के अंतर्गत प्रस्तुत किया है । इस कविता में अण्डमान यात्रा के दौरान जारवा औरत की वेदना, संघर्ष, पीड़ा के साथ – साथ उसकी छवि को यथार्थ के रूप में अभिव्यक्ति प्राप्त हुई है-

"वह आई नहीं थी
आ ही नहीं सकती थी वह
अपने आदिम टापुई खोल से बाहर
उसे लाया गया था 'सभ्य आखेटकों' द्वारा
जब उसके पैर बहुत भारी थे
और उसकी कबीलाई टोली आगे निकल गई थी
किसी शिकार का पीछा करती
या बाहरी दबाव से डरती ।
अब वह पोर्टब्लेयर के अस्पताल में थी...
उसे वहीं छोड़ना पड़ा
जहाँ से लाया गया था
अब वह अपनी बच्ची के साथ
अपने लोगों के बीच थी । ...
उसके कबीलाई समूह ने चाव से सुने- पोर्टब्लेयर के किस्से
मगर उसे स्वीकार नहीं किया
वह पुनर्गर्भवती जो थी ।"[78]

[78] सुबह के इंतजार में, पृ सं 26-27

उपर्युक्त कविता के माध्यम से हमें यह पता चलता है कि जारवा जनजाति समुदाय की एक गर्भवती औरत को अपनी प्रसव-वेदना से मुक्ति हेतु उन्हें ग़ैर- आदिवासी समुदाय ने पोर्टब्लेयर अस्पताल तक पहुँचा दिया । जारवा औरत का मन भयभीत या डरा हुआ था । क्योंकि इस तरह के वातावरण में वह पहली बार प्रवेश की थी । उसे अंदर ही अंदर बहुत डर लग रहा था । कवि के अनुसार सभ्य समाज तक पहुँची यह पहली जारवा औरत थी । उस औरत का मन बार-बार अपने कबीले एवं टापू की ओर खींच रहा था । अस्पताल का वातावरण उसे भयानक लग रहा था । अस्पताल की बड़ी-बड़ी दीवारें, जेल की दीवारों से भी ऊँची लग रही थी । पुलिस उसे यमदूत की तरह नज़र आ रही थी । उसके साथ उनके समुदाय का कोई व्यक्ति नहीं था । जारवा औरत ने एक बेटी को जन्म दिया था । अस्पताल में माँ-बेटी को कोई जानने वाले, साथ देने वाले नहीं थे । वे दोनों बे-सहारे थे । लेकिन कुछ दिन बीतने के बाद उनका स्वास्थ्य ठीक होने के उपरांत जारवा औरत किसी ग़ैर-आदिवासी के घर में कुछ माह रहीं । कुछ दिनों के बाद जारवा औरत अपने समुदाय के सदस्यों से मिली, लेकिन कबीलाई समूह ने उस औरत को स्वीकार नहीं किया । इसके पीछे कारण यह है कि वह औरत पुनः गर्भवती थी । जब जारवा औरत बेसहारा थी तो किसने उसका साथ दिया ? जो औरत सहायता के लिए तड़प रही थी, उसे सहारा देकर शोषण करने को कवि अनुचित मानता है । वे इस तरह के अन्याय का विरोध करते हैं । इस कविता में कवि इस बात पर बल देता है कि किसी बेसहारा औरत का साथ न देकर उसका शोषण करना कहाँ तक न्यायोचित है ? इस तरह के अन्याय को लेकर कवि चिंतित रहता है । यहाँ यह अनुमान लगता है कि जारवा औरत से भूल हुई है या उसका बलात्कार हुआ तभी तो वह गर्भवती हुई । जिस व्यक्ति ने उसे गर्भवती किया, उसके परिवार ने उस औरत को नहीं स्वीकारा होगा, इसके साथ-साथ जारवा समुदाय ने भी उस औरत को स्वीकार नहीं किया । इस तरह अपने समूह से या समुदाय से कटने के बाद आदिवासी स्त्रियों को किस तरह के अपमान को झेलना पड़ता है । यह हम हरिराम मीणा की इस कविता के माध्यम से समझ सकते हैं । इस कविता के माध्यम से कवि यह कहना चाहता है कि एक स्त्री बेसहारा होकर अपने परिवार के पालन-पोषण हेतु बाहर निकलेगी तो पुरूष-वर्ग उन्हें किस तरह घूर-घूर कर और बातों से यातना पहुँचाते हैं ।

रूपये-नौकरी के लालच में उसका शारीरिक शोषण करते हैं। स्त्री अपने घर, समुदाय से कटने के बाद किस तरह की समस्याओं में पीसती है, इसके साथ-साथ जिस स्त्री के साथ अत्याचार हुआ उसे किस तरह का अपमान झेलना पड़ता है ? हम इस कविता के माध्यम से समझ सकते हैं।

जारवा औरत को उसका समुदाय स्वीकार नहीं करता है। उसे छोड़कर उनकी टोली आगे बढ़ जाती है। जारवा औरत अपने समूह से कटने के बाद अपने टापू, नारियल के पेड़, समुद्र के, सीप, घोंघे एवं मछलियाँ इसके साथ-साथ घने जंगल की हरियाली के लिए तड़पती रहती है। आदिवासी औरत अपने टापू, कबीले एवं जंगल के साथ महत्वपूर्ण संबंध रखती है। उसे अपने समुदाय से अलग किया गया है। औरत बार-बार कहती है कि मेरा कोई दोष नहीं है लेकिन समाज या समूह स्त्री को ही दोषी मानता है। औरत को अपना समुदाय से अलग होने के बाद पुश्तैनी जंगल की यादें किस प्रकार सताती है इसके साथ-साथ स्मृतियाँ भी उस औरत को किस तरह सताती है। इसे हम लोग निम्न-पंक्तियों के माध्यम से समझ सकते हैं-

“वह बहुत रोयी-गिड़गिड़ाई
‘मेरा कोई दोष नहीं।’
किन्तु वे नहीं माने
और उनकी टोली धँस गई जंगलों में
इस बार उसे जानबूझकर छोड़कर। ...
उसे सपने आते हैं-पाँच वर्ष पूर्व के
कई बार सदमें में बेहोश हो जाती है,
उसे नजर आते हैं जंगल और भागते सुअर
उसे लगता है-
अभी चढ़ जाएगी नारियल के दरख्तों पर
समुद्र से निकाल लाएगी
सीप,घोंघे और मछलियाँ
सूअर की सूखी खोपड़ी को लटकाएगी
-गलहार के रूप में

‘क्यूबो’ की रस्सी से बनाएगी समुद्री खोलों के -भुजबन्द
लाल मिट्टी से सजाएगी अपना चेहरा
धारदार सीपी से सँवारेगी अपने बाल।
जब होश आता है तो रहती है चुपचाप
और जब बेहोश होती है
तो-
भागती है टापुई जंगलों में.... ।”[79]

उपर्युक्त कविता के माध्यम से कवि स्त्री को ही दोषी के रूप में ठहराना अनुचित मानते हैं। एक दुःखी औरत को और दुःख देना, उन्हें सताना सही नहीं है। हम कोई नहीं जानते हैं कि वह जारवा औरत ग़ैर-आदिवासी पुरूष से आकर्षित हुई या उस औरत के साथ बलात्कार हुआ। इस प्रश्न का उत्तर सिर्फ जारवा औरत ही दे सकती है। यहाँ पर ध्यान देने की बात यह है कि जारवा औरत के मनमर्जी से जो कुछ हुआ है तो वह पुनः वापस लौटकर नहीं आती। वह औरत अपने समूह को तलाशकर आई है तो वह निर्दोष है। वह बेसहारा औरत अपने कबीले से बिछुड़ने के बाद किसी ग़ैर-आदिवासी की जाल में फंस गई होगी। इसी वजह से उसका दैहिक- शोषण हुआ होगा। समस्याओं से मुक्त होने हेतु अपने समुदाय से मिली तो उसका बोझ और बढ़ गया। इस तरह के स्त्री दैहिक-शोषण का कवि घोर विरोध करता है। हमारे समाज में औरत से बदसलुकी करने वाले ‘कामी-किचक’ को क्षमा नहीं करना चाहिए। जारवा समुदाय से कटने के बाद वह औरत अपने अस्तित्व को तलाशती है। बचपन से लेकर पारिवारिक जीवन की यादें बार-बार उसे सताती हैं। समुद्र के सीप, मछलियाँ, नारियल के पेड़, जंगल का पवित्र वातावरण उसे बार-बार याद आते रहते हैं। यहाँ सोचने की बात यह है कि जारवा औरत अपने पवित्र वातावरण, हरियाली, पेड़-पौधों, समुद्र से कटकर वह रह नहीं पा रही है। वह शहरी-जीवन नहीं जी पा रही है। दैनिक जीवन के अंतर्गत रहन-सहन, खान-पान में, वेश-भूषा में परिवर्तन के कारण उसे अनेक समस्याओं को झेलना पड़ रहा है। उसका स्वास्थ्य

[79] सुबह के इंतजार में, पृ सं 27-29

खराब होता जा रहा है । अपने समुदाय के बिना उसे सब कुछ शून्य लगता है । सपनों में कबीले की ओर बढ़ती रहती है । होश आने के बाद शांत एवं चुपचाप बैठती है ।

3.1.7 अंडमान के आदिवासियों की विश्वास-प्रणाली -

आदिवासी हज़ारों सालों से सुरक्षित जीवन जीते आ रहे हैं । लेकिन आधुनिक युग में तेजी से हर क्षेत्र में, हर विषय में परिवर्तन दिखाई दे रहा है । जितना विकास हो रहा है, उससे तिगुना नुकसान भी हो रहा है । प्रकृति को छेड़ने की वजह से प्रदूषण दिनों-दिन बढ़ रहा है । ओंकोबोंकी 'ओंग' जनजाति का देवता है । ओंग जनजाति देवता एवं प्रेतों में विश्वास रखती है । ओंग आदिवासी-धर्म, पूजा, परंपरा पर विश्वास रखते हैं । आदिवासी समूहों का सभ्य समाज से जुड़ने के बाद इनकी संस्कृति एवं जीवन-शैली में परिवर्तन हो रहा है । ओंग जनजाति 'ओंकोबोंकी' पर आस्था रखते हैं । उस देवता को पूजने के बाद कार्य शुरू करते हैं । यह देवता टापू के ऊपर आकाश में रहता है । ओंग समुदाय का विश्वास है कि- 'उनकी जनसंख्या की बढ़ोत्तरी उनके देवता की कृपा से ही संभव है ।' इस बिंदु को 'सभ्यता के साथ टूटती आस्थाएँ' नामक कविता के माध्यम से हम समझ सकते हैं। जैसे-

"ओंकोबोंकी,
जो हजारों सालों का बुढ़ापा नहीं कर सका
वह कर दिखाएगा इक्कीसवीं सदी का शैशव...
कि पहली बार आई है आखिर गियर में
-यह पृथ्वी
रफ्तार की धड़धड़ाहट से
-टूटेंगे तुम्हारे आदिमकवच ।...
सुनो, ओ ओंकोबोंकी !
तुम मत छोड़ देना
'लिटिल अण्डमानी' द्वीप के टूटते आकाश को

चूँकि, ये मानते हैं
स्त्री गर्भवती होती है तुम्हारी कृपा से
और तुम चले गए अगर-
तो बाँझ स्त्री को स्त्री नहीं मानेंगे ये
और पुत्र नहीं जनने पर दुत्कारेंगे
फिर स्त्री का क्या होगा
-ओंकोबोंकी ?"[80]

उपर्युक्त कविता के माध्यम से हमें यह पता चलता है कि नयी पीढ़ी के लोग सभ्य समाज से जुड़कर अपनी संस्कृति को भूल रहे हैं। परंपरा से चली आ रही हमारी पुश्तैनी विश्वास-प्रणाली का अस्तित्व बचेगा या नहीं, कह नहीं सकते हैं। वैश्वीकरण के इस दौर में आदिवासी अस्मिता एवं अस्तित्व मिटने की कगार पर है । आदिवासी- संस्कृति प्रदूषित हो रही है। वे लोग जंगल से बेदखल हो रहे हैं। सभ्य समाज से जुड़ने के बाद अपने आप पुश्तैनी, टापुई से आदिवासी कट जायेंगे । इस समुदाय के कुछ लोग सभ्य समाज के लालची प्रलोभन से आकर्षित होकर अपनी संस्कृति को प्रदूषित कर रहे हैं। इसलिए कवि हरिराम मीणा व्यंग्यात्मक दृष्टि से कहते हैं कि- वे लोग अपनी संस्कृति एवं पुश्तैनी को छोड़ते हैं तो छोड़ने दो लेकिन तुम मत छोड़ देना अण्डमानी द्वीप को। ओंग जनजाति के लोग यह मानते हैं कि स्त्री गर्भवती ओंकोबोंकी देवता की कृपा की वजह से होती है । ओंग समुदाय का मानना है कि- 'आकाश में रहनेवाले देवता ओंकोबोंकी की कृपा के बिना कोई स्त्री गर्भधारण नहीं कर सकती है। वह देवता छोटे बच्चों की आत्माओं को खाद्य-पदार्थों में प्रवेश कराकर खाने के माध्यम से स्त्री के गर्भ में पहुँचता है ।' इस कविता में रचनाकार ने पूजा-विधान, विश्वास पर बल दिया है। ओंकोबोंकी चले गये तो स्त्री को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ेगा। अगर कोई ओंग जनजाति की स्त्री गर्भ धारण नहीं करेगी तो उसको अपमानित किया जाता है। ओंग समुदाय या समाज में जिस स्त्री की संतान न होने के कारण अड़ोस-पड़ोस के लोग बातों से उन्हें दुःख पहुँचाते हैं। खासतौर पर देखा जाये तो संतानहीन स्त्री को परिवार के सदस्य के साथ-साथ समाज भी

---

[80] सुबह के इंतजार में, पृ सं 30-31

उन्हें अपमानित करता है । इसलिए आदिवासी स्त्रियों की शोभा बढ़ाने हेतु, ओंकोबोंकी, ओंग जनजाति स्त्री के हितैषी बनकर तुम्हें उनके टापू के आकाश में वास करना ही है । इस कविता के माध्यम से हमें यह पता चलता है कि हर आदिवासी समुदाय का अपना देवी-देवता रहता है । आदिवासी आत्मा-परमात्मा, जन्म, पुनर्जन्म पर विश्वास रखते हैं । ओंग जनजाति के समुदाय हाथ जोड़कर ओंकोबोंकी देवता से विनती करते हैं कि- 'उनके टापू पर कृपा रखें ।' 'उनकी स्त्रियों पर दया रखें ।' 'आपकी कृपा से हमारी जनसंख्या में बढ़ोत्तरी होनी चाहिए ।' ओंग जनजाति के टापू में जो कुछ होगा वह ओंकोबोंकी कृपा का प्रतिफल है । आखिर इस कविता के माध्यम से रचनाकार अस्तित्व, अस्मिता, संस्कृति को बचाने की बात करता है । अपनी परंपरा के साथ आगे बढ़ने की बात करता है ।

अण्डमानी आदिवासियों की जीवन-शैली किस प्रकार की है ? वहाँ कौन-कौन-सी जनजाति के लोग रहते हैं, हम लोग देख सकते हैं । उनके बीच जानेवाले पर्यटक किस तरह का विचार व्यक्त करते हैं । इस समुदाय के लोग सभ्य समाज से जुड़ते या नहीं, इन लोगों तक सरकारी योजनाएँ पहुँच पायी या नहीं । इसके साथ-साथ बाहर के लोगों से ये आदिवासी किस तरह का व्यवहार करते हैं । इस तरह के विषयों का ज्ञान हम लोग हरिराम मीणा के 'सरदार बख्तावरसिंह से मिलकर' नामक कविता के माध्यम से समझ सकते हैं । जैसे-

"इस बदहवासी
और स्वार्थी सभ्यता के बीहड़ों में
एक तुम ही तो नजर आए
-प्रेम के पाँखी
नहीं तो हमें लोग ऐसे मिले
जैसे कोई 'क्रेज' पाले हों
किसी विरले वन्य-जीव को देखने का
या, बीड़ा उठा रखा हो
हमें हमारी भौम से खदेड़ने का

या फिर-
हमें बन्दरों की तरह मान
खाद्य-सामग्री देने का
ताकि, खींच सकें वे फोटो
और फिर दिखाते रहें जिन्दगी भर
कि हम भाग्यशाली हैं
जो देख आए
अण्डमान के नंगे आदिवासियों को
और सारे बुद्धिजीवी
हमें सभ्यता की मुख्यधारा में
लाने की पेचीदा बहस में उलझे रहे
अन्त में-
यह निर्णीत करते रहे
कि-इन्हें डिस्टर्ब मत करो
अन्यथा, नंगे आदिवासियों का
ऐसा खुला म्यूजियम कहाँ मिलेगा ।"[81]

उपर्युक्त कविता के माध्यम से हम लोग अण्डमान के आदिवासियों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकते हैं । अण्डमान द्वीप में प्रमुख रूप से ओंग, जारवा और सेंटेनली जनजाति हमें दिखाई देती हैं । बख्तावर सिंह ने अण्डमानी आदिवासी जीवन-शैली के बारे में यथार्थ ढंग से हरिराम मीणा को बताया था । इस कविता के माध्यम से कवि महोदय ने आदिवासी को मज़ाक के रूप में लेनेवाले लोगों पर अपनी कलम से चुटकी ली है । जो-जो पर्यटक आदिवासी को देखने हेतु अण्डमान जाते हैं । उन्हें खाद्य-सामग्री फेंककर फोटो लेते हैं । आदिवासी-जीवन को मज़ाक के रूप में लेते हैं । उन लोगों का मज़ाक उड़ाते हैं । उनको इस स्थिति में देखकर विचार-विमर्श करने वाले कोई नहीं है । नंग-धड़ंग, आदिवासी समुदाय को देखकर सभ्य-समाज मजा ले रहा है । किसी को उनके बारे में चिंता नहीं है । उनके हित के बारे में सोचने वाले कोई नहीं है । मज़ाक उड़ाने वाले, कम नज़र से देखने वाले तो हैं लेकिन उनकी समस्या को लेकर कोई चिंतित नहीं है।

[81] सुबह के इंतजार में, पृ सं 39-40

कवि महोदय इन्हें कम नज़र, हेय- दृष्टि से देखने वालों का घोर विरोध करता है । जितने भी बुद्धिजीवी इनके बीच आयें हैं । उन्हें इस स्थिति में देखकर आनंद से बैठे हैं । उनके बारे में किसी को चिंता नहीं है । उनके साथ फोटो लेना / उतारना ही भाग्य मानकर चलने वाले लोग हमें दिखाई देंगे लेकिन उनका भाग्य बदलने वाले कोई नहीं है । आखिर में बहस के उपरांत कहते हैं कि नंगे आदिवासियों को डिस्टर्ब मत करना, अन्यथा ऐसा खुला म्यूजियम कहाँ मिलेगा ? इस तरह भूखे, नंगे, अज्ञानी, आदिवासी को लेकर इस तरह कहने के लिए शर्म आनी चाहिए । इसका मतलब यह है कि- उन समुदायों के लोगों तक सरकार की योजनाएँ तक नहीं पहुँच पाती है । ऊपर से कहते हैं कि- 'आदिवासियों को जानवरों की तरह जीवन जीने दो, उसी जीवन में वह खुश है ।' कवि महोदय यहाँ इस तरह के विचार में परिवर्तन लाने की बात करता है । आदिवासियों को विकास की योजना से दूर रखना है, इस तरह की सोच मुख्यधारा के समाज की रही होगी । इस तरह से सोचने वाले सत्ताधारियों का कवि अपनी कलम से विरोध करता है । आदिवासी हज़ारों सालों से जो जीवन जी रहा है । उसे उसी जीवन में जैसे- नंगा, बेघर, बीमार, अशिक्षित, अज्ञानी, विकास-योजना से दूर रखना कहाँ तक तर्कसंगत है ? कवि महोदय, आदिवासी-विकास के विरोधियों का घोर विरोध करता है । उन समुदायों को अज्ञान में रखकर उनके नाम पर करोड़ों रूपये किधर किन कंपनियों को जा रहा है ? कोई पता नहीं है । वर्तमान में आदिवासी के नाम लेकर जीने वाले, चलने वाले, उन्हें फोटो तक ही साथ दे रहे हैं । आदिवासी को कम नज़र से देखना, उसको मज़ाक जीवी समझना गलत है । जानवरों से उनकी तुलना करना पाप है । इस तरह ऊँच-नीच के भेद-भाव, सोच-विचार में परिवर्तन की बात यह कविता करती है ।

अण्डमानी आदिवासियों को सभ्य बनाने की जो सलाह थी वह कहाँ तक सही है । यहाँ सोचने की बात यह है कि आदिवासी सभ्य बनेंगे तो अनकी अस्मिता एवं अस्तित्व रहेगा क्या ? सभ्य समाज उन आदिवासी समुदायों के लिए एक तरह का नया वातावरण है, उस वातावरण को अपने अनुकूल बना पायेगा क्या ? इसके साथ-साथ आदिवासियों

को सभ्य बनाने के जो सोच-विचार थे, इस विचार के पीछे कोई-न-कोई षड्यंत्र तो जरूर रहा होगा । आदिवासी सभ्य बनने से पहले आदिवासियों को खुद सोच-समझकर निर्णय लेने की बात यह कविता करती है । हरिराम मीणा की यह कविता आदिवासियों को चेतना देती है कि आदिवासी खुद ही अपने दिमाग को चलाये । पुश्तैनी जंगल से कटने के बाद किस तरह की समस्याओं का उन्हें सामना करना पड़ता है । इस तरह के अनुभवों के आधार पर उन्हें खुद निर्णय लेना होगा । इस तरह अण्डमानी आदिवासियों को जो सभ्य बनाने की सलाह, विचार, षड्यंत्र के साथ-साथ उनके भविष्य को हरिराम मीणा की **'अंडमानी आदिवासियों को सभ्य बनाने की सलाह (?)'** नामक कविता के माध्यम से हम व्यापक जीवन का बोध प्राप्त कर सकते हैं । जैसे-

"ओ रे
मानवता के आदिम नुमाइंदो...
सब्जबागी सपनों के केनवास पर
खुशहाली के फूलों की जगह
मुझे नजर आते हैं-
फुटपाथी डेरे, झोंपड़पट्टी
कचरे के ढेर पर आँखें गड़ाए मासूम बच्चे
प्रौढ़ होता यौवन
बूढ़ा होता प्रौढ़ापन
भूख व बीमारी से खोखला
वक्त से पहले चुपचाप खत्म होता जीवन
और वहाँ-
तुमसे छूटी पुश्तैनी भौम पर
कँटीले तारों की पहरेदारी में नारियल के बागान
लहलहाते चावल के खेत
इमारती लकड़ी की मंडियाँ, कागज की मिलें
और आलीशान कोठियाँ
कोठियों में बहुत कुछ....जिसे तुम नहीं जान सकते
तय तुम्हें करना है-

वही अड़े रहोगे या सभ्य बनोगे ?"[82]

उपर्युक्त कविता के माध्यम से अण्डमानी आदिवासियों को कवि महोदय अपनी लेखनी से जागृत करता है। सभ्य बनने से पहले सोचने की चेतावनी देता है। इस कविता में कवि महोदय यह चिंता व्यक्त करता है कि आदिवासी को सभ्य समाज से जुड़ने की बात करनी चाहिए, सभ्य समाज से आदिवासी जुड़ेगा तो कवि को यहाँ पर कोई आपत्ति नहीं है। साथ ही कवि ने इस कविता के माध्यम से आदिवासी अस्तित्व की बचाने की बात भी व्यक्त की है। आदिवासी अपनी पुश्तैनी संस्कृति से अलग होने का घोर विरोध करता है। कवि-महोदय का बल इस बात पर है कि- आदिवासी जंगल के हरे-भरे वातावरण में खुश है तो उसे सभ्य बनाने के चक्कर में उन समुदायों को यातनाएँ नहीं पहुँचानी चाहिए। आदिवासी को सभ्य बनाने के पीछे कोई-न-कोई षड्यंत्र जरूर रहा होगा। इनके नीचे खनिज-संपदा को निकालना एवं आदिवासियों का शोषण एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। उनकी अस्मिता, अस्तित्व को मिटाने के लिए तो सभ्य बनाना एक ही रास्ता बचता है। उन्हें सभ्य बनाकर उनकी संस्कृति को प्रदूषित करके आखिर आदिवासी-अस्तित्व को मिटाने की साजिश तो कहीं रची जा ही रही है।

आदिवासियों को सभ्य बनाने की बात सुनते ही कवि को डर महसूस होने लगा आखिर आनेवाले दिनों में आदिवासियों की क्या दशा होगी ! आदिवासियों के जीवन को लेकर उन्होंने कल्पना की है कि- आदिवासी जंगल से कटकर नहीं रह पायेंगे। आदिवासियों के अंदर धीरे-धीरे परिवर्तन लाना चाहिए। किसी भी योजना-प्रणाली के साथ आदिवासियों को जोड़े इसके साथ-साथ उसके अस्तित्व, अस्मिता एवं संस्कृति को नहीं डिस्टर्ब करने की बात पर उनका जोर है। आदिवासी अपने पुश्तैनी जंगल से कटकर मुख्यधारा के समाज में प्रवेश करने के बाद, नया वातावरण के साथ वे रूचि नहीं ले पाते हैं। बड़े-बड़े मकान देखकर उन्हें डर लगता है। बाह्य समाज के वेश-भूषा, रहन-सहन, खान-पान, प्रदूषित वातावरण आदिवासी समुदायों से मेल नहीं खाता है। उनके स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ता है। उनका शारीरिक-सिस्टम गड़बड़ होता है। हरियाली से विपरीत

[82] सुबह के इंतजार में, पृ सं 41-42

यहाँ धूप और धूएँ में ये लोग नहीं रह सकते हैं । इसलिए कवि कहता है कि- ‘उनके हित के लिए कोई कार्य किया जाय तो उन्हीं के इलाकों में उन्हीं के अनुकूल करवाना चाहिए ।’ उन समुदायों तक सरकारी योजनाएँ पहुँचनी चाहिए । उन्हें शिक्षा दिला सकते हैं । उनके लिए चिकित्सालय का निर्माण करवा सकते हैं । इसलिए आदिवासियों को अपनी पुश्तैनी भौम से नहीं हटाने का निर्णय लेने को कवि कहते हैं । ऐसा नहीं हो कि- ‘उन्हें वहाँ से हटाकर उनके जंगल-जमीन पर दूसरा और कोई राज करे ।’ इसका विरोध यह कविता करती है ।

3.1.8 बलात् - विस्थापन -

आदिवासी अपने पुश्तैनी जंगल से कटकर किस तरह की जिंदगी जी रहे हैं ? आदिवासी-समुदायों को कंपनियों की कूटनीति के वजह से जंगल से बेदखल करके खदेड़ा जा रहा है । आदिवासियों को जंगल से कटकर सड़क पर रहना पड़ रहा है । सरकार, समाज एवं पूँजीपति आदिवासियों की जिंदगी से खेल रहे हैं । उन्हें अनेक तरह की यातनाएँ पहुँचा रहे हैं, बाह्य समाज में आदिवासियों को अनेक तरह की समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है । इस जीवन-स्थिति को हम हरिराम मीणा की सड़क-मजदूरों को लेकर लिखी गयी कविता के माध्यम से समझ सकते हैं । आदिवासियों की जमीन छीन लेने के बाद कई समुदाय घुमक्कड़ी का जीवन जी रहे हैं । उन समुदायों का इस धरती पर कोई स्थिर आवास नहीं है । वैश्वीकरण के दौर में आदिवासियों की समस्या और बढ़ने लगी है । उनके न ठीक से रहने का घर है । खान-पान, शिक्षा, चिकित्सा उन्हें नहीं मिल पा रही है । सड़कों पर डेरा बाँधकर वे जीवन जीने को अभिशप्त हैं-

“जंगलों से खदेड़े और बस्तियों से भगाए हुए वे
अनजान रास्तों की धूल फाँकते-फाँकते
बहुत रियाज के बाद
आखिर हो ही गए थे माहिर सड़क बनाने में ।
चूहों की तरह परात ढोते

अजगरों की तरह मिट्टी दबाते
हाथियों की तरह खुरंजा जमाते
सधे हाथों की डामर का गरम-गरम लेप चढ़ाते।...
जिन्हें सड़क बनाने की उतनी जल्दी नहीं थी
जितनी उन डेराबन्द समूहों की छाती को
-रौंद-फाड़ने की
जो अब फालतू नकारा करार कर दिए गए
मगर डायनासोरों को पता नहीं-
इस धरती से पहले वे प्राणी उकटते हैं
जो इस पर बोझ बनकर रहते हैं
और जिन्दा वे ही रह पाते हैं
जो पत्थरों के तले दबे, तुड़े-मुड़े रह कर भी
हालात के खिरते रहने तक
इन्तजार करते हैं
-वक्त का।"[83]

उपर्युक्त कविता के माध्यम से बताया गया है कि- इस धरती पर प्रत्येक आदिवासी सबसे दयनीय जीवन जी रहा है। आदिवासी समुदाय भोला-भाला है। इतना सीधा-साधा रहने पर कोई भी उनकी जिंदगियों से खेल सकता है। आदिवासी हर जगह, हर समय शोषित हो रहा है। न्याय क्या है ? अन्याय क्या है ? वे लोग समझ नहीं पाते हैं। दिकू आदिवासियों को उनकी जमीन से बेदखल कर रहे हैं। बेदखल हुए आदिवासी समुदाय को लेकर किसी को चिंता नहीं है। इस तरह के अन्याय को कवि महोदय इस कविता के माध्यम से प्रस्तुत करता है। आदिवासियों के कई समुदाय खदेड़े जाने के बाद सड़क पर डेरा बाँधकर अपना जीवन चला रहे हैं। जीने के लिए जो काम मिलेगा, उस काम को करने को वे तैयार रहते हैं।

इस तरह के बेसहारे आदिवासियों का शोषण करने वाले भी बहुत सारे नज़र आयेंगे। पूँजीपति उन्हें कम पैसे देकर ज्यादा काम करवाते हैं। सड़क पर रहने वाली

[83] सुबह के इंतजार में, पृ सं 71-72

आदिवासी-स्त्रियों को अनेक अपमान झेलने पड़ते हैं। समाज में जो आदमी या समुदाय धनी है, उसे कोई धोखा नहीं देता है। गरीब को और गरीब करेंगे उन्हें सताते रहेंगे। उनके हित में विचार-विमर्श करने वाले बहुत कम लोग नज़र आयेंगे। इस तरह की आदिवासी स्थिति को देखकर कवि चिंतित रहते हैं। वर्तमान में बहुत सारे आदिवासी समुदाय बे-सहारे सड़क पर जीवन जी रहे हैं। उन्हें वहाँ पर भी नहीं रहने दिया जा रहा है। जंगल उनका नहीं, बस्तियों में जगह नहीं, सड़क पर सहारा नहीं है तो आखिर आदिवासी रहेंगे कहाँ ? सरकार, आदिवासियों को जड़ों से उखाड़कर उनके अस्तित्व एवं अस्मिता को मिटाने का निर्णय लेकर इस तरह का व्यवहार कर रही है। यह कविता पाठक के भीतर उस तरह के शोषण के खिलाफ चेतना के बीज अंकुरित करती है।

3.1.9 छोटे तबकों के प्रति परंपरागत सोच में बदलाव -

हरिराम मीणा का जो साहित्य है वह समानता की बात करता है। भेद-भाव रहित समाज की बात करता है। कवि महोदय बार-बार यह कहता है कि- एक इन्सान का दूसरे इनसान के प्रति भेद-भाव दिखाना अनुचित है। इनकी कविता ऊँच-नीच, छोटा-बड़ा इस तरह के सोच-विचार में परिवर्तन लाने की बात करती है। समाज में किसी प्राणी को या समुदायों को, तुच्छ-समझना, दूसरों को हीन दृष्टि से देखना, किसी समुदाय को दूर रखना इस तरह की हरकतों का यह कविता विरोध करती है। कोई आदमी हो या समुदाय हो उनके आकार / संख्या की दृष्टि से उनका बल तय करना मूर्खता वाली बात है। समाज में कोई समुदाय का जनसंख्या की दृष्टि से अनादर करना गलत है। छोटे-समुदायों पर बड़े-समुदायों का दबाव रहना, छोटे समुदायों का शोषण, बड़े-समुदायों के लोग करते रहना, छोटे समुदायों को सताना, उन्हें किस तरह हाशिये पर रखा जा रहा है। इन सब बातों को कवि ने इस कविता के माध्यम से अभिव्यक्ति दी है-

“जिन्हें समझा जाता है छोटा और नाचीज
जैसे-चींटी, चूहे, खरगोश, कबूतर....
इस बात को खारिज न करते हुए कि
चींटी हाथी के कान में घुसकर

उसे खत्म करने की सम्भावना रखती है
चूहे ठोस व भरी जमीन को पोली कर देते हैं
खरगाशों की प्रजनन क्षमता बहुत होती है ...
जो समय के इशारे के साथ
फूटता है सोये ज्वालामुखी की तरह
इसी को कहते हैं-
छोटे और नाचीज समझे जाने वालों की
-बड़ी फतह ।"[84]

कवि महोदय इस कविता के माध्यम से यह कहते हैं कि- जहाँ अन्याय हो रहा है वहाँ विरोध में आवाज उठानी है । आदिवासियों को अंग्रेजों के शासन काल से लेकर वर्तमान समय तक उनको विभाजित करके अलग-अलग समुदायों में बाँटकर उन्हें कमजोर दिया गया है । वर्तमान में आदिवासी हमें छोटे-छोटे जन-समुदाय के रूप में नज़र आयेंगे । अगर सही रूप से देखा जाय तो अंग्रेजों से लेकर भारत सरकार तक अपने स्वार्थ हेतु आदिवासी समूहों को तोड़-फोड़कर विविध राज्यों में बाँट दिया गया । उसी समय से आदिवासी छोटे-छोटे समुदायों में बंट गया है । आखिर वर्तमान में उनकी स्थिति यह है कि उन्हें हाशिये पर रखा गया है । इस लिए मुख्यधारा का समाज उन छोटे समुदायों से खेल रहा है । छोटे-छोटे समुदायों को आसानी से हरा सकते हैं, उन समुदायों को जड़ों से मिटा सकते हैं । आदिवासियों के साथ जो कुछ हो रहा है वह सब षड्यंत्र रचकर ही किया जा रहा है । सरकार, पूँजीपति एवं समाज का नेतृत्व करने वाले आदिवासी को परेशान कर रहे हैं । वक्त साथ देता है तो वह छोटा समुदाय अपने आपको साबित कर लेगा । कोई भी इन्सान या कोई समूह इस समस्या व अन्याय को कब तक झेलते रहेंगे ? समय के साथ विरोध करेंगे । जंगल से बेदखल करना, बस्तियों से दूर रखना, सरकारी विकास योजनाओं तक उन लोगों को नहीं पहुँचने देना और इतिहास से बाहर रखना इस तरह कई प्रकार के अन्याय उनके प्रति हुए हैं । सहने की भी एक हद होती है । इसी दौर में **विश्व** के सभी आदिवासी समुदायों को समय के साथ एकजुट होकर लड़ना है । तभी तो

[84] सुबह के इंतजार में, पृ सं 79-80

छोटे समुदायों की एकजुटता का बल प्रयोग के कारण ताकतवर सत्ताएँ मुठभेड़ों में, आदिवासियों के हाथों में कई बार हार चुकी थी।

3.1.10 आदिवासियों का धार्मिक-जीवन -

बाहरी समाज से हटकर, अलग ढंग से आदिवासियों की अपनी संस्कृति और धार्मिक-आस्थाएँ, भाषा-शैली, रहन-सहन, वेष-भूषा हमें देखने को मिलती हैं। अण्डमान में बसने वाले ओंग जनजातीय समुदाय के सदस्यों का 'अंतिम संस्कार' किस रूप में होता है ? किस तरह उस समुदाय के लोग पुनर्जन्म पर विश्वास करते हैं। इसके साथ-साथ मृत्यु के उपरांत सूअर की बलि चढ़ाना इस तरह की उनकी संस्कृति एवं धर्म के बारे में हम हरिराम मीणा के ओंग जनजाति के 'अंतिम संस्कार' नामक कविता के माध्यम से समझ सकते हैं। जैसे

"उस मृत शरीर को लेकर
जा रहे थे नंग-धड़ंग दो जने घड़ी भर के डेरे से दूर
प्राण निकलते ही
चारः-छः बलिष्ठों की एक टोली
अदृश्य हो गई घने जंगलों को चीरती
कुछ ही पलों में
उन गमगीनों के बीच
ला पटक दिया गया
-मोटी खाल का एक बन्दी सुअर। ...
मरे आदमी को
बिठा दिया गया अब कब्र में ...
उसका चेहरा समुद्र की ओर था
उधर नंग-धड़ंग अजनबी मानव-प्रजाति
धँसी जा रही थी
- घने जंगलों में।
और वह नितान्त अकेला

धरती की गुप्त गोद में
पिघल रहा था चुपचाप।"[85]

उपर्युक्त कविता के माध्यम से ओंग जनजाति के अंतिम संस्कार के बारे में हमें जानकारी प्राप्त होती है। ओंग समुदाय में मृत्यु के बाद सूअर को बलि चढ़ाना अनिवार्य माना जाता है। आदिवासियों के अपने धर्म, संस्कृति एवं संस्कार हैं। उसी को वे परंपरागत रूप से चलाते आ रहे हैं। जो-जो प्रथाएँ इनके पुरखों ने अपनायी है, उसी परंपरा को नयी पीढ़ी के लोग भी अपनाते आ रहे हैं। ओंग समुदाय शव को दफनाते हैं। इन लोगों के इलाकों में शव को जलाया नहीं जाता है। इस समुदाय के लोग आत्म और प्रेतात्माओं पर विश्वास करते हैं। कोई आदमी मरने के बाद उसकी लाश को उनकी झोंपड़ी में दफनाते हैं। शव को दफनाने के बाद उस झोंपड़ी को छोड़कर जाने की प्रथा इनके समुदाय में दिखायी देती है। इस कविता के माध्यम से यह पता चलता है कि आदिवासी पुनर्जन्म पर विश्वास करते हैं इसके अलावा मृत्यु-समय, मृत व्यक्ति का नाम वहाँ कोई नहीं लेता। इस तरह की प्रथा भी उस समुदाय में देखने को मिलती है।

मृत्यु के बाद एक कब्र खोदी जाती है, जिसमें मृत व्यक्ति से संबंधित चीजें रखी जाती हैं। शव को दफनाने के पीछे मूल कारण यह है कि उनके पुरखों की आत्माएँ फिर से किसी औरत के घर में प्रवेश करके पुनर्जन्म लेती है। इस तरह का उनका विश्वास है। शव को कब्र में उतारकर, उसका चेहरा समुद्र की ओर यानी पूर्व की ओर रखा जाता है। इसके पीछे कारण यह है कि- जिस तरह पूर्व दिशा में समुद्र से सूरज उगता है उसी तरह मृत्यु के बाद आदमी फिर से किसी के गर्भ में उगेगा। इस तरह का ओंग आदिवासियों का विश्वास है। जन्म एवं पुनर्जन्म में ये लोग विश्वास रखते हैं। अंतिम संस्कार के बाद ये लोग अपनी झोंपड़ी छोड़कर घने जंगलों की ओर पलायन करते हैं। और वह शव अकेला धरती की गोद में सूखता रहता है- चुपचाप। कुछ महिनों के बाद शव की सूखी हड्डियों को गले में पहनकर घूमते हैं। इसका मतलब है कि उनके पूर्वज उनकी रक्षा करेंगे। इस तरह के 'अंतिम-संस्कार' सभ्य-समाज से हटकर आदिवासियों के भिन्न हैं।

[85] सुबह के इंतजार में, पृ सं 45-46

भारत के सबसे गरीब समुदाय यानी आदिवासी-समुदाय की मूल समस्या क्या है ? उन समस्याओं से उन समुदायों को मुक्ति कैसे प्राप्त करनी है ? किस तरह सभ्य समाज के साथ आगे बढ़ने के लिए इन्हें कौन-कौन सा कार्य करना होगा ? इन सभी विचारों को प्रतीकात्मक कविता 'चाँद' के माध्यम से समझा जा सकता है-

"न जाने क्या-क्या देख लिया
तुमने चाँद में
था ही नहीं जो वहाँ
मेरे पुरखों ने देखी-
वो चरखे वाली बुढ़िया
और
कतते सूत की डोरी
सच बोला करते थे पुरखे
जैसे
वह प्यारा बाबा कवि
जिसने चाँद में रोटी देखी
बेशक,
चाँद में न बुढ़िया
न रोटी
फिर भी-
उन्होंने जो देखा
वह मेल खाता है इस धरती से
जो जन्माती व जिन्दा रखती है
-धरती के लोगों को"[86]

उपर्युक्त कविता के माध्यम से विज्ञ जन रोटी एवं समय के अंतः संबंध के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं । उपरोक्त कविता में चाँद रोटी के आकार में कवि को दिखता है और रोटी चाँद के आकार में दिखती है । यहाँ पर दोनों एक-दूसरे से तालमेल खाते हैं ।

[86] सुबह के इंतजार में, पृ सं 90

प्रमुख रूप से देखा जाय तो गरीब समुदायों की सबसे बड़ी समस्या रोटी ही है । सबसे पहले आदमी यह सोचता है कि अपना पेट की आग से मुक्ति मिले । उनकी मूल चिंता है- रोटी की । गरीब समुदाय रोजी-रोटी के लिए तड़पता रहता है । आदिवासी के दिमाग में अपने पेट की आग को ठण्डा करने के अलावा उसके आगे, कुछ और सोचने में वह सक्षम नहीं हो पाता है । उन समुदायों को कोई महल, पद, पुरस्कार के लिए चिंता नहीं है । उनकी भूख मिटाने के लिए रोटी मिल जाय, वही अपना भाग्य मानते हैं । इस कविता में कवि महोदय आदिवासी के लिए रोटी की समस्या पर बल देते हैं । यहाँ पर सोचने की बात यह है कि- गरीब तबके के लोग अपना पेट भरने के साथ-साथ परिवार का पालन-पोषण हेतु चरखा चलाते हैं । आदिवासी भी गरीब समुदाय है । जिस तरह चरखा घूम रहा है, समय भी उसी तरह घूम रहा है । अगर आदिवासी को रोटी हासिल करनी है तो समय के साथ आगे बढ़ने के लिए प्रतिबद्ध होना होगा । जो लोग या समुदाय समय के साथ नहीं चल पायेगा वह समुदाय जैसे-का-तैसा ही रह जायेगा । मृत लाश की तरह पड़ा रहेगा । इसलिए कवि कहता है कि- सही तरह से जीवन जीने के लिए इसके साथ-साथ पेट भरने के लिए रोटी हासिल करने हेतु समय का सदुपयोग करने की चेतावनी देता है । समय के साथ आगे बढ़ने की चिंता कवि ने व्यक्त की है । अंत में कहा जा सकता है कि जिस तरह चरखा की तरह समय घूम रहा है समय के साथ इन समुदायों को आगे बढ़ना है । जन्म से ही समय के साथ आगे बढ़ने की बात यह कविता करती है । तब आगे जाकर आदमी अपना लक्ष्य प्राप्त कर सकता है । मूल रूप से कवि यह कहता है कि- आदिवासी समुदाय को आगे बढ़ने के लिए समय के साथ संघर्ष करना, अनिवार्य है तभी आदिवासियों में चेतना का फैलाव होगा ।

3.1.11 प्रतिरोधी-चेतना -

प्राचीन से लेकर वर्तमान तक अपने देश / राज्य की सुरक्षा के लिए कई लोग शहीद हुए हैं । दूसरों की रक्षा हेतु अपने प्राण त्याग करने वाली सामान्य जनता ही है । राजाओं की लड़ाई लड़ने वाली सामान्य जनता ही है । जैसे- आदिवासी, दलित, पिछड़े समुदाय के लोग हमेशा से लड़ते आ रहे हैं । अतीत से लेकर आज तक राज्यतंत्र की प्रणाली में आदिवासी को मोहरा बनाया गया है । इन्हें सिर्फ वोट बैंक समझा जाता रहा है । मगर

राज्यतंत्र में कभी इनकी समस्या या दुर्दशा पर विचार करने की चेष्टा नहीं हुई । इन समुदायों की लड़ाई में कोई वर्ग, समुदाय इनका साथ नहीं देता है । इस तरह की कूटनीति को हम लोग हरिराम मीणा की 'किसकी बाजी, किसकी जीत' कविता के माध्यम से समझ सकते हैं । जैसे-

"बिछी है शतरंज की बिसात
पैदल, ऊँट, घोड़े, हाथी
वजीर और बादशाह ।
हाँ, तो चलो बरखुरदार ।
कटो-मरो पहले पैदल
फिर ऊँट
घोड़े, आखिर में हाथी । ...
पैदल मरता है
मगर जिन्दा नहीं होता ।
बादशाह कभी नहीं मरता
घिरता, आत्मसमर्पण करता
फिर भी सेहरा ताने अमर रहता
हारने के बाद फिर खेलता
प्यादे, ऊँट, घोड़े हाथियों की पीठ पर दण्ड पेलता ।
जहाँपनाह
ये तबेले के जानवर और सिपाही
कब तक लड़ेंगे तुम्हारी लड़ाई ?"[87]

उपर्युक्त कविता के माध्यम से हमें यह पता चलता है कि राज्य की सुरक्षा एवं सरकार के संरक्षण के लिए मरने वाली सामान्य जनता ही है । राज्य का बोझ सामान्य जनता ही उठाती है । राजा के सैन्य में काम करने वाले सामान्य जन-समूह यानी आदिवासी एवं दलित इसके साथ-साथ सरकार के कर्मचारी के रूप में इन समुदायों के लोग काम कर रहे हैं । इन समुदायों के जीवन में कोई परिवर्तन नहीं दिखाई दे रहा है ।

[87] सुबह के इंतजार में, पृ सं 83

अगर उन समुदायों में परिवर्तन आयेगा तो सरकार एवं राज्य की सुरक्षा कौन करेंगे ? अतीत से लेकर राजाओं के शासन काल में इसके साथ-साथ वर्तमान तक इन समुदायों के लोग कार्यरत हैं । देश की संस्कृति-संरक्षण हेतु, संपदा संरक्षित के लिए अंग्रेजों से टकराव सबसे पहले आदिवासी समुदायों ने ही लिया था । वर्तमान में वे अपने अस्तित्व के लिए लड़ रहे हैं । मगर इनकी आवाज और इनकी समस्या कोई सुनने वाला नहीं है । जबकि राज्यतंत्र अपने आप में मस्त है और दलित एवं आदिवासी इनकी कूटनीति का हिस्सा बने हुए हैं । राजा को राज्य एवं सरकार को पद प्राप्ति के बाद अपनी सुरक्षा के लिए काम करने वाले लोगों के बारे में कोई खोजखबर नहीं है । इन समुदायों के विकास को लेकर, अस्तित्व को लेकर किसी को चिंता नहीं है । आखिर कब तक इन सामान्य लोगों से लड़ाई लड़ाते रहेंगे । इस कविता के माध्यम से कवि महोदय यह कहना चाहता है कि- दूसरों की लड़ाई छोड़कर अपना राज्य, अपनी संस्कृति, अपनी अस्मिता के लिए लड़ने को कहता है। यह दुनिया अपने स्वार्थ हेतु, दूसरों का भरपूर उपयोग कर रही है । इसके पीछे की राजनीति को यह कविता कहती है । सही राह पर चलने को इस कविता के माध्यम से कवि अग्रसर करता है । आदिवासी समाज कल भी राज्यतंत्र के चंगुल में था और आज भी उन्हीं के चंगुल में है । उसे इससे आज़ाद करना होगा और आदिवासी को उनका हक देना होगा ।

कवि हरिराम मीणा ने इस कविता के माध्यम से निम्न वर्गों में यानी आदिवासियों को चैतन्य करने की ओर इशारा किया है । यह संसार एक मंच के भाँति है जो सजा, सजाया हुआ चमकदार है जिसकी वास्तविकता सभी को मालूम है कि जो मंच के माध्यम से दिखाया जा रहा है वह वास्तविक नहीं मगर इसके बावजूद सबके सब उसी को सच माने हुए हैं । इस तरह की रंगीन दुनिया की चालाकी के बारे में हम 'जानते हैं हम' कविता के माध्यम से समझ सकते हैं । जैसे-

"मंच पर
प्रकाश-वृत्त में दमकते
मुखौटों के पीछे

जो कुरूप चेहरे हैं
हम जानते हैं उनको
यह भी जानते हैं कि
क्या घटित हो रहा है
खूबसूरत पर्दे के नेपथ्य में ...
और-
-अपनी असलियत छिपाए
अभी चुप हैं हम
इसका मतलब यह नहीं कि
हम नहीं जानते
सिंहासनों पर पायों की कमजोरी”[88]

उपर्युक्त कविता के माध्यम से कवि ने मुखौटे, कुरूप चेहरे और सिंहासन की ओर मूल रूप से ध्यान आकृष्ट किया है। जिससे पता चलता है कि- मंच पर राज दरबार सजा हुआ है मगर उस राज्य दरबार में सिर्फ राजा का योगदान नहीं बल्कि आम जनता का भी है क्योंकि कविता अपने मूल धाराओं से यह बताना चाहती है कि वेदों में जो चार वर्गों का उल्लेख हुआ है। जैसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र इन सबको मिलाकर राजा राज्य करता है। जिसको कवि ने चार पायों के जरिये बनाने की कोशिश की है कि हमारा समाज इन चारों वर्णों से मिलकर बना है जिसके दम पर राजा राज्य करता है। इन चारों वर्गों में एक ही वर्ग ऐसा है जो राज करता है और उन्हें सिर्फ इस्तेमाल किया जाता जबकि हमारा समाज चारों पायों पर खड़ा है अगर इनके एक पाया शूद्र को इतना कमजोर कर दिया है कि अब उनका कोई दृश्य देखने के लायक नहीं है संसार के मंच पर।

3.2. ‘हाँ, चाँद मेरा है’ में अभिव्यक्त आदिवासी – जीवन -

इस कविता-संकलन की कविताओं में आदिवासी-जीवन से जुड़े हुए अनेक संदर्भ-सूत्र / बिंदु देखे जा सकते हैं। जैसे- प्राक्-ऐतिहासिक युग के मिथकों में आदिवासी की छवि को विकृत-रूप में उभारना, अतिवृष्टि और अनावृष्टि का आदिवासी जन-जीवन पर पड़ता

[88] सुबह के इंतजार में, पृ सं 91

प्रतिकूल प्रभाव । निम्न-वर्गों की जीवन-स्थिति में आदिवासी-स्त्री का दैहिक एवं मानसिक स्तर पर संघर्ष एवं शोषण । पूँजी का फैलाव उसके कारण बढ़ता विस्थापन एवं पर्यावरण और पारिस्थतिकी के संतुलन में आया हुआ व्यापक परिवर्तन इस रचना को विशिष्ट बनाते हैं ।

3.2.1 परंपरागत इतिहास-लेखन पर प्रश्न-चिह्न -

परंपरागत इतिहास-लेखन में अनेक तरह की असमानताएँ दिखायी देती हैं । हाशियाकृत गरीब जन-समुदायों को हाशिये पर रखा गया है । इस कार्य को करने का कार्य, समर्थ साहित्येतिहासकारों द्वारा हुआ है । इस रूप में देखते हैं तो पाते है कि हाशियेकृत समाज की अनुपस्थिति और विकृत छवि समकालीन रचनाकारों को चिंता में डालती है । कवि हरिराम मीणा के लिए भी यह चिंतनीय मुद्दा / विषय है । जिसमें आदिवासी की छवि को बिगाड़कर प्रस्तुत करने के कारण वे इतिहासकारों के इतिहास-बोध पर प्रश्न-चिह्न लगाते हैं-

“जो हकीकत में गुजरा
अगर वही इतिहास होता
तो-
उसके इतने नजरिए नहीं होते ।
भूत की हकीकत तो बिखरे रजकण हैं
और-इतिहास
उन्हें बटोर, कृति का सृजन और प्रदर्शन ।
इसलिए तो बन जाता है सब कुछ
एकाकी व्यक्तिपरक-सा
इतिहासविज्ञों की बेमेल बहस-सा ।”[89]

उपर्युक्त कविता के माध्यम से हमें यह पता चलता है कि जाति के आधार पर किस तरह साहित्येतिहास-लेखन में भी भेद-भाव किया गया है । इतिहासकारों के मन में भी अपने-

[89] हाँ, चाँद मेरा है, पृ सं 30

अपने वर्ग या समुदाय के प्रति विशेष आदर का भाव था तो उन्हें इतिहास में स्थान मिला। सत्तावान की मन-मरजी से किसी को बाहर, किसी को अंदर रख कर इतिहास-लेखन हुआ है । इतिहासकारों ने एक समुदाय और दूसरे समुदायों के प्रति किस तरह की असमानता दिखायी है किस तरह आदिवासी को हाशिये पर रखा गया है यह हम समझ सकते हैं । कवि इस कविता के माध्यम से यह सवाल उठाता है कि सत्तावान की मन-मर्जी से इतिहास को इतिहास कहा जा रहा है । क्या किसी समुदाय को बाहर रखकर रचना करना अपने इतिहास में चारों तरफ के वर्ग, समुदायों को सही जगह नहीं देना कदापि सच्चा इतिहास तो नहीं कहलायेगा! महान् कहलाने वाले इतिहासकार घटित को अनघटित, अनघटित को घटित रूप में अपने इतिहास में दिखाते हैं । इस तरह के अधूरे और अपूर्ण इतिहासों का पुनः मूल्यांकन करने की आवश्यकता है । कवि यह कहता है कि- इतिहास की त्रुटियों को इतिहास के पुनर्मूल्यांकन के माध्यम से सुधार सकते हैं ।

गरीब तबके के लोगों ने जितनी लड़ाई लड़ी, कोई भी ऐसी घटना का जिक्र इतिहास में हमें नज़र में नहीं आयेगा । यहाँ सोचने की बात यह है कि आदिवासी समुदायों को इतिहास में विकृत-वर्णन के साथ क्यों दिखाया गया है ? अंग्रेजों, देशी रियासतों के साथ-साथ पूँजीवाद से भी आदिवासी-समुदायों ने कई युद्ध लड़े हैं । लेकिन आदिवासी युद्धों की घटना, आदिवासी-योद्धाओं की वीरता हमें इतिहास में कहीं नज़र नहीं आयेगी । क्योंकि उन समुदायों की बड़ाई करके लिखने के लिए इतिहासकार का मन साथ नहीं दिया होगा । कोई एक छोटी लड़ाई राजा लड़ा तो, उस घटना को लेकर एक किताब आ जायेगी । लेकिन अंग्रेजों से संघर्ष करते हुए हजारों आदिवासी मुठभेड़ में शहीद हुए हैं । लेकिन उनका इतिहासकारों ने कहीं जिक्र नहीं किया । जैसे- हूल- विद्रोह, संताल-विद्रोह, मानगढ़-आंदोलन, मुंडा-विद्रोह आदि । क्या इतिहासकारों के पास ज्ञान नहीं था ? इस तरह आधारभूत घटनाओं को जगह नहीं देकर, लिखा गया इतिहास का पुनर्मूल्यांकन इस कविता के माध्यम से व्यक्त हुआ है ।

आदिवासी एवं प्रकृति के बीच अटूट संबंध रहा है । प्राचीन काल से लेकर वर्तमान समय तक आदिवासी परंपराओं को अबाध अपनाते आ रहे हैं । शुरू से लेकर अब तक

आदिवासी प्रकृति के रक्षक रहे हैं। लेकिन कालक्रमेण जंगलों में पूँजीपति पहुँचकर प्रदूषण फैला रहे हैं । तथाकथित विकासवादी प्रकृति से छेड़-छाड़ कर रहे हैं । 'आदमी एक' नामक कविता के माध्यम से इस संदर्भ को समझ सकते हैं। जैसे-

"बैसाखियों के सहारे
सर्र-सर्र सरपटता है
एक-दूसरे से आगे
प्लास्टिक
सिंथेटिक
और इलेक्ट्रोनिक बन कर जी सकता है
दिन-रात कार्बन पी सकता है
-वह आदमी।...
देखो !
वह आदमी
कितना तार्किक, विद्वान और वैज्ञानिक है
और इसीलिए
संस्कृति की मखमली घास
और मौसमी फूलों को रौंदता
सभ्यता के शिखरों पर दौड़ रहा है
छलाँग-दर-छलाँग
-वह आदमी।"[90]

उपर्युक्त कविता के माध्यम से हमें यह पता चलता है कि आदिम आदमी की सोच में प्रकृति रही है। कवि इस कविता के आधार पर हमारा ध्यान आदिवासी जीवन की ओर आकर्षित करता है । आदिवासी जीवन प्रकृति पर टिका हुआ है । आदिवासी-जीवन, प्रकृति के आधार के साथ-साथ आदिम विश्वासों पर निर्भर है। लेकिन वर्तमान समय में पूँजीपति और दिकू प्रकृति और आदिवासी के संबंध को तीव्रगति से असंतुलित कर रहे हैं। इस कारण की वजह से भविष्य में जीव-जगत् को अनेक समस्याओं का सामना करना

[90] हाँ, चाँद मेरा है, पृ सं 9-11

पड़ेगा । इस कविता में कवि का दृष्टिकोण, प्रकृति और मनुष्य के संबंधों पर आधारित दिखाई पड़ता है ।

अतीत में देखा जाय तो आदमी ने प्रकृति के आधार पर अपना जीवन चलाया था । प्रकृति को संरक्षित करने में आदिवासी का महत्वपूर्ण योगदान रहा है । प्रकृति से ही आदिम आदमी ने बहुत सारे लाभ प्राप्त किये हैं । अगर सही रूप में कहा जाय तो ये दोनों एक-दूसरे के संरक्षक रहे हैं । लेकिन कालांतर में धीरे-धीरे परिवर्तन आने लगा । वर्तमान में यह स्थिति हो गई कि आदमी विकास के नाम पर खुद ही विनाशकारी बन रहा है । आदमी अपना स्वार्थ, मुनाफा, संतुष्टि के लिए प्रकृति को असंतुलित कर रहा है । वैश्वीकरण के दौर में हर जगह कारखाने, महल, कंपनियाँ खड़ा कर रहा है । इनकी वजह से दिनों-दिन प्रदूषण बढ़ रहा है । हरियाली गायब हो रही है । समय के अनुरूप बरसात का नहीं होना, धूप में बढ़ोत्तरी, अतिवृष्टि-अनावृष्टि, पर्यावरण असंतुलन आदि समस्याओं को हम लोग देख सकते हैं । आदमी विकास के नाम पर प्रकृति से इतना टकराव ले रहा है कि आने वाले दिनों में मुसीबतों का हम लोग अंदाजा भी नहीं लगा पायेंगे । आदमी की वजह से पर्यावरण प्रदूषण बढ़ा है । इस तरह के प्रदूषण के कारण जीव-प्राणी तरह-तरह की समस्याओं से जूझ रहे हैं । इसलिए कवि इस कविता के माध्यम से प्रकृति को न छेड़ने की बात करता है । इसके साथ-साथ प्रकृति के साथ जितनी छेड़-छाड़ होगी, उतना प्रतिफल हमारे साथ-साथ आने वाली पीढ़ियों को भी भोगना पड़ेगा ।

3.2.2 आदिवासी वीरों के प्रति विश्वासघात -

समाज में श्रमिक वर्गों की क्या स्थिति है ? किस तरह की समस्याएँ से श्रमिक वर्ग के लोग जूझ रहे हैं ? आदिवासियों के प्रति मुख्यधारा का किस तरह का दृष्टिकोण रहा है? इन तमाम मुद्दों को हम लोग हरिराम मीणा की 'आदमी दो' नामक कविता के माध्यम से समझ सकते हैं । जैसे-

"सदियों से जिन्दा है वह आदमी
जिन्दा है आज भी

दब जाता है
अजेय दुर्गों की नींव खोदता-खोदता
गिर जाता है ...
एक बार
की थी उसने धनुर्धर होने की उद्दंडता
काट कर देना पड़ा था
बतौर दक्षिणा
सहर्ष अपना अंगूठा। ...
वह आदमी मरा नहीं
चूँकि, मरता नहीं है वह आदमी।”[91]

उपर्युक्त काव्य-पंक्तियों के माध्यम से हमें यह पता चलता है कि श्रमिक वर्ग किस तरह दयनीय जीवन जी रहे हैं। गरीब तबके के लोगों के परिवारों को अपना पालन-पोषण हेतु अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। श्रमिक कभी भी हैरान नहीं होते हैं। अपना विश्वास नहीं खोते हैं। श्रमिकों के साथ-साथ आदिवासियों को भी अपना जीवन जीने के लिए लहूलुहान होना पड़ता है। खून को पसीना के रूप में बाहर निकालना पड़ता है। इसके साथ-साथ इस कविता में हमें यह देखने को मिलता है कि श्रमिक वर्ग या निम्न वर्ग के लोग आगे बढ़ेंगे तो, विकास की राह पर कदम उठायेंगे तो उन्हे देखकर उच्च वर्ग के लोग सह नहीं पायेंगे। एकलव्य का अंगूठा काटने के पीछे यही कारण रहा है। आदिवासियों का मिथकों में विकृत रूप में वर्णन करके उन समुदायों का विनाश करने के लिए षड्यंत्र रचा गया था। अतीत से लेकर वर्तमान तक श्रमिक, आदिवासी एवं निम्न वर्गों के साथ अन्याय हो रहा है। इस तरह के सामूहिक अन्याय का रचनाकार विरोध करता है। आदिवासियों के प्रति अमानवीयता को कवि अनुचित मानते हैं। कवि की चाह है कि- विकास की योजनाओं का फल श्रमिक एवं आदिवासियों को प्राप्त हो। जिनके साथ अतीत में अन्याय हुआ है वे समुदाय न्याय की तलाश कर रहे हैं। यह कविता समानता की बात को भी दोहराती है।

[91] हाँ, चाँद मेरा है, पृ सं -12-13

'वह आदमी दो' कविता की आगे की पंक्तियों के माध्यम से हमें यह पता चलता है कि- आदिवासी अपना जंगल व जमीन से बेदखल होने के बाद हाशिये का जीवन जीते हैं। लेकिन उस समुदाय के लोग पारंपरिक जीवन-शैली को नहीं छोड़ते हैं। अपने जीवन में परिवर्तन के लिए आशा के साथ समय का इंतजार करते हैं। जैसे-

"वह आदमी जहाँ रहता है
वहाँ वे आदमी नहीं रह सकते
जिन्होंने उसे ऐसा आदमी बनाया है सदियों से
चूँकि-
वहाँ कीचड़, गंदगी, पसीना, भूखमरी और बीमारी है ...
और कफन बाँध कर मौत से लड़ेगा
और जीने के लिए मरेगा
फिर वह
किसी भी वास्ते का लिहाज नहीं करेगा।"[92]

आदिवासी को अपनी जंगल-जमीन से कटने के बाद हाशियाकृत जीवन जीना पड़ रहा है। हाशियाकृत जीवन जीने वाले लोगों को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। आदिवासियों को भुखमरी, गरीबी एवं स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं से जूझना पड़ रहा है। गंदगी, कीचड़, कीड़े-मकोड़े, इसके साथ-साथ मच्छरों की वजह से उन समुदायों में तरह-तरह की बीमारियाँ फैल रही हैं। प्रदूषित पानी पीने की वजह से उनके स्वास्थ्य पर असर पड़ता है। वहाँ का वातावरण प्रदूषित हो जाने के कारण उन लोगों को अनेक परेशानियाँ होती हैं। प्राकृतिक वातावरण से कटकर हाशिये पर जीवन जीना कोई चुनौती से कम नहीं है!

3.2.3 आदिवासी-मिथक -

प्राक्-ऐतिहासिक युग के मिथकों में स्त्रियों की क्या स्थिति रही होगी? हिंदूत्ववादी-समाज ने उस पर किस तरह की पाबंदियाँ लगाई होगी? स्त्रियों को किस

---

[92] हाँ, चाँद मेरा है, पृ सं 13-14

तरह के दबावों में रहना पड़ा होगा ? आदिवासी स्त्रियों का शोषण प्राक्-ऐतिहासिक युग से लेकर वर्तमान युग तक होता आ रहा है । इन तमाम विषयों के बारे में जानकारी हरिराम मीणा की कविता 'और इतिहास इसका साक्षी है' के माध्यम से समझ सकते हैं-

"अभिशप्त !
बनी रहो पाषाण प्रतिमा
और करती रहो प्रतीक्षा
किसी पुरूष के चरण-स्पर्श की ।
करो याचना यमराज से
या कि हठ
अपने वैधव्य से बचने के लिए ।"[93]

उपर्युक्त कविता-पंक्ति के माध्यम से हमें यह पता चलता है कि- मिथकों में स्त्री, दलित एवं आदिवासी को किस तरह दबाया गया है । अतीत में जो व्यवस्था थी वह आज भी हमें कहीं-न-कहीं दिखाई देती है । इसलिए कविता अतीत से लेकर वर्तमान समय तक की यात्रा करती है । इस कविता में मिथकीय पात्रों के माध्यम से विषय को कवि ने हमारे सामने प्रस्तुत किया है । इस कविता के पंक्तियों से कवि हमें अहिल्या की ओर संकेत कर रहा है । अहिल्या पत्थर बन गई है । लेकिन परिवर्तन के लिए स्वयं संघर्ष नहीं कर रही है। वह किसी पुरुष की सहायता के लिए बरसों इंतजार करती है । इससे पता चलता है कि स्त्री को विकास के लिए किसी पुरूष की आवश्यकता है । यहाँ पर कवि स्त्रियों को इस तरह संबोधित कर रहा है कि स्त्रियाँ अपने आप स्वयं आगे बढ़े, दूसरों पर निर्भर न रहकर स्वयं विकास मार्ग पर चले । इस कविता की पंक्तियाँ उस दिशा की ओर संकेत करती है कि जहाँ पर स्त्री जाति के उद्धार के लिए, उसके विकास के लिए, उसको आगे बढ़ाने के लिए किसी-न-किसी की सहायता की आवश्यकता है । वह कहीं पर भगवान पर निर्भर है, कहीं पुरूष पर निर्भर है, या कहीं विशेष पुरूष पर निर्भर है । वह खुद से कोशिश करती हुई बहुत कम दिखाई देती है । इसलिए कवि अहिल्या पात्र के माध्यम से स्त्रियों को खुद से कोशिश करने की ओर इशारा करता है । अपना उद्धार करना है, अपना विकास करना

---

[93] हाँ, चाँद मेरा है, पृ सं 22

है तो क्यों राम की आवश्यकता है ? इस हिंदूत्ववादी वर्ण-व्यवस्था में स्त्री को विकास के लिए किसी पुरूष की आवश्यकता है। इसके साथ-साथ स्त्री को अपनी मर्यादा को बचाने के लिए भी एक पुरूष की आवश्यकता है। नैतिकता के दबाव के कारण स्त्री को माँ बनने का अधिकार भी किसी विशेष पुरूष से जुड़ा हुआ है। वह अधिकार स्त्री के पास नहीं है। स्त्री अगर विधवा हो जायेगी तो माँ नही बन पायेगी। सामाजिक मर्यादा जो है उससे वह अलग हो जायेगी। आखिर स्वयं को संघर्ष करके, आगे बढ़ने को कवि कहता है।

इस कविता में आगे चलकर कवि इस तरह प्रस्तुत कर रहा है कि- मिथक में आदिवासियों का वर्णन विकृत रूप में किया गया है। इतिहासकारों ने इतिहास में आदिवासियों को निम्न स्तर पर दिखाया है। आदिवासी-अस्तित्व को मिटाने का षड्यंत्र रचा गया है। इसलिए सच्चाई को जानने के लिए मिथक के आधार पर साहित्येतिहास को देखने को कवि कहता है। जैसे-

"बूढ़ा हो जाता है अपराजेय अर्जुन
और गीतासार अतीत
करता है पलायन बलराम सागर की ओर
सोलह कला प्रवीण ईश्वर
भागता है मुक्त होने को
और करता है प्रतीक्षा
वनों में
किसी जारा शबर की।"[94]

आदिवासियों के प्रति मुख्यधारा का दृष्टिकोण सकारात्मक नहीं रहा है। खासतौर पर देखा जाय तो यह कविता इतिहास का जायजा लेती है। जिसमें एक विशेष वर्ग को दबाया गया है। कहीं पर पुरूष सत्ता के द्वारा, स्त्री को दबाया गया है, कहीं पर दलित को दबाया गया है, और कहीं पर आदिवासियों को दबाया गया है। लेकिन हम मिथकों को समझेंगे तत्पश्चात् इतिहास से जोड़ेंगे तो यही मिथक बताता है। यहाँ मिथक जो हैं आदिवासियों पर, दलितों पर एवं स्त्रियों पर होने वाले अत्याचारों का साक्षी है। मिथकों

[94] हाँ, चाँद मेरा है, पृ सं 22-23

को यहाँ पर कवि एक प्रमाण के रूप में प्रस्तुत कर रहा है। यहाँ पर अर्जुन कमजोर हो जाता है और बलराम, सागर की ओर पलायन कर रहा है। इसके साथ-साथ सोलह कला प्रवीण ईश्वर मुक्ति की ओर भाग रहा है। यहाँ पर सोचने की बात यह है कि भगवान कृष्ण अपनी मुक्ति के लिए जारा शबर की प्रतीक्षा कर रहा है। यहाँ पर भगवान को मुक्ति की आवश्यकता होगी तो उन्हें मुक्ति एक आदिवासी देता है। भगवान कृष्ण को एक शबर यानी वनराज मुक्ति देता है। लेकिन गीता में शबर की प्रस्तुति कैसी है जान सकते हैं। यहाँ पर ईश्वर भी इतना कमजोर है कि उन्हें मुक्ति के लिए आदिवासी की तरफ जाना पड़ा। यहाँ पर सवाल उठता है कि फिर मुक्ति किसके पास है ? मुक्ति उस सोलह कला प्रवीण कृष्ण के पास है या जंगल में रहने वाले शबर के पास है। और अगर कृष्ण भी मुक्ति पाने के लिए शबर की ओर देख रहे हैं तो इसका मतलब यह है कि कृष्ण की जो ताकतें हैं वो उनके पास नहीं है वह शबर के पास है। यहाँ पर शबर बड़ा है। इस तरह के ज्ञान को हम मिथकों से समझ सकते हैं। इसलिए इतिहास में दबाये गये समुदायों के प्रतीक मिथकों में मिलते हैं। इतिहास तो इन समुदायों ने नहीं लिखा है इसलिए इतिहास में उन्हें दूसरे तरीके से दर्ज़ किया गया है। लेकिन जिन्होंने इनको दर्ज़ किया, इन्हें बिना नीचा दिखाये अपने आपको बड़ा नही दिखा सकता तो इनका नाम भी वहाँ पर शामिल हुआ है। इसलिए कवि कह रहा है कि- मिथक के पठन के पश्चात् पढ़े-लिखे, नये आदिवासी लेखकों की यह जिम्मेदारी है कि- इनके साथ जो अन्याय हुआ है उसको न्याय में प्रवर्तित कीजिए।

आदिवासी एक ऐसा समाज है जो बाह्य समाज से दूर अलग-थलग जंगलों में पड़ा हुआ है। आदिम-परंपरा के अनुसार अपना जीवन जीता आ रहा है। विकास की योजनाओं से वह समुदाय जुड़ नहीं पाया है। यहाँ पर सोचने की बात यह है कि उनके जीवन-संकट को लेकर किसी को चिंता नहीं है। न तो सरकार उन समुदायों की हितैषी बनकर काम कर रही है और न उन समुदायों से सभ्य समाज संबंध बना रहा है। उन समुदायों के लोगों को देखकर आनंद प्राप्त करने वाले, मज़ाक उड़ाने वाले तो हैं लेकिन उनका साथ देने वाले कोई नहीं है। इसके साथ-साथ उनकी संस्कृति को प्रदूषित करने वाले हैं लेकिन उनके जीवन में परिवर्तन को लेकर कोई चिंतित नहीं है। इस तरह के

तमाम मुद्दों को कवि ने 'अन्तर्द्वन्द्व' कविता में अभिव्यक्त किया है । इस कविता में कवि इस बात पर बल देता है कि योजनाओं का प्रतिफल आदिवासियों को मिलना चाहिए । आदिवासियों को न्याय दिलाने की बात यह कविता करती है । जैसे-

"हम जब थक गए थे
बनाते-बनाते प्राचीरें प्रतिबद्धताओं की
और निकल गए थे ...
तुम-
अब भी वहीं थे
न मुझ तक आ सके थे
और न लौट सके थे
और, हुए जा रहे थे भूमिगत
अन्तर्द्वन्द्वों में
निष्प्राण होने तक ।"[95]

उपर्युक्त कविता के माध्यम से हमें यह पता चलता है कि- आदिवासी जंगल, प्रकृति एवं हरित वातावरण से कटकर नहीं रह पाते हैं । अचानक नया वातावरण, बड़े-बड़े महलों को देखकर, वेश-भूषा और खान-पान अलग ढंग से दिखाई देता है । यह सब देखकर वह समुदाय अंदर ही अंदर डर महसूस करता है । इसलिए कवि ने इस कविता में अभिव्यक्त किया है कि- आदिवासी विकास योजना से नहीं जुड़ पाया है । सरकार हो या मुख्यधारा का समाज ने उन्हें समझने की कोशिश नहीं की है । इस कविता में कवि ने आदिवासी-विकास पर बल दिया है । कवि महोदय इस कविता के माध्यम से आदिवासियों को केंद्र में रखकर यह कहता है कि उन समुदायों को विकास के साथ जोड़ें लेकिन यहाँ पर ध्यान देने की बात यह है कि उनकी संस्कृति एवं सभ्यता के ऊपर किसी तरह का बुरा असर नहीं पड़ना चाहिए । वैश्वीकरण के इस दौर में आदमी कहाँ-से-कहाँ तक पहुँच गया है । बहुत सारे वर्ग समुदाय इस दुनियाँ में राजा की तरह जीवन जी रहे हैं लेकिन निम्न वर्ग यानी आदिवासी, दलित एवं गरीब तबके के लोग हज़ारों सालों से वहीं

[95] हाँ, चाँद मेरा है, पृ सं 26-27

दयनीय जीवन जी रहे हैं । वह समुदाय आगे नहीं आ पाया है । उसका विकास नहीं होने दिया है । कई सालों से वहीं का वहीं सड़ा हुआ जैसा रह गया है । इस तरह के असमानता को लेकर बहस होने की बात यह कविता करती है । इस कविता के माध्यम से कवि यह सवाल उठाता है कि हज़ारों सालों से आदिवासियों के फल या भाग और कोई वर्ग भोग रहा है । उन्हें जैसा की तैसा रखना ही- सभ्य समाज को उचित लग रहा होगा । इस तरह के अन्याय का कवि अपनी कलम के माध्यम से घोर विरोध करता है । कवि महोदय इस तरह का अनुरोध करता है कि- शिक्षा-ज्ञान उन समुदायों को मिलें, स्वास्थ्य चिकित्सालय का निर्माण, बिजली उन समुदायों तक पहुँच सकें आदि ऐसी प्रमुख चीजें उन तक पहुँची नहीं है जिन-जिन सदुपयोग से उन्हें दूर रखा है । आम जनता को जो सुविधा मिल रही है। वह सब आदिवासियों को मिलने की बात इस कविता के माध्यम से कवि करता है । उन समुदायों के साथ किये गये हरकतों की वजह से वे लोग इन्सान को देखते ही डरते हैं । जानवरों से वह समुदाय कभी डरता नहीं है । लेकिन इन्सान को देखते ही वह समुदाय डरता है, दूर भागता है । इससे हमें पता चलता है कि आदिवासियों के जीवन से एक इन्सान ने कैसा खेल खेला होगा ?

हरिराम मीणा की कविता भेदभाव रहित समाज की बात करती है । आदमी अपना स्वार्थ हेतु एक-दूसरे के प्रति भेदभाव दिखाता है । अपना सुख के लिए दूसरों को कष्ट पहुँचाता है । इस समाज में समानता को लेकर कोई चिंतित नहीं है । 'स्व' एवं 'पराया' यही सूत्र अपनाकर आदमी 'सफर' करता है । जैसे-

"चौराहे पर खड़ा रहने से तो
जिन्दगी के मायने ही बदल जाते हैं ।
और
आदमी लटकता जाता है
हाशिए में
और अन्ततः

विक्षिप्त और त्रिशंकु ।"[96]

उपर्युक्त कविता के माध्यम से हमें यह पता चलता है कि कवि ने भेदभाव से परे समाज के स्वप्न की चिंता को अभिव्यक्त किया है । इस कविता में कवि ने जीवन के मायने पर बल दिया है । किसी को समाज से बाहर, किसी को समाज के अंदर, इसके साथ-साथ उच्च-निम्न का भेदभाव कवि को अनुचित लगता है । आदमी सभी आते हैं एक राह से लेकिन कौन किधर जाता है, यह जीवन में मायने रखता है । लेकिन आदमी के दिमाग में अपना स्वार्थ ही पलता रहता है । अपने स्वार्थ के लिए कौन क्या हो जाय, कोई पता नहीं है ! मनुष्य इस तरह का स्वार्थपूर्ण जिंदगी जी रहा है कोई वर्ग, समुदाय भुखमरी की समस्या से पीस रहा है और दूसरे-वर्ग के पास धान सड़ रहा है इस तरह के असमानता को कवि अनुचित मानते हैं । एक इन्सान को दूसरे इन्सान से मानवीयता का व्यवहार करना चाहिए । एक समुदाय को दूसरे समुदायों का सहयोग एवं साथ देना चाहिए । एक मनुष्य, दूसरे मनुष्य की विनाश की कल्पना न करें । मानवीयता के साथ व्यवहार करना ही इस कविता का मूल स्वर है । जीवन के सफर में अनेक मोड़ आते हैं । उन सभी मोड़ों को आदमी सहयोग, साहस के साथ पार करने की बात इस कविता में कही गई है । कविता लोगों में जागृति की भावना फैलाकर संगठित होकर रहने की बात करती है । मिलजुलकर जीवन जीने की ओर कवि सचेत करता है ।

नारी को कमजोर बनाने के लिए उन्हें घर तक ही सीमित कर दिया गया है । अतीत से लेकर वर्तमान तक नारी अनेक समस्याओं से जूझ रही हैं । बचपन से लेकर पारिवारिक-जीवन तक में उसके साथ लिंगगत आधार पर पाबंदी लगाई गई है । लेकिन वर्तमान में पढ़ी-लिखी नारियों के वजह से उनकी जीवन-शैली में परिवर्तन आने लगा है । कवि महोदय नारी वर्ग के प्रति हितैषी बनकर अपनी मानसिक वेदना को कविता में अभिव्यक्त करते हैं । स्त्रियों को समस्याओं से कैसे मुक्त कर सकते हैं ? नारी-अस्मिता, अस्तित्व, स्वतंत्रता, समानता, नारी-चेतना को हम लोग हरिराम मीणा की 'नारी-अवकाश का वह एक दिन' नामक कविता के माध्यम से समझ सकते हैं । जैसे-

---

[96] हाँ, चाँद मेरा है, पृ सं 32

"किस अतीत को चले हैं भुलाने हम
सप्ताह के एक दिन से !
दे सकेगा कितनी शक्ति
कितना साहस
कितना सम्बल
और कितना सुरक्षा कवच
नारी-अवकाश का वह
-एक दिन ? ...
कितना उल्लास
कितना सम्मोहन
कितनी ऊर्जा और कितना सर्जन ?
कहाँ तक भुला सकेगा
अपने अतीत को
इतिहास के झंझावातों से अब उगने वाला
नारी-अवकाश का वह
-एक दिन ?"[97]

उपरोक्त-कविता के माध्यम से हमें यह पता चलता है कि कवि ने नारी की दुर्दशा को यथार्थ-ढंग से प्रस्तुत किया है। समाज में स्त्री को तरह-तरह की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। लैंगिक आधार पर, दहेज-प्रथा की समस्या, दैहिक-शोषण, अत्याचार, अपमान, छेड़खानी, पारिवारिक शोषण, डाँट खाना आदि अनेक समस्याओं में नारी पीस रही है। इस तरह की समस्याओं की वजह से नारियों को आत्महत्या पर विवश कर दिया जा रहा है। इसलिए कवि इस कविता के माध्यम से नारी हितैषी बनकर अपनी आवाज उठाता है कि नारी के लिए भी एक दिन रखा जाने की जरूरत है। इस वजह से वह अपनी समस्याओं को हमारे सामने व्यक्त कर सकती है। इसके साथ-साथ उनके साथ जो-जो घटनाएँ घटित हुई हैं। उन घटनाओं के बारे में विवरण दे सकती है। इस वजह से समस्याओं से मुक्त होने के लिए राह दिखेगी। स्त्रियों को भरोसा देकर आत्मबल को बढ़ा

97 हाँ, चाँद मेरा है, पृ सं 51-52

सकते हैं। इसलिए 'नारी अवकाश का एक दिन' की जरूरत है। इसकी वजह से नारी का मनोबल बढ़ेगा। नारी के अंदर धीरे-धीरे साहस बढ़ेगा। स्त्री अपने विचार को साहस के साथ अभिव्यक्त कर पायेगी। स्वतंत्र-भावना से अपनी मनोवेदना को अभिव्यक्त करेगी। उन्हीं के अंदर साहस, सम्बल, उल्लास, सम्मोहन को हम लोग देख सकते हैं। नारी को पुरूष बनकर देखने की बात यह कविता करती है। उनकी समस्याओं को लेकर बहस करने के लिए नारी अवकाश का वह एक दिन की आवश्यकता है। इस कविता के माध्यम से कवि की यह चाह है कि नारी स्वतंत्रपूर्वक, साहस के साथ जीवन जीये।

3.2.4 किसान - जीवन के प्रति संवेदना -

भारत के कुछ आदिवासी-समुदाय जंगल में कुछ जगह साफ करके फसल बोते हैं। अतिवृष्टि के कारण किसानों की फसल पर किस तरह का बुरा असर पड़ा है। हाथ में आने वाली फसल अतिवृष्टि, भीषण बरसात के कारण मिट्टी में मिल गयी तो किसानों की क्या दुर्दशा होगी ? इस अतिवृष्टि ने किसान की जिंदगी को अंधकारमय बना दिया। फसलों की दु:स्थिति देखकर किसान माथा पकड़कर रोने लगें। इस अतिवृष्टि की वजह से किसान किस तरह परेशान एवं पीड़ित हुए हैं। कवि ने 'खूब बरसा था इस बार' कविता के माध्यम से इसे अभिव्यक्त किया है-

"खूब बरसा था पानी इस बार
भर गए थे ताल-तलैया, खेत और नदियाँ
गाँव के झूलों में उतरा था सावन
-पूरे यौवन के साथ ...
क्या बिगाड़ा था
नीली छतरी वाले!
तेरा हमने
जो उँडेल दिया अंधकार

जिन्दगी के उजालों में ?”[98]

उपरोक्त कविता के माध्यम से हम लोग किसान की क्या हालत है ? किस तरह के कष्टों को किसान झेलता है ? इन सबके साथ किसान की मानसिक-वेदना और संघर्ष के बारे में भी जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। किसान की दयनीय स्थिति के बारे में कविता बात करती है। किसान सबसे पहले कर्ज से मुक्त होने के लिए संघर्ष करता है। किसान कँटीली झाड़ियों से युक्त भूमि को साफ करके बीज बोते हैं लेकिन खर्च के लिए, फसल के आधार पर जमींदारों के पास से कर्ज लेते हैं। किसान का फसल देखकर दिनों-दिन आत्म विश्वास बढ़ता है कि पूरी की पूरी समस्याएँ दूर हो जायेंगी। यह मानकर किसान समय का इंतजार करते हैं। लेकिन सही दृष्टि से देखा जाय तो किसानों की समस्याएँ और बढ़ रही हैं। फसल को लेकर किसान शुरू से लेकर कटाई तक किसान अंदर ही अंदर डरता है। उनकी चिंता के पीछे मूल कारण यह है कि कहीं उनकी फसल बर्बाद न हो जाये। उनका विचार इस तरह है कि- फसल का दाम तो नहीं घटेगा, प्रकृति हमारे साथ घातक तो नहीं बनेगी, आदि मुद्दों को लेकर वह डरता है। इसके साथ-साथ कर्ज़ वाले कहीं फसल को तो नहीं हड़प लेगा, इस तरह की चिंता भी उन्हें सताती रहती है। इस तरह की चिंताओं से किसान अंदर-ही-अंदर शिकार होता रहता है। किसान अपना परिवार के पालन-पोषण हेतु कर्ज़ से पैसा लाकर खेत में बीज बोते हैं। फसल को देखकर मन ही मन कल्पना करते हैं कि बेटी की शादी करेंगे, कर्ज चुकायेंगे, उत्सव मनाएंगे इस तरह का सपना देख रहे थे। लेकिन फसल कटाई के दिनों ओलों की बरसात ने उन्हें बर्बाद कर दिया। इस वृष्टि से बचने के लिए किसान-परिवार के लोगों ने हाँडियाँ बाहर फेंकी थी, देवी-देवताओं से विनती किये थे लेकिन उनके पूजा-पाठ का असर नहीं पड़ा। नष्ट होते हुए फसल को देखकर, मिट्टी में मिली बालियों को देखकर पानी में डूबे फसल को देखकर ये लोग माथा-पकड़कर रोने लगे। किसान वेदना की स्वर में हे भगवान ! हमारे ऊपर आपको दया भाव नहीं है, हे नीली ! छतरी वाले तेरा हमने क्या बिगाड़ा। हमें बेसहारा खड़ा कर दिया है। किसान आकाश की ओर देखकर इस तरह विनती कर रहे हैं कि हे भगवान ! हमारा जान

[98] हाँ, चाँद मेरा है, पृ सं 106-108

भी निकाल लीजिए और कष्ट उठाने की क्षमता नहीं है, इस तरह दुखित स्वर में अपने विचार अभिव्यक्त किये हैं। अतिवृष्टि-अनावृष्टि का कुप्रभाव किसानों के जीवन पर पड़ता है। किसानों की कामनाओं को, आकांक्षाओं को, सपनों को ओलों की बारिश ने मिट्टी में मिला दिया। इस तरह की समस्याओं की वजह से कई किसानों को अपना प्राण का त्याग करना पड़ा। किसानों के प्रति इस तरह का अन्याय न होने की बात यह कविता करती है। किसानों को सहयोग देने की बात इस कविता के माध्यम से कवि कहता है। भारत के वर्तमान प्रधानमंत्री माननीय नरेंद्र मोदी ने किसानों की फसलों के बीमा का पुख्ता आधार देने की अपनी प्रतिबद्धता दोहरायी है। इससे संभवतः किसानों को लाभ भी मिलेगा।

अतीत से कोई वंश भोगविलासपूर्ण जीवन जी रहा है और कोई एक वंश शासन कर रहा है। इसके साथ-साथ दूसरों के प्रति भेदभाव दिखाना, किसी वंश का पीढ़ी-दर-पीढ़ी शोषण करते रहना, एक मनुष्य का दूसरे मनुष्य के प्रति अमानवीय व्यवहार करना। खासतौर से अतीत में देखा जाय तो इतिहास-लेखन में किसी वंश या वर्ग को उच्च स्थान देना, कोई दूसरे समुदाय का अपमान करना उसे इतिहास के पन्नों से बाहर रखना, मिथक में घटित घटनाओं का वर्णन अपने वर्गीय एवं जातिय आधार पर करना। ऐसा वर्णन इतिहासकारों ने प्रस्तुत किया है। भेदभावपूर्ण से लिखा गया इतिहास को, सही प्रारूप देने के लिए नई पीढ़ी के रचनाकार किस तरह संघर्ष कर रहे हैं इतिहास में आदिवासी-अस्तित्व को किस तरह तलाश रहा है, इसके साथ-साथ इतिहास के पुनर्लेखन की बात कवि इस कविता के माध्यम से करता है। इन तमाम मुद्दों के बारे में जानकारी 'एक वंश के मुक्त होने तक' कविता में देखी जा सकती है-

"जैसा घटा वैसा लिखा नहीं गया
विगत का इतिहास
और इतिहास की इसी दगाबाजी के खिलाफ
अब एक जुट हुए हैं शायद
ये नरकंकाल।...
नहीं करेंगे विश्वासघात

किसी वंश के लोगों के साथ
और, इसलिए-
उनकी मौत होगी
स्वाभाविक और सन्तोषी।
फिर-
नहीं भटकेगी उनकी आत्मा
बन कंकाल
मुक्ति के लिए
शताब्दियों तक।"[99]

मिथकीय युग से लेकर अंग्रेज शासन काल तक आदिवासी एवं दिकुओं के बीच अनेक महत्वपूर्ण घटनाएँ घट चुकी हैं। आदिवासियों द्वारा किये गये संग्रामों का जिक्र हमें इतिहास में कहीं नज़र नहीं आता है। आदिवासियों द्वारा घटित- यथार्थ और घटनाओं को लेकर इतिहासकारों ने मौनधारण कर लिया है। जिसके संस्थान में इतिहासकार रहे हैं उनके वंशज, राजाओं के बारे में सही को गलत, गलत को सही रूप देकर उनके वंश के शोभा बढ़ाते हुए इतिहास का उन्होंने लेखन किया है। निम्न वर्ग एवं आदिवासियों को इतिहास से कोसों दूर रखा है। अगर आदिवासी का जिक्र इतिहास में कहीं पर नज़र आया भी तो उन्हें विकृत-वर्णन करके अपमानित ही किया है। आदिवासियों को इतिहासकारों ने अपने लेखन में अमानवीय दृष्टि से दर्शाया है। इस तरह भेदभाव के ढंग से लिखा गया इतिहास को कवि अमान्य करता है। कवि इतिहास के पुनर्लेखन की आवश्यकता पर जोर देता है। नया-इतिहास लेखन में हरेक वर्ग समुदाय को सम्मान पूर्वक जगह देने की बात यह कविता करती है।

3.2.5 पर्यावरण-पारिस्थितिकी के संदर्भ-सूत्र -

प्राचीन काल की तुलना में वर्तमान में पर्यावरण-प्रदूषण दिनों दिन बढ़ रहा है। 'दिकू' एवं 'पूँजीपति' अपना स्वार्थ-हेतु पर्यावरण को कैसे असंतुलित कर रहे हैं। पर्यावरण का हनन हो रहा है। इस धरती पर हरियाली गायब हो रही है। इस भूमि पर

[99] हाँ, चाँद मेरा है, पृ सं 56-57

नदियाँ, नाले का रूप धारण कर रही हैं। नदियों का पानी पीने लायक नहीं रहा है। वर्तमान में अगर सही दृष्टि से देखा जाय तो नदी-नाले पानी की जगह कूड़ा-कचरों से भरे हुए हैं। नदियों का पूर्व वैभव दिलाने के लिए कोई चिंतित नहीं है। इसकी चिंता 'अब आएगा कौन कछारों में' कविता में हुई है-

"इतना तो बहा दिया नीर
-समुद्र में।
दे तो दिया सब कुछ
-दान में।
अब था ही क्या नदी के पास
जो रहती शेष।
सिकुड़ते-सिकुड़ते
मिल गए दोनों तट।...
बन चुकी है नदी
एक भुतहा खण्डहर
अब गुजरेगा कौन
-कछारों से ?"[100]

वर्तमान समय में विस्तारपूर्वक रूप से पर्यावरण का प्रदूषण हो रहा है। आजकल नदियों में पानी की जगह कछार नज़र आ रही है। इसके साथ-साथ धनिक वर्ग, जंगल एवं नदियों को अपने प्रभुत्व में लाकर भवन खड़ा कर रहे हैं। भवन खड़े होने के बाद नदी एवं तालाबों का छोटा-सा रूप हमें दिखाई देता है। नदी का स्वरूप नाले के रूप में नज़र आने लग रहा है। हम लोग उदाहरण के रूप में हैदरबाद में बहने वाली 'मूसी नदी' को देख सकते हैं। शहरों की गंदगी, कूड़ा-कचरे की वजह से भी नदियाँ अपना अस्तित्व खो रही हैं। इस तरह की समस्या को लेकर किसी को चिंता नहीं है। सरकार के साथ-साथ, आम जनता भी इस तरह के पर्यावरण को बिगाड़ने का विरोध नहीं कर रही है। कवि महोदय इस कविता के माध्यम से भविष्य की चिंता को अभिव्यक्ति दे रहे हैं। इस कविता

[100] हाँ, चाँद मेरा है, पृ सं 78

में कवि ने नदियों की मनो वेदना को हमारे सामने प्रस्तुत किया है । कवि इस कविता के माध्यम से प्रदूषण से बचने की बात करता है । इसके साथ-साथ प्राकृतिक-संसाधनों को प्रदूषण से बचाने की बात करता है । नदियों में जितना पानी रहना चाहिए, उतना पानी तो नहीं रहा है । अगर नदियों में थोड़ा बहुत पानी बचा है तो भी वह पानी पीने लायक नहीं रह गया है । वर्तमान में नदियाँ छोटा रूप धारण करने लगी है । इसलिए कवि आने वाली पीढ़ियों को लेकर चिंता को व्यक्त कर रहा है । इस तरह होता रहेगा तो भविष्य में होने वाले दुष्परिणामों का अंदाजा हम नहीं कर पायेंगे । हमारे स्वार्थ हेतु जो कुछ कर रहे हैं, इसका प्रतिफल आने वाली पीढ़ियों को भोगना पड़ेगा । इस तरह कवि अपनी कविता के माध्यम से पर्यावरण-पारिस्थितिकी के असंतुलन से बचने के लिए अनुरोध करता है । कवि सचेत करता है कि प्लास्टिक एवं कचरों से नदियों को प्रदूषित नहीं करें । आगे आने वाली पीढ़ियाँ हमें इसके लिए माफ नहीं करेंगी ।

3.2.6 विमुक्त और घुमंतू जनजातियों के जीवन का चित्रण -

आदिवासी समुदाय एवं मुख्याधरा के समाज में दूरी है । आदिवासी समुदायों के लोग विकास योजनाओं से नहीं जुड़ पाये हैं । खासतौर पर देखा जाय तो घुमंतू जनजातियों के पास स्थाई आवास नहीं है । इस समाज में एक समुदाय महल, भवनों में राज-भोग का आनंद उठा रहा है तो दूसरा समुदाय अपने पेट को भरने के लिए रोटी की तलाश कर रहा है । इस तरह के अंतर को कवि हरिराम मीणा ने ‘कालबेलिया’ कविता की पंक्तियों के माध्यम से समझाने की कोशिश की है-

“गधों की पीठों पर
चिथड़ों में लिपटी
वंशों की भावी हू-ब-हू पीढ़ियाँ
स्वानों के पहरे में
लुढ़कते डेरों में
समतल ही जिनकी
-उत्थान की सीढ़ियाँ ।

कोसों के रास्ते
-कहीं नहीं जाते
'बूमरेंग' बनकर डेरों में आते।
बस्तियों के हाशियों में
-जिनके अधिष्ठान
अलिखित अब तक
-अतीत के आख्यान
सभ्यता की यात्रा में
सदियों के फासले
पीढ़ियों पुराने सपनों के आसमान
दो हजार घोड़ों के रथ पर सवार
इस आधुनिक संस्कृति से अभी -अनजान।"[101]

उपरोक्त उद्धरण से घुमंतू-जनजातियों के दयनीय-जीवन के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। इसके साथ-साथ यहाँ पर कवि ने अपनी मानसिक वेदना को इस तरह अभिव्यक्त किया है कि- समाज में एक तरफ गढ़ है, महल है, स्थाई निवास है। दूसरी तरफ एक ऐसा समुदाय है जिसका घर ही नहीं है। एक गधे पर उसकी पूरी गृहस्थी चली जाती है। जैसे- बंजारा समाज को भी देख सकते हैं। वह समुदाय जो अपने बैलों पर, गधों पर पूरा गृहस्थी लादकर चलता है। आदिवासी समुदायों के लोग शहर में रहकर भी शहर का नहीं रह पा रहा है। उन समुदायों के पास, न तो आधार कार्ड है, और न ही राशन-कार्ड। शहर में तो ये लोग काम करते हैं इसलिए इन समुदायों के लोगों को मजदूरों के अलावा कुछ मानते ही नहीं हैं। उन समुदायों से काम के बाद कोई वास्ता नहीं रखते हैं। दिन भर काम करते, शाम को तंबू के नीचे आ जाते हैं। यही रही है इन लोगों की जीवन-प्रणाली। इस समाज में एक आदमी घोड़े पर आता है, और एक आदमी की पूरी गृहस्थी गधे पर है। यहाँ पर समझ में नहीं आता है कि सरकार विकास के नाम पर अनेक योजनाएँ बना रही है लेकिन इन जनजातियों के लोगों को विकास की योजनाओं से

---

[101] हाँ, चाँद मेरा है, पृ सं 141-142

बाहर कैसा रखा ? विकास का फल इन समुदायों के लोग क्यों चख नहीं पा रहे हैं ? जितनी भी योजनाएँ बना रहे हैं, सभी योजना से ये लोग बाहर हैं। इसलिए कवि आग्रह करते हैं कि इस तरह के आदिवासी समुदायों में सुधार लाने की आवश्यकता है।

कालबेलिया ऐसा ही जनजातीय समुदाय है जो साँपों से खेल-खेलकर अपना जीवन चलाता है। जिस साँप को सब लोग शत्रु मानते हैं, उसी साँप को आदिवासी अपना मित्र बनाकर खेलता है। जान को तो खतरा है लेकिन जीवन चलाने के लिए उन समुदायों को इस तरह का कार्य करना पड़ रहा है। जैसे-

"जीवन के प्रारब्ध से
-सर्पों की तलाश
बिलों में आँख।
बीन-तान पर
काले नागों के नाच
जहरीले फणों के फुफकारते खेल
आजीविका की खातिर
-खतरों को झेल।"[102]

आदिवासी-समुदायों के लोग अपना जीवन चलाने के लिए खतरनाक काम भी करने को तैयार रहते हैं। यहाँ पर सोचने की बात यह है कि सभी लोग तो साँप से डरते हैं लेकिन आदिवासी सर्प को मित्र बनाकर खेलता है। साँप से तो हमारी सभ्यता डरती है लेकिन आदिवासी समुदयों के लिए सर्प मित्र है। ये लोग बिलों में उन्हें खोजते रहते हैं, कहाँ सांप है, कहाँ साँप नहीं है। साँपों को तलाश कर पकड़ते हैं। इसके साथ-साथ स्वर-ध्वनियों से साँप को नचाते हैं। जिसका थोड़ा-सा विष प्राण ले सकता है, उनके साथ ये लोग खेलते हैं। शत्रुपूर्ण जंतु को इन्होंने मित्र बना लिया है। लेकिन आज यह समुदाय कहाँ है ? इस सभ्यता में उसकी कोई पहचान नहीं है ? साँपों से खेलना जिंदगी और मौत

[102] हाँ, चाँद मेरा है, पृ सं 142-143

का सवाल है। जिंदगी और मौत से वो लोग दो चार होते रहते हैं। यहाँ पर कवि इस तरह कह रहा है कि हरेक आदमी साँप से नहीं खेल सकता, साँप से खेलने के लिए साहस चाहिए, इस तरह साहस से साँप से खेलने वाले बहादुर तबका तुम कहाँ हो ? इस 'वसुधैव कुटुम्बकम्' में इन समुदायों का कुटुंब कहाँ है ?

राजस्थान में 'चकरी' नृत्य बहुत प्रचलित है। प्रचलित 'चकरी' नृत्य के आधार पर आदिवासी जन-समुदाय अपना जीवन चलाते हैं। वर्तमान में इस तरह के नृत्यों की क्या स्थिति है ? इन सारी बातों को 'कालबेलिया' कविता की पंक्तियों के माध्यम से समझ सकते हैं। जैसे-

"चकरी नृत्य एकमात्र
-जीवन का सौन्दर्य
सदियों के रेशों से बुनकर
-निखरा
तोड़-तोड़ तन को
-गीतों में उतारा
वह भी अब खिसक रहा
-हेरीटेज होटलों में
पर्यटन-मेलों में
बन रहा 'शो-पीस'
-मात्र बख्शीश
तालियों की पीट।
विविध ब्रांड व्हिस्कियों की
-मन्द-मन्द चुस्कियाँ
अभिजात मस्तियाँ।
वासना की तेज धार
अस्मिता की चीर-फाड़। ...
कितने कठोर, प्राणवान्

ये-कबीलाई डेराबन्द
जीवन की गति को
करते न कभी मन्द
चरैवेति चरैवेति
-यायावर घुमन्तू ।"[103]

उपरोक्त पंक्तियों से पता चलता है की आदिवासियों का अस्तित्व गीत-नृत्यों पर निर्भर है। इन समुदायों के लोग अपनी संस्कृति को श्रम-सौंदर्य एवं जीवन को इस नृत्य के माध्यम से प्रदर्शित करते हैं। 'चकरी नृत्य' में इतना श्रम करना पड़ता है, अपना शरीर को पूरा तोड़कर यह नृत्य किया जाता है । सभ्य समाज 'चकरी नृत्य' के कौशलों को नहीं देखते हैं, उनके शरीर के सौष्ठवों को देखता है। उनके शरीर के कौशलों को नहीं देखते हैं, शरीर की सुंदरता को देखते हैं। नृत्य को देख-देखकर मुस्कराते हुए दारू पीते हैं। यहाँ पर कवि इस बात को लेकर चिंता अभिव्यक्त कर रहे हैं कि औरत को औरत के रूप में देखा जा रहा है, उसे कलाकार के रूप में नहीं देखा जा रहा है । इसलिए कवि आदिवासी कलाकारों को सचेत करते हैं कि अपनी पहचान को पैसे के बदले में अपमानित करने की आवश्यकता नहीं है। इस तरह करेंगे तो इतिहास भूल जायेंगे। अगर संस्कृति को बचाना है तो बाहर के लोगों की शर्तों पर अपनी कला को नहीं बेचना है। 'चकरी नृत्य' का फाइव स्टार होटलों में सहज, प्राकृतिक रूप विकृत एवं अपसंस्कृति के साथ समाविष्ट हो रहा है। इसकी चिंता कवि को है। कवि चाहता है कि- इस नृत्य के संरक्षक कलाकारों का उचित संरक्षण एवं परिरक्षण लोक कल्याणकारी राज्य के वे संस्थान लें, जो लोक-कलाएँ के परिरक्षण का सारा समुद्र डकार रहे हैं।

3.3 'रोया नहीं था यक्ष' में अभिव्यक्त आदिवासी – जीवन -

---

[103] हाँ, चाँद मेरा है, पृ सं 143-144

वर्तमान में देखा जाय तो विकास के नाम पर बाजार का विस्तार हो रहा है । 'धनी' यानी 'कुबेर' ने अपने धन का लालच दिखाकर समाज एवं धरती को अपने हाथों में कब्जा कर लिया है । कुबेर अपनी कूटनीति को अपनाकर धीरे-धीरे लोगों का शोषण करने लगा है। अपना स्वार्थ की पूर्ति के लिए, प्रकृति को प्रदूषित कर रहा है। कुबेर अपने हितों के अनुसार दुनियाँ को चला रहा है। कुबेर की चेष्टाओं की वजह से आम जनता को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है । गरीब तबके के लोगों की समस्याएँ इनकी वजह से और बढ़ने लगी है । इनकी वजह से दिनों-दिन प्रदूषण बढ़ रहा है । इस तरह के तमाम विषयों के बारे में जानकारी हम लोग 'रोया नहीं था यक्ष' प्रबंध-काव्य की पंक्तियों के माध्यम से समझ सकते हैं। जैसे-

"बघनखी पंजे
घूरती आँख
मोटा पेट और
सुरसा जैसा मुख
वह कुबेर चर रहा था पहाड़ों को
जंगलों को
वनस्पतियों को
जीवों को
पी रहा था नदियों को
झरनों को
सरोवरों को
झीलों और
समुद्रों को
पगला रहा था हवाओं को
धूप को
चाँदनी को
ऋतुओं को
उत्सव-उमंगों
संवेदनाओं को

लीलता जा रहा था पृथ्वी के रूप-रस-गंध-स्पर्श
और शब्दों को ।”[104]

उपरोक्त काव्य-पंक्ति के माध्यम से हमें यह पता चलता है कि- कुबेर किस तरह भयंकर रूप धारण करके भूमि को भोग रहा है । कुबेर अपना धन की वजह से दानव का रूप धारण करके सभी का दलन कर रहा है । कुबेर पैसे के आधार पर हरेक वर्ग, वस्तु एवं वनस्पति को अपने कब्जे में लेकर उसका शोषण करने लगा है । एक तरह का गिद्ध एवं चीता बनकर सामान्य जनता का खून चूस रहा है । इसके साथ-साथ अपना बाजार विस्तार करने के लिए अधिक मात्रा में जमीन को हस्तगत करते जा रहा है । सस्ते भाव में जमीन हस्तगत करके, अपनी कंपनियाँ खड़ा कर रहा है । दिनों-दिन कुबेर का बाजार विस्तृत हो रहा है । इसके साथ-साथ भूमि पर बाजार ने भयंकर रूप धारण कर लिया है। बाजार का विस्तार करने के लिए जंगल को साफ करना पड़ा है । कंपनियाँ खड़ा करने के लिए पहाड़ों को तोड़-फोड़ के उखाड़कर फेंकना पड़ा है । पानी प्रदूषित हो गया है । पर्यावरण प्रदूषित हुआ है । कुबेर ने स्वार्थ के लिए, मुनाफा कमाने हेतु, जमीन, प्रकृति और पर्यावरण के साथ छेड़-छाड़ की है । पर्यावरण के प्रदूषण की वजह से जीव-जंतु एवं प्राणी जगत को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है । वातावरण में परिवर्तन के कारण, मानसून का समय के अनुसार नहीं आना, ज्यादा गर्मी, अतिवृष्टि-अनावृष्टि आदि समस्याएँ पनप चुकी हैं । बाजारीकरण के नाम पर पहाड़ों को डायनामाइट से उड़ाना, पेड़-पौधों को जड़ों से उखाड़ना एवं पानी को प्रदूषित करना, ये सब कुबेर की असीम लालच की चाह के कारण हो रहा है । कुबेर के धन की लालच की चाह से बचने की बात यह कविता करती है ।

इतिहास और मिथकों में निम्न-वर्ग को किस तरह की जगह मिली है । कितनी जगह उन्हें इतिहास एवं मिथकों में मिली है । अगर सही दृष्टि से देखा जाय तो चारों वर्ण-समुदायों को समान रूप से जगह हमें इतिहास एवं मिथकों में दिखाई नहीं देती है । मिथक में सच को झूठ और झूठ को सच के रूप में साबित करके लिखा गया इतिहास एवं मिथक सच्चा साहित्य नहीं कहलायेगा । एक वर्ग को भिन्न, भेदभावपूर्ण दृष्टि के साथ

---

104 रोया नहीं था यक्ष, पृ सं 26-27

मानवीय गरिमा से निम्न स्तर पर देखना कहाँ तक न्यायोचित है ? एक वर्ग का निरंतर दलन एवं शोषण करना, उसे अपमानित करते रहना क्या सच्चे साहित्य का वाचक हो सकता है ? इन सबको इस प्रबंध-काव्य की अंतर्वस्तु बनाया गया है । जैसे-

"बताओ ओ, मेघदूत !
तुम अलकापुरी गए या नहीं
गए, तो क्या देखा यथार्थ उस नगर का
नगर की व्यवस्था का
व्यवस्था के नेतृत्व का
नेतृत्व के दुष्चक्रों का ? ...
इतिहास और मिथकों ने जो हमें बताया
क्या वह झूठ नहीं था
विरूपताओं का गौरवगान नहीं था
निरा दंभ और छल नहीं था
विगत के सहारे भविष्य-निर्माण में
अवरोध नहीं था ???"[105]

उपरोक्त काव्य पंक्तियों के माध्यम से हमें यह पता चलता है कि यथार्थ को सही ढंग से, सही रूप में अभिव्यक्त करने की चिंता प्राथमिक होनी चाहिए । कवि यहाँ मेघदूत के माध्यम से इतिहासकारों को सचेत करता है कि- जो देखा उसी घटना को उसी रूप में अभिव्यक्त करने को सचेत करता है । कवि इन काव्य- पंक्तियों के माध्यम से वास्तविकता को तलाशता है । वास्तविकता पर बल देकर सही प्रारूप को सामने लाने की बात करता है । इतिहास और मिथकों में कितना वास्तव उभरकर सामने आया है, हम लोग जान सकते हैं । सही को झूठ और झूठ को सही रूप देकर साहित्येतिहास में साबित कर दिया गया है । मिथक में आदिवासी का वर्णन विकृत रूप में किया गया है । आदिवासियों द्वारा किये गये युद्ध या संग्राम हमें कहीं दिखाई नहीं देगा । इस तरह के तमाम त्रुटियों को सुधारने के लिए इतिहास के पुनर्लेखन की आवश्यकता है । इसकी वजह से वास्तविकता

---

[105] रोया नहीं था यक्ष, पृ सं 29

उभरकर हमारे सामने आयेगी। कवि यह सवाल उठाता है कि सच्चाई छुपाकर, गलत को कल्पना के आधार पर सच साबित करना कहाँ तक न्यायोचित है ? अंत में कवि कहना चाहता है कि- किसी आधार के बिना लिखा गया मिथक, इतिहास कदापि मान्य नहीं होगा। दूसरों के प्रति भेदभाव दिखाने वाले इतिहास एवं मिथकों में वास्तव में क्या हुआ है, इसी को तलाशकर अभिव्यक्त करने की आवश्यकता है। यह जिम्मेदारी नई पीढ़ी के रचनाकारों के ऊपर है। कवि महोदय नई पीढ़ी के लेखकों से अनुरोध करता है कि वास्तविकता के आधार पर अपना विषय का निर्धारण एवं विश्लेषण करें।

सामंती समाज में कुबेर कूटनीति को अपनाकर, जनता का शोषण एवं दलन करता है। सामंतवाद में जनता को अनेक समस्याएँ झेलनी पड़ती थी। किसी के शासन के अधीन, दबे रहकर, लोग सहज जीवन जी नहीं पाते थे। इसके साथ-साथ इस सामंती-व्यवस्था में कुबेर ने समाज को अपने कब्जे में रखकर उनके जीवन से कैसा खेल खेला है ? सामंत-वर्ग की बेड़ियों से मुक्ति पाने के लिए कई विद्रोहात्मक-संघर्ष सामने आये हैं। जैसे-

"पहली बार-
यक्ष ने जड़ता हिलाई निर्विकल्प आम जन की
निर्वास के स्वीकार से की चोट उस कुरीति पर, दुर्नियति पर
करती रही जो विवश हर सुंदर वधू को हिरणवत-
आखेट एवं भोग के लिए ...
अनभिज्ञ था सत्तामदांध कुबेर
कि, वह अभिशप्त निर्वासन नहीं था
-दंड के आगे स्वैच्छिक समर्पण
था स्पष्ट प्रतिरोध व्यवस्था का
तैयारी थी भावी योजना की-
विरोध-विद्रोह-संघर्ष-परिवर्तन की।"[106]

उपरोक्त काव्य-पंक्ति के माध्यम से हमें यह पता चलता है कि- सामंती- व्यवस्था में नववधू को प्रथम रात्रि भोग हेतु, कुबेर के पास भेजना पड़ता था। यह प्रथा परंपरा से

---

[106] रोया नहीं था यक्ष, पृ सं 35

चली आ रही थी । कुबेर का लक्ष्य स्त्री-अस्मिता का हरण करना था । इस तरह के अत्याचार को स्त्री-जाति प्राचीन काल से झेल रही थी । स्त्रियाँ इस तरह की पारंपरिक समस्याओं में पिस रही थीं । इस तरह की सामंतवादी व्यवस्था का विरोध यक्ष करते हैं । कुबेर के विरोध में खड़े होने की हिम्मत यक्ष के अलावा किसी के पास नहीं थी । यक्ष हमेशा चिंतित रहता कि इस सामंती-व्यवस्था से आम जनता के साथ-साथ स्त्रियों को मुक्ति दिलानी है । कवि यक्ष पात्र को आधार बनाकर स्त्री की मनोवेदना को अभिव्यक्त करते हैं । यहाँ यक्ष की चिंता सिर्फ यक्षिणी को लेकर ही नहीं थी, स्त्री-जाति को लेकर और आम जनता को मुक्ति दिलाने के लिए सामंतीय-व्यवस्था के विरोध से जुड़ी हुई थी । आम जनता के साथ-साथ, स्त्रियों के आत्मसंघर्ष के एक प्रतीक के रूप में यक्ष खड़ा है । यक्ष ने परंपरा से चले आ रहे अत्याचार, अपमान, शोषण, गुलामी की बेड़ियों को तोड़कर सामंत वर्ग के विरोध में अपना झंडा उठाया था । कुबेर की व्यवस्था से संघर्ष एवं विरोध करके, अलकापुरी छोड़कर, घने जंगलों में जीवन बिताया था । यक्ष अपनी पत्नी नववधू को भोग हेतु कुबेर के पास नहीं भेजता है । इसके विरोध में वह अपना जीवन- जंगलों में बिताता है । यक्ष ने कुबेर की जड़-प्रथा की जड़ता को हिलाया था । कवि महोदय यक्ष के माध्यम से आम-जनता के मन में, चेतना के बीज बोते हैं ।

कुबेर-व्यवस्था से आम जनता को मुक्ति दिलाने के लिए यक्ष दृढ़-संकल्प लेकर अंधेरे जंगल में जीवन बिताने का निश्चय करता है । कुबेर की पारंपरिक बेड़ियों को तोड़कर मुक्ति पाना ही यक्ष का लक्ष्य है । वह अपना संघर्ष, कुबेर के विरूद्ध करता रहा इस विद्रोह, संघर्ष में यक्ष की पत्नी ने भी उसका साथ दिया था । यक्ष अपनी पत्नी को, स्त्री-जाति का नेतृत्व करने के लिए प्रेरित करता है । यक्ष का मूल लक्ष्य- जनता में चेतना फैलाकर, उसे सामंतीय-व्यवस्था के विरूद्ध खड़ा करना है । स्वतंत्र एवं सम्मान-पूर्वक जीवन जीना ही उनका लक्ष्य है । कुबेर का विरोध, यक्ष स्वयं करता है । जैसे-

“मुझे धकेला जब नगर से
दी तुम्हीं ने तो विदाई
ख़ूब ढाढ़स दे कहा था- “तुम्हारा साथ दूँगी”

प्रियतमा, यह क्या ?
शेष हैं चार मास
और तुम यूँ विरहगीत गा रही !
क्या मैं करूँ उस राज्यादेश की अवहेलना
संघर्ष का अंकुर बना जो ?
जानता हूँ-
यह डगर तलवार की-सी धार
पर बहुत लंबा सफ़र तय कर चुका हूँ
लौटकर आना असंभव
है यही विकल्प मेरे सामने
तुम नहीं अबला
उठ खड़ी होकर करो नेतृत्व स्त्री जाति का
ये विरह-मिलन के दुख-सुख नहीं सीमा हमारी
तीर ये जो विरह के
मेरे हृदय में भी चुभ रहे
किंतु, इनसे भी गहन पीड़ा मुक्ति की-
दमन-शोषण-दासता से
भोगता जिसको आम जन
विवश होकर बहुत अर्से से ।”[107]

उपर्युक्त काव्य-पंक्ति के माध्यम से हमें यह पता चलता है कि- यक्ष का मूल लक्ष्य शोषण एवं दासता से मुक्ति पाना था । इसके साथ-साथ यक्ष ने यक्षिणी को सचेत करके, विश्वास के साथ आगे बढ़ने को प्रेरित किया था । यक्ष, यक्षिणी को धीरज देकर प्रेरित करता है । यक्ष के मन में विरह वेदना की चिंता नहीं है लेकिन उनकी चिंता कई वर्षों से दासता का जीवन जी रहे लोगों के लिए है । सामंत-वर्ग, सामान्य जनता का शोषण कई हजारों वर्षों से कर रहे हैं । इस तरह के अन्याय से मुक्ति दिलाने के लिए यक्ष संघर्ष कर रहा है । स्त्री जाति को स्वतंत्र जीवन दिलाने के लिए निरंतर प्रयास कर रहा है ।

[107] रोया नहीं था यक्ष, पृ सं 37-38

आदमी एकांत में रहते समय अपना लक्ष्य प्राप्त करने के लिए एक सूत्रबद्ध योजना बना लेता है, उसी से उन्हीं के अंदर आत्मविश्वास बढ़ता है । विजय प्राप्त करने के लिए मन-ही-मन संघर्ष करता रहता है । यक्ष कभी डरता नहीं है । उसका मानना यह है कि- 'जो आदमी डरता है वह हार जाता है । डरपोक अपना लक्ष्य प्राप्त नहीं कर सकता है ।' कवि महोदय यक्ष पात्र के माध्यम से लक्ष्य प्राप्त करने के लिए धीरज से आगे बढ़ने को कहता है । कोई भी हो सबसे पहले अपना भरोसा नहीं, खोने के लिए कहता है । अपना विश्वास नहीं खोना चाहिए । यक्ष यहाँ पर आम जनता को धीरज से, विश्वास के सहारे विद्रोह करने को प्रेरित करता है । आम जनता के मन में यक्ष साहस एवं विश्वास के बीज किस तरह बोता है । इसे हम हरिराम मीणा की प्रबंध-काव्य की काव्य-पंक्तियों के माध्यम से समझ सकते हैं । जैसे-

"एकांत को बनना चाहिए कोई विकल्प
विराट ऊर्जा का स्रोत
एकीकृत चेतना का प्रकाश-पुंज
मैं केवल मैं नहीं
व्यष्टि की समष्टिगत संभावना हूँ
छिन्न-भिन्न असंतुष्ट जनचेतना की सार्थक-
परिकल्पना हूँ ...
डर का होता है एक मनोविज्ञान
जो जिस मात्रा में डरता है
उसी अनुपात में डराने वाला भी
इस खेल में जो डर गया, वह हार गया
हम तो मरूस्थल के मरगोजों की तरह हैं
विकट परिस्थितियों में भी अकूत प्राण-शक्ति
यही तो है-
जीवन के प्रति हमारी आस्था और आश्वस्ति ।"[108]

[108] रोया नहीं था यक्ष, पृ सं 40-41

उपरोक्त काव्य-पंक्ति के माध्यम से हमें यह पता चलता है कि कवि महोदय यक्ष पात्र के माध्यम से आम जनता के अंदर चेतना फैलाता है । आदमी को शक्तिशाली बनने को कहता है । आदमी को कभी भी विश्वास नहीं खोने की बात यह कविता करती है । कवि कहते हैं कि- दूसरों पर निर्भर रहना छोड़कर आदमी को स्वयं अपना लक्ष्य प्राप्त करने के लिए संघर्ष करना चाहिए । सबसे पहले यह ध्यान देना चाहिए कि आदमी को किस राह पर चलना है ? किस तरह का जीवन जीना है ? उसे स्वयं तय करना होगा । उसके बाद अपना लक्ष्य प्राप्त करने के लिए आगे बढ़ने को यह कविता प्रेरित करती है । प्राचीन काल से लेकर वर्तमान तक परंपरागत रूप से जो लोग दासता का जीवन जी रहे थे । उनकी दासता की बेड़ियों को उन्हें स्वयं तोड़ना पड़ेगा । उन्हें दासता की बेड़ियों से कोई नहीं मुक्त करेगा । उन्हें स्वयं संघर्ष करके दासता की बेड़ियों से मुक्त होने की बात यह कविता करती है । यहाँ पर यक्ष ऐसा पात्र है जो कभी किसी से डरता नहीं है । वह आगे बढ़कर मुक्ति की राह खोज रहा है । आम जनता को स्वतंत्र जीवन दिलाने के लिए संघर्ष कर रहा है । इस कविता में कवि महोदय इस तरह कह रहा है कि- 'विद्रोहात्मक-संघर्ष से ही दासता की बेड़ियों से आम जनता को मुक्ति मिलेगी ।' इसलिए कवि महोदय यक्ष पात्र के माध्यम से जनता को जागृत करके, साहस के साथ, कुबेर व्यवस्था के विरूद्ध संघर्ष एवं विद्रोह करने के लिए प्रेरित करता है । जो आदमी या समुदाय जब तक कुबेर से डरेगा तब तक कुबेर का कष्ट झेलना पड़ेगा । मुक्ति पाना है तो साहस से संघर्ष करने को कहता है ।

सामंतवादी-व्यवस्था से मुक्ति पाने के लिए यक्ष निरंतर संघर्ष कर रहा था । अपनी पत्नी यक्षिणी को अपना संदेश देकर सचेत कर रहा था । कुबेर की व्यवस्था के विरूद्ध, संघर्ष का बिगुल बजाओ, यक्षिणी, तुम स्त्री-जाति का नेतृत्व करके उन सभी को राह पर चलाकर विद्रोह करने की ओर अग्रसर करो । इस तरह कहकर अपनी पत्नी से यक्ष अनुरोध करता है । आँसू बहाना, डरना, आत्महत्या कर लेना आदि यह सब हमारी संस्कृति नहीं है । समस्या का साहस के साथ सामना करना ही हमारी संस्कृति है । संघर्ष करके जीवन जीना है । अपने अंदर छिपी हुई आग को पहचानने की बात कविता कर रही

है । तुम्हारे अंदर चिनगारियों को आग बनने दो । आग को प्रज्वलित करके फल प्राप्ति करना है । विद्रोह के बिना विजय प्राप्त करना असंभव है । जैसे-

“अरी,
तुम्हारे भीतर भी तो उतनी ही आग है
राख हटाकर करो प्रज्वलित
जलने दो यदि जले-अस्थि, मांस
रूधिर, त्वचा,
तन रोम-रोम को
शेष रहेगी तपी चेतना
वही प्रवर है, वही अमर है
प्रिय के विछोह में-
पपीहा की-सी रट लगाना
घटाओं और बिजलियों से डर जाना
विरह की बाँझ अग्नि में जल जाना
क्रंदन-सिसकन-रूधन और निराशा में डूब जाना
अंततः तड़प-तड़पकर मर जाना
यह सब तो नहीं-
हमारी प्रकृति और आदि परंपरा
हमारा श्रृंगार और सौंदर्यशास्त्र
हमारा विचार-बोध और सृजन ।”[109]

कवि ने स्त्री-चेतना पर बल दिया है । कवि यक्ष-पात्र के माध्यम से स्त्री के प्रति होने वाले अन्याय के विरूद्ध, लड़ने को सचेत करते हैं । यहाँ पर यक्ष ने पत्नी, यक्षिणी के माध्यम से, स्त्रियों की जागृति पर बल दिया है । स्त्रियों के अंदर छिपी अग्निज्वाला को प्रज्वलित करने की बात यह कविता करती है । कुबेर की व्यवस्था में डरकर रहना, आँसू बरसाते रहना, निराशा में डूब जाना इस तरह करेंगे तो दासता की बेड़ियों से मुक्ति नहीं मिलेगी । यक्ष जनता को इस तरह कहता है कि- कुबेर की व्यवस्था के विरोध में, आदमी, दूसरी परंपरा को अपनाकर, आगे बढ़ें । संघर्ष करने के बाद ही दासता की बेड़ियाँ ढीली

[109] रोया नहीं था यक्ष, पृ सं 42

होंगी । इस वजह से सामंती- व्यवस्था में परिवर्तन आयेगा । तत्पश्चात् मुक्ति मिलेगी । इसलिए कवि इस तरह कह रहा है कि समस्या को हल करने के लिए एक सूत्रबद्धता को अपनाकर दृढ़- संकल्प लेकर लक्ष्य प्राप्ति की ओर आगे बढ़ना है । आदमी को संघर्ष करते समय कभी भी नैराश्य को अपने पर हावी नहीं होने देना है विश्वास के साथ आगे बढ़ते रहना है । यक्ष स्त्रियों में चेतना फैलाकर कुबेर व्यवस्था के विरूद्ध बिगुल बजा रहा है । स्त्रियाँ सहयोग रूप से, साहस के साथ, विद्रोह करके, शोषण से मुक्त हो सकती है ।

स्वतंत्रतापूर्वक जीवन जीने के लिए यक्ष किस तरह तड़प रहा है । किस तरह के सूत्र अपना रहा है । किस तरह की ऊर्जा शक्ति-ग्रहण कर रहा है । शोषण से मुक्ति पाने के लिए कैसा संघर्ष कर रहा है । आम जनता को दासता से मुक्त करने के लिए किस तरह का कार्य एवं संकल्प लेकर यक्ष आगे बढ़ रहा है । यक्ष साहस के साथ समस्याओं का सामना कर रहा है । प्रकृति से प्रेरणा लेकर यक्ष आगे बढ़ रहा है । जैसे-

“और बहुसंख्यक लोग फँसे हुए हैं-
अभावों, बहकावों, व्यामोह और शोषण के शिकंजों में
-चारों ओर पसरे घने अंधकारों में
तुम्हीं तो दे सकते हो इन्हें-
कुछ ऊर्जा
कुछ विकल्प
कुछ गति
कोई लक्ष्य
मैं भी तो इन्हीं में हूँ
जितना, जीवन की मजबूरियों को मैंने सहा
पल-पल, क़दम-क़दम उतना ही ख़ून-पसीना
-चूता रह...
सहलाऊँगा रात-भर टपकते महुआ के दरख़्तों को
कहूँगा-रोओ मत, यूँ अकेले-अकेले
तनिक देखो मेरी तरफ़,
तुम्हारे दर्द का भी तो कोई वास्ता है मेरी तैयारियों से
पूछूँगा वन्य जीवों से लड़ने-बचने की तरकीबें

पंछियों से कहूँगा,
बताओ मुझे
कैसे संभव होंगी स्वतंत्रता की तदबीरें ?"[110]

उपर्युक्त काव्य-पंक्तियों के माध्यम से हमें यह पता चलता है कि स्वतंत्र जीवन जीना ही यक्ष का प्रमुख लक्ष्य है । इसलिए वह अपने समाज से दूर रहकर, प्रकृति से प्रेरणा लेकर संघर्ष करते हुए स्वयं स्वतंत्र बनने के साथ-साथ आम जनता को भी स्वतंत्र जीवन दिलाने के लिए आगे बढ़ रहा है । यक्ष ने संघर्ष की परंपरा को अपनाया है । इसलिए यक्ष जंगल में अकेला रहता है । यक्ष ने अकेलेपन में निराश न होकर, प्रकृति से प्रेरणा लेकर बहुत कुछ सीख लिया है । प्रकृति से यक्ष ने ऊर्जा ग्रहण की है । सबसे पहले यक्ष ने स्वतंत्र जीवन जीने को तय कर लिया है । यक्ष का मानना यह है कि सबसे पहले आदमी स्वतंत्र रहना चाहिए तब आगे जाकर आदमी अपनी इच्छा के अनुसार जीवन जी पायेगा । कुबेरी-व्यवस्था में लोगों को स्वतंत्रता नहीं है वे लोग दासता का जीवन जीते आ रहे हैं । इसलिए यक्ष, दासता की बेड़ियों को तोड़कर आमजन को स्वतंत्रता दिलाने का दृढ़ संकल्प कर चुका है । प्रकृति में रहकर यक्ष प्रभावित हुआ है । प्रकृति का गहरा असर हमें यक्ष पर दिखाई देता है । जैसे- पेड़, हवा, पहाड़, जानवर आदि यह सब स्वतंत्र हैं । सभी जीव स्वतंत्र जीवन जी रहे हैं लेकिन आदमी किसी के दबाव, कब्जे में आकर दासता की तरह जीवन जी रहा है । इस तरह के जीवन में बदलाव, परिवर्तन की जरूरत है । इस तरह यक्ष सोचकर आगे बढ़ता है । लेकिन यहाँ पर कुबेर की कूटनीति की वजह से आम-जनता दासता का जीवन जी रही है । दासता के कारण उनका शोषण, अत्याचार, अन्याय हो रहा है । इस परंपरा का विरोध स्वयं यक्ष ने किया था । यक्ष आगे जाकर जनता को जागृत करके दासता की बेड़ियों से मुक्ति दिलाता है । आखिर में वह इस तरह कहता है कि- स्वतंत्र जीवन, उन्हें संघर्ष के सहयोग से प्राप्त होता है ।

आर्य एवं अनार्यों के बीच भयंकर संग्राम हुआ था । जो समुदाय हार गया, उस समुदाय को किस तरह अपना जमीन, जगह छोड़कर भागना पड़ा । हारा हुआ जन-समुदाय किस तरह की दासता की जीवन जी रहा है जो वर्ग जीत गया, समुदाय, हार गए

[110] रोया नहीं था यक्ष, पृ सं 58-59

जन-समुदायों के प्रति उसका व्यवहार चिंतनीय है ? हारे हुए जन-समुदायों को बलात्-विस्थापन का शिकार होना पड़ा । उन समुदायों को लगातर अपमान झेलना पड़ा । इसके साथ-साथ उन्हें विकास योजना से दूर रखा गया है । उन समुदायों को हाशिया से भी दूर धकेल दिया गया है । जैसे-

"हार गए जो
उगा दिए लंबे बाल जिनके माथे पर
कर दिया विरूप चेहरा
खदेड़ दिए मैदानों से-धँसा दिए जंगलों में-
क्या मेरा ही वर्ग वो ?"[111]

उपर्युक्त काव्य-पंक्तियों के माध्यम से हमें यह पता चलता है कि- आदिवासी-वर्ग को विस्थापन के साथ-साथ, जानवरों से भी हीन समझकर, उन्हें अपमानित किया गया है । आदिवासियों के साथ आर्य एवं अनार्य संग्राम से लेकर कुबेर की कंपनियों तक अन्याय ही हुआ है । बाहर से आये हुए लोगों ने यहाँ के मूलवासी को हराकर, उन्हें उनकी जमीन से बेदखल कर दिया । यहाँ के मूलवासी को अपना जीवन चलाने हेतु, जंगल का सहारा लेना पड़ा । वे जंगल में नंग-धड़ंग, 'फूल-फल' खाकर अपना जीवन जीते आ रहे हैं । जंगल में रहने वाले लोगों को भी नहीं छोड़ा है, उनका भी शोषण करते रहे हैं । इस के साथ-साथ उनका विकृत-वर्णन करने लगे हैं । 'दिकू' ने आदिवासियों को मानव समुदायों से हटाकर देखने की अभिरूचि को अभिव्यक्त किया था । इसलिए यहाँ के मूलवासियों की छवि दानव, राक्षस, लंबे बाल वाले जानवर, सिर के ऊपर सिंग, विरूपित चेहरे वाले इत्यादि रूपों में काव्य एवं कथाओं में चित्रित की । इस तरह का विकृत वर्णन करके, यहाँ के मूलवासी को जड़ों से उखाड़ने की साजिश रची गई है । उन्हें अन्य जन-समुदायों से जुड़ने नहीं दिया गया है । इसके साथ-साथ मुख्यधारा का समाज आदिवासी की विरूपित छवि को साबित कर चुका है । इस तरह साबित करने के पीछे मूल कारण यह है कि- मूलवासियों को विकृत रूप देकर उनकी हत्याएँ आसानी से कर सकते हैं । उन वर्ग,

[111] रोया नहीं था यक्ष, पृ सं 65

समुदायों को जड़ों से आसानी से मिटाने का यह एक सरल तरीका है । इस तरह हारे गए समुदायों को कई प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ा है । ‘हार-जीत’ का फर्क इतना बड़ा होता है । ‘हार’ गया वर्ग या जन-समुदाय अपनी खोयी हुई अस्मिता या पहचान और अस्तित्व को सिद्ध करने के लिए निरंतर संघर्षरत रहते हुए, अपने सही और औचित्यपूर्ण रूप को विवश होगा, यह कैसी विडंबना है ? ‘जीता’ हुआ वर्ग विशेषाधिकार प्राप्त सुविधाओं और मान को धारण करते हुए इतिहास का नियंता अबाध बना रहता है । यह सब हम भारतीय समाज, मिथकेतिहास में देख सकते हैं ।

3.4 ‘समकालीन आदिवासी कविता’ में अभिव्यक्त आदिवासी-जीवन -

श्री हरिराम मीणा ने ‘समकालीन आदिवासी कविता’ नाम से वर्ष-2008 में ‘अरावली उद्घोष’ पत्रिका का संपादन किया था जो आदिवासी कविता विशेषांक के नाम से छपा था । इसको सुधार एवं परिवर्तित करके वर्ष-2013 को ‘समकालीन आदिवासी कविता’ नाम से संपादित किया गया है । इस संग्रह में कुल 29 कवियों / कवयित्रियों की कविताएँ संग्रहित की गयी हैं । इन कविताओं का विषय आदिवासी जन-जीवन और उसकी अस्मिता-अस्तित्व पर गहराते संकट से जुड़ा हुआ है । श्री हरिराम मीणा के अनुसार आदिवासी जीवन पर ईमानदारी पूर्वक, प्रामाणिक विषय की जानकारी के साथ कोई ग़ैर-आदिवासी भी लिख सकता है । इसलिए आदिवासी-विमर्श में अभी यह मुद्दा नहीं बना है कि आदिवासी-साहित्य केवल जन्मना आदिवासी ही लिख सकता है । जो कि अन्य समकालीन विमर्शों में देखने में आ रहा है ।

इस कविता-संकलन की भूमिका बहुत ही महत्वपूर्ण है । विशेषकर आदिवासी कविता की विषय-वस्तु, अंतर्वस्तु और शिल्प को समझने के लिए कुछ उदाहरण देखे जा सकते हैं- “कविता में प्रमुख रूप से चार तत्व होते हैं । इन्हें ‘स’ धातु (अक्षर, वर्ण) के स्तर पर सामान्यीकृत किया जा सकता है यथा स्रोत, शब्द, शिल्प और संदेश । ‘स्रोत’ से

तात्पर्य जीवनानुभव की उस जमीन से है जहाँ से कविता उपजती है। जब कवि का किसी दृश्यादृश्य स्थिति से साक्षात्कार होता है और वह उसे आत्मसात् कर हर्ष-विषाद की मनोदशा में अभिव्यक्त करने को विवश या प्रेरित होता है तो कविता की रचना होती है। यह स्रोत या जमीन कविता के होने की पहली आवश्यकता होती है। निश्चित रूप में यह अभिव्यक्ति भाषा के स्तर पर ही सम्भव है जिसे 'शब्द' तत्व कहा गया है। तीसरा तत्व है 'शिल्प' जो कविता को सुन्दर, प्रभावी, संप्रेषणीय, हृदय को छूने वाली बनाता है। हम इसे 'अंदाजे बयां' भी कह सकते हैं। 'संदेश' को मैं अन्तिम तत्व के रूप देखता हूँ जो, अनिवार्यतः होना चाहिए। संदेश का अर्थ नारेबाजी, नीति-पाठ या प्रवचन नहीं, प्रत्युत् कवि अपनी रचना से बेहतरीन भविष्य के लिए किस तरह पाठक या श्रोता को विषय विशेष से जोड़ने की स्थिति में हो पाता है- इस ध्येय से है। संदेश-विहीन और निर्लक्ष्य कविता बांझ रचना होगी। फिर आप स्वांतः सुखायः रचते रहिये। दुनियादारी से ऐसी कविता का कोई वास्ता नहीं होता। कविता मात्र मनोरंजन भी नहीं। इसलिए शक्तिशाली कविता आत्मालाप और मनोरंजन से आगे ले जाती है जहाँ वह मानव, मानवेतर प्राणी जगत और प्रकृति से बनी सृष्टि को अभिव्यक्त भी करती है और इनके मध्य और स्वतंत्र रूप से इनके कल्याण के लिए कल्पना और प्रेरणा का काम करती है। इस दृष्टि से आदिवासी कविताओं का विश्लेषण किया जायेगा तो कविता के लिए आदिवासी जीवन का गहन अनुभव, विषयानुरूप भाषा का मुहावरा, सम्प्रेषणीयता और प्रकृति तथा मानवता के दुःख-सुख में शामिल होने की प्रेरणा आदि की बात सामने आयेंगी। इस संकलन में सम्मिलित कविताओं में आप आदिवासी जीवन के अतीत, प्रकृति-प्रेम, श्रम की महत्ता और सौन्दर्य, दुःखों के विरूद्ध संघर्ष, अच्छे दिनों के स्वप्न आदि की अभिव्यक्ति देखेंगे।"[112]

3.5 हरिराम मीणा के काव्य में आदिवासी – स्त्री –

[112] समकालीन आदिवासी कविता, पृ सं 7-8

समकालीन हिंदी कविता में आदिवासी जीवन की सबसे सशक्त अभिव्यक्ति करनेवाले रचनाकारों में हरिराम मीणा का नाम सर्वोपरि है। इनके तीन काव्य-संग्रह हैं- 1. 'रोया नहीं था यक्ष', (प्रबंधात्मक-खंड काव्य), 2. 'सुबह के इंतजार में', 3. 'हाँ, चाँद मेरा है'। इन काव्य - संग्रहों के अलावा इन्होंने **'एकलव्य'** जैसी लंबी कविता भी लिखी है। हरिराम मीणा ने आदिवासी जन-समुदायों के सवालों को मिथकीय, ऐतिहासिक और समसामयिक जीवन के दृष्टिकोणों से जोड़कर देखा है। हरिराम मीणा का काव्य और चिंतन में एक सूत्रता का जो बिंदु है वह है- आदिवासी सरोकारों का। इन सरोकारों में आदिवासी स्त्री की छवि को कवि ने यथार्थ के साथ प्रस्तुत करने की कोशिश की है। कवि ने रोमानी और परंपरागत आदिवासी स्त्री की छवि को जीवन के यथार्थ, अभाव, भूख, पीड़ा और उसके उपर पड़ते समकालीन परिस्थितियों के दबाव के परिप्रेक्ष्य में देखने की सार्थक कोशिश की है -

"माँ की कोख से जन्मी
फिर भी जमीन उसकी नहीं थी
माँ-बेटी अजनबी भीड़ में तमाशाई
......
वह बहुत रोयी-गिड़गिड़ाई
'मेरा कोई दोष नहीं।'"[113]

स्त्री के अस्तित्व और उसकी पहचान को कभी भी परंपरागत समाज - व्यवस्था ने नहीं स्वीकारा है। स्त्री का कोई घर नहीं होता यह विचार परंपरागत भारतीय शास्त्रीय ग्रंथों और पितृसत्ता की सोच के विस्तार से समाज व्यवस्था में विकसित हुआ है। इसलिए उसकी कोई जमीन अपनी नहीं है। पुरूष ही अधिसंख्यक समाज व्यवस्थाओं में आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक निर्णयों का अधिकारी बना हुआ है। स्त्री की बेबसी, उसका गिड़गिड़ाना भी पुरूष को रास नहीं आता। स्त्री के इस अधिकारहीन स्वरूप को कवि ने

[113] सुबह के इंतजार में, पृ सं 27

बड़ी संजीदगी से व्यक्त किया है। अधिसंख्यक भीड़ तमाशाई रूप में माँ-बेटी की बेबशी का मजा लूटती है।

"उसे सपने आते हैं-पाँच वर्ष पूर्व के।
कई बार सदमें में बेहोश हो जाती है
....
जब होश आता है तो रहती है चुपचाप
और जब बेहोश होती है
तो-
भागती है टापुई जंगलों में... ।"[114]

उपरोक्त पंक्तियों के माध्यम से हमें आदिवासी स्त्रियों की मनोदशा एवं जीवन स्थिति की जानकारी प्राप्त होती है। इस कविता में घुमक्कड़ जारवा स्त्री का यथार्थ चित्रण रचनाकार ने हमारे सामने रखा है। एक जारवा स्त्री अपने समूह से कटने के बाद किस तरह के स्वप्न देखती है ? वह जो सपना देख रही है उसमें भी भय भरा हुआ है। उसका अस्तित्व मिट गया। उसकी टोली दूर चली गई। अपना कहने के लिए उसके पास कुछ भी बचा ही नहीं। आदिवासी स्त्री को समाज में बहुत सारी समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। गरीबी की वजह से इनका शारीरिक शोषण हो रहा है। सामान्य रूप से देखा जाय तो स्त्रियाँ बाहर अपने टापुओं से कम निकलती हैं। आदिवासी स्त्रियों को तो अपने परिवार को संभालने के लिए अपने घर से, समाज से बाहर निकलना पड़ता है। आदिवासी स्त्रियाँ कहीं अकेली दिखाई दी है तो बाहर के लोग उनके ऊपर चीता की तरह टूट पड़ते हैं। वे गरीबी की वजह से गलियों की गंदगी को साफ करती हैं तो वहाँ के भी कुत्ते घूर-घूर के पीछा करते हैं। जब एक स्त्री अपने ऊपर हुए शोषण के बारे में याद करती है तो वह कांपने लगती है। इसी से यह जानकारी होती है कि उसे किस तरह की कठिनाइयों का सामना करना पड़ा होगा ? आदिवासी स्त्रियों को दयनीय स्थिति में जीवन जीना पड़ रहा है। वह माँ तो बनती है लेकिन उस बच्चे के पिता का नाम कह पाने में अपने को अक्षम पाती है। इस कविता का मूल भाव है जिसने अनैतिक, अनचाहा

[114] सुबह के इंतजार में, पृ सं 28-29

जिंदगी का भार उठाया वही सबसे बड़ी गलती है । वाद-विवाद होने के बाद टापू से वह बेदखल कर दी जाती है । जंगल के साथ आदिवासी महिलाओं का रिश्ता नाभिनालबद्धता का है । जंगल में ही जन्म, जंगल से ही मैत्री बनाने के बाद उसे छोड़कर नहीं जा पाने की कसक या पीड़ा यह मानसिक अंतर्द्वंद्व उसे हमेशा खाये जाता है । आदिवासी स्त्री को मजबूरन अगर जाना भी पड़ेगा तो भी वह मुख्यधारा के समाज में खुश नहीं रह पायेगी । उसने अपने जीवन में जो भोगा है उसे वह बार-बार याद करते हुए अपने जीवन, अपने होने को कोसती है -

"अहा,
क्या कहना कवि
तुम्हारे सौन्दर्य-बोध का
अब इन परिकल्पित-ऊँचाइयों पर
....
पहचानो,
इसकी भाषा और इसके अर्थ को"[115]

हरिराम मीणा की कविता आदिवासियों के साथ-साथ रचनाकारों को भी जगाती है । वे एसी में बैठकर चश्मा पहनकर लिखने वाले काल्पनिक रचनाकारों का विरोध करते हैं । वे अपने जीवनानुभव के आधार पर कहते हैं कि जिन आदिवासी लड़कियों का कल्पनात्मक सौन्दर्य को रचनाकार प्रस्तुत कर रहे हैं उस पर वे सीधा सवाल खड़ा करते हैं। वे ऐसे कवियों की कल्पना, सौन्दर्य की आलोचना करते हुए उन्हें एसी से बाहर निकलकर जिन पर कवि को लिखना है उनके इलाके में प्रवेश और जीवन की वस्तुस्थिति को जानने की बात करते हैं । वे कवियों से अपेक्षा करते हैं कि आदिवासियों के दुःख-दर्द को समझो । उनकी वेदना, जीवन संघर्ष को पहचानो । इसके साथ-साथ श्रम का सौन्दर्य का वर्णन भी करो । आदिवासी - जीवन एवं आदिवासी लड़की के बारे में कविता लिखने से पूर्व अपनी परंपरागत सोच-विचार को बदलना होगा । इस कविता से पता चलता है कि जिन रचनाकारों को आदिवासी के बारे में जानकारी नहीं है वे किस तरह

[115] सुबह के इंतजार में, पृ सं 17-18

आदिवासियों की छवि को गलत नजरिये से प्रस्तुत करते हैं । यहाँ इस तरह की मान्यता भी बनती है कि जो आधिकारिक रूप से, संवेदनात्मक स्तर पर आदिवासी जीवन का चित्रण करेगा वही आदिवासी साहित्य की श्रेणी का हिस्सा बनेगा । यहाँ रचनाकार आदिवासी युवा रचनाकारों को अपने लेखन के माध्यम से आदिवासी जीवन-विधान को समाज के सामने यथार्थपरक प्रस्तुत करने को प्रेरित करता है । सही को मिटाकर झूठ को पहचान बनाने वाले रचनाकारों का यह कविता विरोध करती है । सही और गलत क्या है? इस पर अपना सवाल उठाकर एक चेतावनी देती है -

"यक्षिणी का प्रश्न तो निमित्त था
केंद्र में तो स्त्री-मुक्ति की प्रतिज्ञा
क्यूँ न चाहे देवदासी, अप्सरा, गणिक, महिषी
क्यूँ न जिन पर देवभक्ति, रंगशाला, अलंकरण-
पट्टपदवी के आवरण
....
तैयारी थी भावी योजना की-
विरोध-विद्रोह-संघर्ष-परिवर्तन की"[116]

उपरोक्त कविता के माध्यम से प्राचीन काल में स्त्रियों की जीवन स्थिति के बारे में जान सकते हैं । प्राचीन काल में स्त्रियों के ऊपर अपने परिवारिक दबाव के साथ-साथ सामाजिक दबाव भी रहता था । वह अपने जीवन को स्वतंत्र रूप से नहीं जी पाती थी । परिवार से लेकर बाहरी समाज तक उन्हें बहुत सारी समस्याओं का सामना करना पड़ता था । यहाँ रचनाकार ने सामंती-व्यवस्था के अंतर्गत स्त्रियों की दशा को दर्शाया है । सामंती-व्यवस्था में नव-वधू को प्रथम रात्रि भोग्या-वस्तु के रूप में कुबेर के पास जाना पड़ता था । यह परंपरा नहीं बल्कि उस व्यवस्था की सामंती उपज थी । इस व्यवस्था का हर स्त्री अपने आंतरिक रूप से विरोध तो करती थी लेकिन कुबेर और समाज के दबाव के कारण वह आवाज नहीं उठा पाती थी । कालक्रमेण इस व्यवस्था से मुक्त होने के लिए यक्ष आवाज उठाता है । इस विद्रोह में उसकी पत्नी यक्षिणी भी उसका साथ देती है । यक्ष अपनी पत्नी को प्रथम रात कुबेर के पास भोग हेतु नहीं भेजता है । इसके साथ-साथ

[116] रोया नहीं था यक्ष, पृ सं 35

परंपरागत रूप से चली आ रही इस व्यवस्था की बेड़ियों को तोड़कर वह जनता को मुक्ति दिलाना चाहता है। वह जनता को एक साथ मिलकर विद्रोह करने के लिए उकसाता है। यह सिर्फ यक्षिणी की समस्या नहीं है समाज में रहने वाली सभी स्त्री-समूहों की समस्या है। यक्षिणी स्वयं परंपरागत रूप से चली आ रही बेड़ियों को तोड़कर स्त्रियों को मुक्ति दिलाती है। यक्षिणी सामने खड़ी होकर स्त्रियों में आत्मविश्वास एवं चेतना बढ़ाती है। यक्ष एवं यक्षिणी पात्रों के माध्यम से रचनाकार ने जनता में चेतना का बीज बोया है। जनता की सोच में आए हुए बदलाव के बाद वह उन्हें नया मार्ग अपनाने की ओर अग्रसर करता है -

"फटा घाघरा
तन से लिपटा
तार-तार चोली
....
सुखी लकड़ी
बीन-बीन कर उनको चुनती
तोड़-तोड़ कर गठरी बुनती
उस गठरी को माथे धरती
खट-खट फट-फट
चलती ढोती।"[117]

उपरोक्त पंक्ति से हम भीलणी की दयनीय स्थिति को समझ सकते हैं। न उनको ठीक से रहने को घर है। उनकी प्रस्तुति से ही पता चलता है कि वह बाहरी दुनिया में आने के लिए लाज करती है। परिवार का बोझ उनके कंधों पर है, इसलिए जहाँ तक संभव हो अपनी लज्जा की रक्षा करती हुई आगे बढ़ती है। श्रम करके कुछ-न-कुछ लाये बिना परिवार नहीं चलता। अगर खाने को कुछ न मिलेगा तो बच्चे भूख से तड़पते रहेंगे। इस तरह गरीबी की समस्या से मुक्त होने के लिए भीलणी संघर्ष करती है। अरावली पर्वत के जंगल में प्रवेश करके अपने जीवन का आधार तलाशती है। वह पर्वत पर चढ़ते समय कितनी बार बैठ-बैठके चढ़ती है। उनके पैर में न ठीक से जूते हैं। अपने कार्य हेतु

---

117 हाँ, चाँद मेरा है, पृ सं 15-16

आगे बढ़ती है तो उन्हें भूख, शूल झाड़ और थूर उनकी राह रोकते हैं। भीलणी के मन में एक ही लक्ष्य था, कुछ न कुछ लेकर ही वापस लौटना है। जितनी पीड़ा भी रहने दो रूकती नहीं आगे बढ़कर जंगल में लकड़ी इकट्ठा करके ही वापस लौटती है। अनेक समस्याओं का सामना करके भीलणी आगे बढ़ती है। यहाँ रचनाकार भीलणी को केंद्र बनाकर जनता में चेतना लाता है। वे भीलणी के माध्यम से कहते हैं कि अगर ज़िंदगी में मुक्ति चाहिए तो जितनी भी समस्या आने दो सबको पार करके आगे बढ़ना चाहिए। भीलणी की तरह समस्याओं से डरकर पीछे न मुड़कर आगे बढ़ेंगे तो कोई-न-कोई रास्ता खुलता है। भीलणी अपने जीवन में परिवर्तन हेतु श्रम-संघर्ष के साथ आगे बढ़कर आम जन समूह में चेतना लाती है। दयनीय स्थिति में भीलणी जीवन - संघर्ष में आगे बढ़कर समस्याओं का समाधान तलाशती है। वह जंगल से कुछ-न-कुछ प्राप्त करने का विश्वास नहीं खोती है। परिवार में भील नहीं है तो भी उनका कार्य भी अपने कंधों पर लेकर आगे बढ़ती है।

हरिराम मीणा के काव्यों में चेतना एवं विमर्श सबसे पहले उभरकर सामने आते हैं। उनकी रचना शैली यथार्थ को तलाशती है। उनकी रचना अस्तित्व, हक, न्याय को बचाने की बात करती है। वे अपनी लेखनी के माध्यम से अन्याय, शोषण, कुटिल नीति के विरुद्ध दिमाग से लड़ने को कहते हैं। वे आदिवासियों के अंदर चेतना के बीज बो के नये मोड़ की ओर अग्रसर करते हैं।

चतुर्थ अध्याय

हरिराम मीणा के गद्य-साहित्य में अभिव्यक्त आदिवासी-जीवन

4.1 'धूणी तपे तीर' में चित्रित आदिवासी-जीवन -

'धूणी तपे तीर' में चित्रित आदिवासी-जीवन को निम्नांकित बिंदुओं के अंतर्गत विभाजित करके देखा जा सकता है-

1. आदिवासियों के शोषण का स्वरूप - देशी-कारक और विदेशी-कारक।
2. आदिवासियों में जन-जागरण की चेतना।
3. आदिवासियों का अभिव्यक्त सामाजिक-जीवन।
4. आदिवासियों का अभिव्यक्त सांस्कृतिक-जीवन।
5. आदिवासियों का अभिव्यक्त आर्थिक-जीवन।
6. आदिवासियों का अभिव्यक्त राजनीतिक-जीवन।
7. आदिवासियों के इस विद्रोह का प्रभाव।

'धूणी तपे तीर ' की कथावस्तु में मानगढ़ पर्वत के ऊपर हुए आदिवासी-आंदोलन, उदयपुर, डूँगरपुर, बाँसवाड़ा और कुशलगढ़ में निवास करने वाले आदिवासियों के जीवन, संस्कृति और समस्याओं का यथार्थ चित्रण किया गया है। इस उपन्यास में इतिहास-बोध अधिक दिखाई देता है। इसके साथ-साथ उपन्यास में अधिकतर जागरण की भावना दिखाई देती है। इस उपन्यास का आधार बिंदु मानगढ़ आंदोलन है। जिसे आदिवासी 'जलियाँवाला काण्ड' के नाम से जाना गया। इस मरण-काण्ड में जलियाँवाला काण्ड से दो गुना अधिक स्त्री-पुरूष शहीद हुए थे। इस तरह पहाड़ों के ऊपर हुआ आदिवासी-संघर्ष किसी इतिहासकार या विद्वान के नजर में नहीं आया। इसलिए रचनाकार कहता है कि- 'एक बार आँख खोलकर सच्चे मन से देखिए यथार्थ आपके सामने रहेगा।' उपन्यासकार ने

शोध-कार्य हेतु फिल्ड-कार्य की वजह से पहाड़ों एवं आदिवासी इलाकों में घूमघूम कर वृद्ध लोगों से बातचीत करके कलम चलाई है । इस तरह कड़ी मेहनत से हरिराम मीणा ने अनेक यथार्थ घटनाओं, समस्याओं एवं जीवन-विधान को इस उपन्यास के माध्यम से हमारे सामने रखा है । इस उपन्यास में मरणकाण्ड के साथ-साथ शोषण, अकाल, जीवन-विधान एवं स्त्री-समस्याएँ को प्रस्तुत किया गया है ।

इस उपन्यास का केंद्रीय पात्र 'गुरू गोविंद' है । जो इस कथावस्तु का आधार नायक भी है । इसके साथ-साथ बहुत सारे भगत पात्र हमें दिखाई देते हैं । जैसे-कुरिया दानेता, कलजी, सुरत्या, जोरिया आदि । इन्हीं भगतों के माध्यम से गोविंद गुरू ने 'धूणियों' एवं 'सम्प-सभा' की स्थापना की । जिसका लक्ष्य था- जनता को जागृत करना एवं इसके साथ ही संकट के समय समस्याओं से मुक्त होने का रास्ता दिखाना भी । तत्कालीन समय में आदिवासी समाज में अनेक प्रकार की समस्याएँ दिखाई देती हैं । आदिवासियों का न तो ठीक तरह से जीवन चलता था, ऊपर से बेगार एवं लगान की समस्याएँ अलग । इस तरह के अन्याय का विरोध करने के लिए 'सम्प-सभा' में बातचीत की जाती थी ।

गोविंद गुरू का प्रभाव दक्षिण राजस्थान के आदिवासी-समाज पर अधिक पड़ा था। उनके उपदेशों के प्रभाव से आदिवासियों के व्यवहार एवं जीवन-विधान में बदलाव दिखाई देता है । आदिवासियों के मन में चेतना के बीज गोविंद गुरू ही बोता है । वो कहता है कि- 'बिना पैसा के आप लोग बेगार नहीं करें । लगान का विरोध करें । शराब का भी विरोध करें ।' इस तरह चेतना की भावना आदिवासी इलाकों में फैल गई । इस तरह की चेतना 'धूणी' एवं 'सम्प-सभा' के माध्यम से दी गई । इस तरह चेतना से जुड़े हुए आंदोलन को दबाने के लिए उनकी धूणियों के पास फौजियों ने पहुँचकर गोली चलाई । इस संघर्ष में 1500 से उपर आदिवासी शहीद हुए । उससे ज्यादा घायल हो गए ।

आदिवासियों के ऊपर संकट एवं समस्याएँ थोपने वाले लोगों को हम दो वर्गों में देख सकते हैं। जो इस प्रकार हैं- (1) देशी कारक और (2) विदेशी कारक। .

4.1.1 देशी-कारकों द्वारा आदिवासियों का शोषण -

देशी कारक के अंतर्गत बहुत सारे वर्ग शामिल होते हैं। जैसे- जागीरदार, राजा, ठाकुर, मुखिया एवं महारावल आदि। ये लोग आदिवासी इलाकों की जमीन को अपने कब्जे में रखकर उनका प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से शोषण करते थे। दूसरे जगह से यहाँ आए, आदिवासियों के ऊपर अपनी संस्कृति को थोपकर उनकी सभ्यता एवं संस्कृति को इन्होंने नष्ट कर दिया। इन लोगों ने आदिवासियों की जमीनों को छीनकर इनको भूमिहीन बना दिया।

4.1.1.1 जागीरदार -

यह वर्ग आदिवासी व गरीब परिवारों को अपने प्रभुत्व में रखकर उसका शोषण करता था। इस तरह का शोषण परम्परा के अंतर्गत शामिल रहा है। जागीरदार उनकी कमजोरियों की वजह से पीढ़ी-दर-पीढ़ी उनके श्रम का दोहन करता रहता था। अगर कोई जरूरत के समय काम में नहीं आया तो उसे अलग सजा दी जाती थी। आदिवासी कभी संकट के समय में कर्ज के रूप में कुछ धन लेता था तो इस तरह लिया हुआ धन कर्ज से दुगुना हो जाता था। इसलिए लिया हुआ धन वापस नहीं लौटाता था। इसकी वजह से वे अपनी खेती एवं जीविका की सामग्री को खो देते थे।

इस उपन्यास में लेखक ने सोदान पात्र के माध्यम से आदिवासियों के शोषण का वर्णन किया है। आदिवासी को अपना काम छोड़कर भी बेगार करनी पड़ती थी। जैसे- “ठंड लग रही है। थोड़ी-सी दारू पिला दे भाई रामा, नहीं तो सर्दी से बीमार हो जाऊँगा और ठाकुर की बेगार पर नहीं जा पाऊंगा और ऐसा हुआ तो कोड़ों की मार पड़ेगी या दो दिन ज्यादा बेगार करनी पड़ेगी वह अलग सजा।”[118] उपरोक्त कथन से पता चलता है कि

[118] धूणी तपे तीर,पृ सं 41

आदिवासियों को बुरे समय में कोई सहयोग करने वाला नहीं था। और ऊपर से बेगार करवाते थे। ठाकुरों की बेगार पुरखों से चली आ रही थी। अपना काम छोड़कर, आदिवासियों से बेगार करवाना रचनाकार कदापि उचित नहीं मानते हैं। इस तरह परिश्रमी वर्ग का शोषण हमें आदिवासी इलाकों में दिखाई देता है। यहाँ पर सोचने की बात यह है कि आदिवासी समुदायों को तो बेगार करना पड़ रहा है वे पुरखों से इस परंपरा को अपनाते आ रहे हैं। आदिवासियों को बेगार के साथ-साथ मार भी खानी पड़ती है। इससे पता चलता है कि आदिवासी समुदाय ने किस तरह का दयनीय जीवन जीया है। इस तरह के बेगार की परंपरा का उपन्यासकार हरिराम मीणा विरोध करते हैं।

4.1.1.2 राजा -

राजाओं ने भी आदिवासियों को बहुत कष्ट पहुँचाए। दूसरे प्रांत से आदिवासी इलाकों में आकर, उनकी जमीन पर कब्ज़ा कर लिया। कालान्तर में ये भी ब्रिटिश सरकार के आदेश के अनुसार पालन करने लगे। वे ठाकुर, जागीदार एवं मुखिया को अपने हाथ में रखकर पालन कराते थे। राज्य का राजा ही जनता को संकट देगा तो वह और किससे पूछेगा ? इसलिए ये लोग अन्याय एवं नये कानून का विरोध करने लगे। इन लोगों के मन में भगतों की वजह से जागृति का भाव पैदा हुआ। राजाओं की वजह से आदिवासी पर बेगार एवं लगान की समस्या का भार पड़ गया।

शासक-वर्ग यानी अंग्रेज सरकार की अधीनता में रहकर शासन करने वाले राजाओं ने अपनी आय (अर्थ-व्यवस्था) की वृद्धि करने के लिए तरह-तरह की योजनाएँ बनायी थीं। जहाँ प्राकृतिक-संपदा थी वहाँ पर अनेक प्रकार के प्रतिबंध लगाये गये। जंगलों में आदिवासियों के प्रवेश व उत्पाद पर ग्रहण की पाबंदी लगाई गईं। जैसे- “इन दिनों राज के आदमी हमारे खेतों की नपाई कर रहे हैं। मुझे यह खबर मिली है कि खेती पर लगान बढ़ाया जायेगा, इस लिए खेतों की नापजोग की जा रही है। खेत हमारे पुश्तैनी हैं या हम झाड़-झंखाड़ साफ करके खेती के लायक जमीन तैयार करते हैं। अव्वल बात तो यह है कि खेत हमारे हैं, उन पर किस बात का लगान ? दूसरे, यह कि चलो राज लगान लेता आया

है और कभी संकट में हमारी खोज खबर लेगा, पर लगान में बढ़ोतरी करने का क्या मतलब ?"[119]

उपरोक्त उद्धरण से यह पता चलता है कि- आदिवासियों से अधिक लगान वसूल करके उन समुदायों को कमजोर किया गया है । आदिवासी समुदायों का पुश्तैनी जंगल एवं जमीन पर लगान की वजह से उन समुदायों का शोषण हुआ । आदिवासियों की जमीन की नपाई करने के बाद लगान बढ़ाना अनुचित था । आदिवासी जब संकट में रहते थे तो कोई खबर नहीं लेते थे । पैसा कमाने के लिए आदिवासियों की जमीन चाहिए । इस तरह आदिवासी जमीन पर बढ़ाने वाले लगान का विरोध उपन्यासकार गोविंद गुरू पात्र के माध्यम से करते हैं । आदिवासियों के श्रम का फल और कोई भोग रहे हैं । आखिर में श्रम करने वाले आदिवासी के पास कुछ बचता ही नहीं है । इस तरह लगान के नाम पर किये जाने वाले शोषण का विरोध करने की आवश्यकता है । गोविंद गुरू आदिवासियों को संबोधित करते हैं कि लगान का विरोध एकजुट होकर, एक ही स्वर में, करने की आवश्यकता है ।

4.1.1.3 ठाकुर -

यह वर्ग, राजा एवं आदिवासी के बीच में कार्य करता था । ठाकुर राजकार्य में अपनी ओर से सलाह भी देता था । राजाओं के आदेश के अनुसार आदिवासी इलाकों में नये-नये कानून बनाकर उनका शोषण करते थे । इस उपन्यास में इस तरह का वर्णन ठाकुर पृथ्वीसिंह जैसे पात्र के माध्यम से रचनाकार ने हमारे सामने रखा है । आदिवासियों के कमजोरियों को समझकर, ठाकुर नये-नये कानून बनाते हैं । आदिवासियों को दबाने के लिए ठाकुर पृथ्वीसिंह एक नया रास्ता दिखाता है । उनके मन में विचार पैदा हुआ कि आदिवासियों की जंगल की जमीन को कैसे बाँटा जाए ? इस तरह जमीन बाँटने की वजह से उन लोगों को भी धन मिलता इसके साथ ऊपर से यश प्राप्त होता है । वह किसी भी हालत में आदिवासी लोग गोविंद गुरू की चक्कर में नहीं जाने चाहिए, इसके

[119] धूणी तपे तीर,पृ सं 44-45

लिए प्रयत्नशील रहा । जैसे- "जंगल साफ करके जो जमीन खेती के लिए निकलेगी, चलो उस पर तो आदिवासी फसल उगायेंगे, लेकिन पेड़ों की कटाई से जो लकड़ी इकट्ठा होगी वह तो जागीरदार के हक की हुई ना ।....... जंगल कटाई के लिए आप लोग जो मेहनत करोगे, उसका फल एक फसल की पैदावार के रूप में तुम आदिवासियों को मिलेगा । ठेके पर लकड़ी दी जायेगी । ठेकेदार भी दो पैसे कमायेगा । तो इससे सभी को फायदा है फिर किसी के मन में चाहे वह ठाकुर साहब ही हों, और कोई बात क्यों आयेगी ?"[120]

उपरोक्त उद्धरण से पता चलता है कि श्रम करने वाले तो आदिवासी हैं, लेकिन उसका फल भोगने वाला ठाकुर है । आदिवासी बहुत मेहनत करके जंगल की कटाई करके फसल बोते हैं । यहाँ पर सोचने की बात यह है कि जंगल कटाई में पेड़ों की कटाई की वजह से बहुत सारी लकड़ी इकट्ठा होती है । इस तरह इकट्ठा हुई लकड़ी को ठाकुर अपने कब्जे में ले लेता है । उस जंगली लकड़ियों पर आदिवासियों का हक नहीं है । जिन लोगों ने लकड़ी की कटाई की, उन्हीं लोगों का हक लकड़ियों पर नहीं है । इस तरह के अन्याय का गोविंद गुरू पात्र के माध्यम से उपन्यासकार विरोध करते हैं । इसके साथ-साथ आदिवासियों द्वारा बोये जाने वाली फसल कभी-कभी अकाल, अतिवृष्टि के कारण हाथ में भी नहीं आती है । लेकिन उनके श्रम की लकड़ियों के पैसे आदिवासियों को मिलना ही उचित है । इतना श्रम करके लकड़ी इकट्ठा करें तो उसका फायदा ठाकुर एवं ठेकेदार को मिलना कदापि मान्य नहीं है ।

इस वर्ग में दूसरा पात्र, ठाकुर दलपतसिंह है । वह भी अंग्रेज सरकार के आदेश के अनुसार चलता है । अंग्रेज सरकार ने दलपतसिंह को शिकारगाह का काम सौंप दिया । यह काम आदिवासियों से बिना मजदूरी के बेगार कराना ही था । आदिवासियों को अपनी खेती-बाड़ी के काम को छोड़कर इस काम में शामिल होना पड़ा । ठाकुर आदिवासी समुदायों के बीच खड़े होकर आदेश देता है कि कल से सब लोग बेगार में शामिल होंगे । आदिवासी समुदायों के सामने तो अपनी खेती-बाड़ी का काम भी दिख रहा था तो भी

[120] धूणी तपे तीर,पृ सं 279-280

उनसे जबरदस्त बेगार करवायी गयी । जैसे- “माई-बाप, फसल की कटाई का काम सर पर है । पहले लोग यह काम पूरा कर लें जो पंद्रह दिन में हो जायेगा । उसके बाद बेगार करवाई जाय तो थोड़ी सहूलियत रहेगी अन्यथा राज का हुकुम तो बजाना ही है । देख भाई मुखिया, अब दरबार ने आदेश दिया है तो मुझे तो उसे पूरा करना ही है । महारावल चाहते हैं कि चैत के महीने में शिकारगाह और मोर्चे बन जायं ताकि बैसाख में शिकार का कार्यक्रम सम्भव हो सके ।”[121]

उपरोक्त उद्धरण से ज्ञात होता है कि- शासक वर्गों की शिकार गाह के लिए आदिवासी समुदायों को शिकार होना पड़ा । मुखिया भी शासक वर्ग के दबाव में रहकर इसका विरोध नहीं करता है । आदिवासी समुदायों के लोगों को दुःखद परिस्थितियों में भी बेगार करनी पड़ रही थी । इस तरह के शोषण हमें आदिवासी इलाकों में आज भी दिखाई देते हैं । अपना पेट भराई का काम छोड़कर, बिना पैसों के काम करना, ऊपर से गालियाँ भी सुनने को मजबूर हैं । जरूरी काम को छोड़कर, विलास, शिकारगाह का काम एवं रास्ता बनाना, जंगल साफ करना इस तरह शोषण एवं अन्याय को धीरे-धीरे आदिवासी समझने लगे । इस तरह के कार्यों का विरोध करने लगे । इसी के साथ अन्याय के विरूद्ध आंदोलन एवं संघर्ष उत्पन्न हुए हैं ।

अंग्रेज शासन काल में आदिवासियों को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा था । आदिवासियों की आवास भूमि के नीचे खनिज संपदा को लूटने के लिए आदिवासियों को विस्थापित किया गया है । जंगलों में प्रवेश पर पाबंदी लगा दी गई । आदिवासियों से कई प्रकार के कर वसूल किये गये । आदिवासियों की जमीन को छीन लिया गया । इस तरह के अन्याय के विरोध में आदिवासी गोविंद गुरू के नेतृत्व में आंदोलन करने लगे । आदिवासी-आंदोलन को दबाना आसान नहीं था । इसलिए आदिवासी आंदोलन को दबाने के लिए अंग्रेज, राजा, ठाकुर, जागीरदार सब लोगों ने मिलकर, षड्यंत्र रचकर

---

[121] धूणी तपे तीर,पृ सं 63

आदिवासियों को हराया था । जैसे-"अंग्रेज ठिकानेदारों की मदद से वनभूमि-वनोपज आदि पर उनके प्राकृतिक और परम्परागत अधिकारों से उन्हें वंचित करने लगे थे । एक तरफ उनका सामंती शोषण चल रहा था, ठिकानेदार उन्हें सताते थे, जबरन वसूली करते थे, उनसे बेगार लेते थे और उनसे गुलामों जैसा सलूक किया जाता था । दूसरी तरफ वे उपनिवेशवादी शोषण से और त्रस्त किए गए । इन अत्याचारों के विरोध में हकों की माँग को राज-विरोध माना गया और उसे कुचलने के लिए विदेशी शासन ने देशी शासकों को पूरी फौजी मदद दी ।"[122]

इस देश में सर्वप्रथम अंग्रेज-सरकार के विरोध में खड़े होने वाले तो आदिवासी ही थे । इसलिए वे आदिवासी समुदायों को कुचलना चाहते थे । अंग्रेजी सरकार ने ठाकुर, राजा, देशी शासकों को पूरी फौजी मदद की थी । अंग्रेज सरकार का एक ही लक्ष्य था कि आदिवासी आंदोलन को दबाना है । देशी शासक वर्ग तो अंग्रेज सरकार के अधिन होकर ही काम करते थे । लेकिन आदिवासी समुदायों के लोग तो अंग्रेजों की सुनते ही नहीं थे । आदिवासी अपना स्वतंत्र जीवन जीते थे । इसलिए वे समुदाय किसी के शासन को स्वीकारते ही नहीं थे ।

इस तरह राजा, ठाकुर को अंग्रेजी सरकार अपने हाथों में रखकर राज्य का शासन चला रहे थे । अंग्रेजी सरकार जिस तरह आदेश देती उसी तरह ये लोग कार्य करते थे । आदिवासियों की खेती के ऊपर लगान लगाना, बिना मजदूरी से बेगार करवाना, जंगल में उनके प्रवेश को रोकना आदि इस तरह की अनेक समस्याएँ उनके ऊपर थोपी गईं । अकाल एवं संकट के समय में भी इन लोगों से काम करवाते और इसके साथ लगान वसूल करते । अतः इस तरह के अन्याय से मुक्त होने के लिए आदिवासी अपना प्रदेश छोड़कर दूसरे प्रदेश की ओर पलायन करने लगे ।

[122] मधुमती,दिसम्बर 2010- पृ सं 17

4.1.2 विदेशी-कारकों द्वारा आदिवासियों का शोषण -

इस के अंतर्गत वे अंग्रेज हैं जो दूसरे देश से व्यापार के नाम पर हमारे देश में आकर हमें ही गुलाम बनाकर रहे । जहाँ आदिवासी रहते हैं वहाँ खनिज खूब मिलता है । इसलिए उसे लूटने के लिए ब्रिटिश सरकार की नज़र आदिवासी इलाकों के ऊपर पड़ी । अंग्रेजों के आगमन की वजह से आदिवासियों की संस्कृति एवं सभ्यता के ऊपर असर पड़ा। इनकी संस्कृति के ऊपर ब्रिटिश सरकार ने अपनी संस्कृति को थोपने का प्रयास भी किया । जिनकी वजह से आदिवासी समाज में अनेक समस्याएँ उत्पन्न हुईं हैं । अंग्रेज ने जब भारत में प्रवेश किया, तभी से धीरे-धीरे राजाओं, ठाकुरों, जागीरदारों एवं मुखियाओं को अपने हाथ में ले लिया । वे इन लोगों के माध्यम से अपना साम्राज्य विस्तार एवं अर्थ-व्यवस्था को समृद्ध करने लगे । आदिवासियों पर एक ओर से राजाओं, जमींदारों एवं मुखियाओं तो दूसरी ओर से अंग्रेज सरकार अत्याचार कर रही थीं । इस तरह देशीय सत्ताओं एवं ब्रिटिश सरकार से अनेक समस्याओं का सामना आदिवासियों को करना पड़ा। जैसे- आदिवासी के खेती-बाड़ी के ऊपर लगान का भार, बिना मजदूरी से बेगार करवाना, जंगल में प्रवेश को रोकना । लकड़ी के ऊपर, फल के ऊपर, कर का भार और इसके साथ-साथ उनकी जमीन को उन से छीन लेना इत्यादि । अन्त में आदिवासी भूमिहीन होकर इधर-उधर बेगार के लिए घूमने लगे । उन्हें अपना पेट भरने के लिए एक प्रांत से दूसरे प्रांत की ओर पलायन करना पड़ा ।

कोई आदिवासी अन्याय एवं शोषण के विरूद्ध बात करता था तो उस के ऊपर गलत आरोप लगाकर सजा दी जाती थी । अगर कोई आदिवासी सरकार के विरूद्ध अपने हक के लिए बात करता था तो उसके ऊपर राजद्रोह का आरोप लगाकर उसे फाँसी दी जाती थी । इस तरह सरकार भयभीत करके आदिवासियों के ऊपर दबाव डालती है । किसी आदिवासी इलाके में सरकार के विरूद्ध आंदोलन होता था तो उसे दबाने के लिए

नये-नये कानून बनाये जाते थे । उन्हें कोई कार्य करने का आदेश देकर अथवा उन लोगों को ललचाकर आंदोलन को कमजोर या शांत किया जाता था ।

विवेच्य उपन्यास में ब्रिटिश सरकार की कूटनीति, अत्याचार एवं शोषण के विरूद्ध लड़ना, आदिवासियों को आंदोलन की ओर अग्रसर करना या उनके मन में जागृति पैदा करने के लिए भगत आगे रहते हैं । इस तरह के शोषण का विरोध करने वाले भगतों को फाँसी दे दी जाती थी । जैसे- जोरिया, धर्माभाई भगत । इस तरह से फाँसी देने से विद्रोह कमजोर होगा । डर की वजह से आंदोलन आगे नहीं बढ़ेगा । इस कूटनीति को ब्रिटिश सरकार के माध्यम से उपन्यासकार ने हमारे सामने रखा । ब्रिटिश सरकार का जो भी कार्य या संघर्ष होता था वह राजाओं एवं ठाकुरों की सहायता से ही होता था । राजा एवं ठाकुर विभूषित एवं धन की लालच में कुछ भी खोने को तैयार रहते थे । इसलिए ब्रिटिश सरकार ने इन लोगों को आधार बनाकर अधिक समय तक अपना शासन सुरक्षित ढंग से चलाया ।

ब्रिटिश सरकार भविष्य को दृष्टि में रखकर अपना काम करती थी । अंग्रेज सरकार का एक ही लक्ष्य रहा है कि- किसी भी तरह से आर्थिक आय में वृद्धि करना है । आर्थिक-व्यवस्था को मजबूत करने के लिए अंग्रेज सरकार ने कई प्रकार की योजनाएँ अपनाईं । कई प्रकार के कर, लगान सामान्य जनता से वसूल किये गये । जैसे- "ब्रिटिश सरकार नये-नये कानून-कायदे बनाकर अपने हस्तक्षेप की रणनीति तैयार किए जा रही थी ताकि देसी रियासतों में उनकी दखलंदाजी मजबूत होती चली जाय । व्यापार व फौज के विस्तार के लिए विभिन्न स्रोतों से अर्जित की जाने वाली आर्थिक आय उनका प्रमुख लक्ष्य था । वनोपज पर पाबंदी, बंदोबस्त व कृषि-कर में वृद्धि, आबकारी नीति, वागड़ अंचल से गुजरने वाले व्यापारिक मार्ग, नमक के स्वतंत्र उत्पाद व व्यापार पर नियंत्रण आदि ऐसे मामले थे जिनका आदिवासीजन विरोध किए जा रहे थे । इसकी खास वजह थी कि

आदिवासियों का भौतिक आधार खिसकता जा रहा था। दूसरे, उनकी स्वायत्तता पर यह आघात था जिसे वे बर्दाश्त नहीं कर सकते थे।"[123]

उपरोक्त कथन से पता चलता है कि अंग्रेज सरकार ने अपनी दूर-दृष्टि अपनाकर हरेक क्षेत्र एवं शासक वर्ग को अपने हस्तक्षेप में ले लिया था। देशी राजाओं के अधिकार संकुचित होने लगे। आदिवासियों के हाथ में पैसा नहीं था तो भी लगान वसूल करने लगे। फसल हाथ में नहीं आयी तो भी 'कर' देना पड़ा। इस तरह के अन्याय के विरोध में गोविंद गुरू के नेतृत्व में आदिवासी आवाज उठाने लगे। अंग्रेज सरकार जो कहती थी उसका पालन देशी शासक वर्ग करते थे। इस तरह आदिवासियों के ऊपर थोपे गए पाबंदियों के विरूद्ध अनेक आंदोलन चलाए गए। इन आंदोलनों को दबाने के लिए ब्रिटिश सरकार ने फौजों का इस्तेमाल किया। ब्रिटिश सरकार के कानून के वजह से आदिवासी अपनी संस्कृति एवं अस्तित्व की पहचान को खो बैठे। वर्तमान समाज में इनके अस्तित्व की पहचान का प्रश्न उभर कर सामने आया। इस तरह अंग्रेज सरकार ने राजनीति के द्वारा अपना राज्य- विस्तार एवं अर्थ-विस्तार किया। अंग्रेजों ने देश की अर्थ व्यवस्था को चूसकर उसे कमजोर बना दिया था।

ब्रिटिश सरकार के शोषण, अन्याय एवं अत्याचार के विरूद्ध आदिवासी लगातार आंदोलन चला रहे थे। इन आंदोलनों को दबाने के लिए सरकार फौजें भेजती रही। कभी-कभी वार्तालाप ही संघर्ष का रूप ले लेता था। इन संघर्षों में बहुत सारे आदिवासी शहीद होते थे। जैसे- "जोरिया के नेतृत्व में उभरने वाले आदिवासी विद्रोह को दबाने के लिए जो भी फौजी कार्यवाही होती उसका केन्द्र था राजगढ़ पुलिस थाना। जोरिया के नेतृत्व में आदिवासियों ने फैसला किया कि क्यों न राजगढ़ थाने पर धावा बोला जाय और एक दिन थाना के सामने हजारों आदिवासियों की भीड़ जमा हो गयी। थाना के दरवाजे पर

[123] धूणी तपे तीर,पृ सं 47-48

खड़े वर्दीधारी एक पुलिस वाले ने आदिवासियों के अगुवा नेताओं से पूछा, आखिर ऐसी कौनसी सी ताकत है जोरिया में, जो तुम सब लोग उसके पीछे हो ?”[124]

आदिवासियों पर गुरूओं का प्रभाव और आदिवासी समुदायों में भगत गुरूओं की मान्यता का विशेष महत्व है । आदिवासियों के अंदर चेतना फैलाने में गुरूओं की महत्वपूर्ण भूमिका रही है । इसके साथ-साथ पुलिस थाना में आदिवासी गुरू की बेइज्जती पुलिस कर रही थी तो एक आदिवासी उस पुलिस वाले का सर काट देता है । जैसे- “जोरिया भी वहीं आगे खड़ा था । मगर वह पुलिस अफसर उसे नहीं पहचानता था । जोरिया तो कुछ नहीं बोला लेकिन एक अन्य आदिवासी नायक गललिया ने आव देखा ने ताव और अपनी तलवार से उस पुलिस वाले की गर्दन काट दी । थाने के अन्य अफसरों व उनके सिपाहियों को जैसे ही यह पता लगा, वे सब इधर-उधर के रास्तों से छिपकर भाग लिये ।”[125]

उपरोक्त कथन से पता चलता है कि आदिवासी-गुरूओं को कोई अपमान किये तो आदिवासी-समुदाय के लोग सह नहीं पाते थे । आदिवासी समुदायों के हितों के लिए जोरिया भगत काम करता था । आदिवासी समुदायों में जोरिया भगत एवं रूपा जैसे लोग चेतना फैलाते हैं । आदिवासी एवं भगत गुरूओं के मध्य एक अटूट रिश्ता होता है ।

आगे चलकर पुलिस की हत्या के बाद आंदोलन और ज़ोर पकड़ने लगा । आदिवासियों को हराना अंग्रेज ने एक चुनौती के रूप में लिया । अंग्रेज सरकार ने अधिक संख्या में सेना लेकर आदिवासियों का पीछा किया था । अंग्रेजों एवं आदिवासियों की लड़ाई में हज़ारों आदिवासी शहीद हुए । जैसे- “यह समाचार अंग्रेज सरकार के पास पहुंचा तो सरकार तिलमिला गयी और विद्रोह को कुचलने के लिए हथियारबन्द फौज भेजी गयी । .... जोरिया ने अपने साथियों को बड़ेक गांव की ओर लौटने का आदेश

---

[124] धूणी तपे तीर, पृ सं 127

[125] धूणी तपे तीर, पृ सं 127

दिया । अंग्रेज सैनिकों ने उनका पीछा किया । पीछे हटते आदिवासी अंग्रेज फौजों का मुकाबला भी करते जा रहे थे और किसी सुरक्षित वन-पर्वती स्थल की खोज में भी थे। वे एक ऐसे स्थान पर पहुंच गये जहां पानी भरा हुआ था। आदिवासी इस विकट स्थिति में फंस गये और उन्हें अंग्रेज सैनिकों ने घेर लिया । इस अवसर का लाभ उठाकर आदिवासियों पर अंधाधुंध गोलियां बरसाई गयी । सैकड़ों आदिवासी मारे गये । कुछ जंगल में इधर उधर भाग निकले ।"[126] उपरोक्त उद्धरण से पता चलता है कि अंग्रेज सेना ने आदिवासियों का पीछा करके उन समुदायों को गोलियों से भून डाला। एक ऐसी जगह आदिवासी फंस गये थे जहाँ पर रास्ता पानी से भरा हुआ था। अंग्रेजों ने अमानवीय ढंग से गोलियाँ खत्म होने तक आदिवासियों पर बरसायी थीं । इस घटना में हजारों आदिवासी शहीद हुए थे। आदिवासियों ने अपनी जान बचाने के लिए प्रयास तो किया लेकिन बच नहीं पाये। अंग्रेजों की बंदूकों के सामने आदिवासियों के धनुष-बाण टिक नहीं पाये। आदिवासियों के पारंपरिक-हथियारों की वजह से उन समुदायों को कई बार हारना पड़ा। कई आदिवासी वीरों को गोलियों से मार दिया गया। इसके साथ-साथ आदिवासी समुदायों को नेतृत्व करने वालों को गिरफ्तार करके आंदोलन को कुचल दिया गया । आखिर में छल से, जोरिया, रूपा एवं गललिया को अंग्रेजों ने अपनी रणनीति का इस्तेमाल करके, उन तीनों को गिरफ्तार कर, राजद्रोह का आरोप लगाकर फाँसी दे दी।

4.1.3 आदिवासियों में जन-जागरण की चेतना -

इस उपन्यास में अधिकांश जागृति की भावना दिखाई देती है । उपन्यासकार ने गोविंद गुरू जैसे पात्र के माध्यम से जागरण का आंदोलन चलाया है । गोविंद गुरू ने आदिवासियों को अपने संदेश के माध्यम से जागृत किया था । गोविंद गुरू ने 'धूणी' एवं 'सम्प-सभा' को केंद्र में रखकर इस जागरण को आदिवासियों के बीच विकसित किया था। गोविंद गुरू अहिंसा को मानते थे । इनके ऊपर स्वामी दयानंद सरस्वती का प्रभाव स्पष्टतः दिखाई देता है। इस संबंध में डॉ. सच्चिदानन्द चतुर्वेदी ने उचित ही लिखा है कि-

[126] धूणी तपे तीर,पृ सं 127-128

“धूणी तपे तीर के नायक गोविंद गुरू है, इतिहास उन्हें गोविंद गिरी नाम से जानता है। जिन्होंने मानगढ़ आदिवासी विद्रोह का नेतृत्व किया था। गोविंद गुरू का व्यक्तित्व महर्षि दयानंद से मिलता जुलता है। वे भी दयानंद की भाँति एक समाज सुधारक थे। उपन्यास पढ़ते समय पाठक के मन में यह बात बराबर बनती रहती है कि वह प्रकारांतर से ‘सम्प-सभा’ और ‘धूणी स्थल’ के रूप में ‘आर्यसमाज’ और ‘यज्ञशाला’ के बारे में पढ़ रहा है। दोनों समाज सुधारकों की समानता अकारण नहीं है। ...... ‘आर्यसमाज’ की स्थापना 1875 में हुई और ‘सम्प-सभा’ की 1880 के आसपास। आर्यसमाज के प्रभाव से यज्ञ शालाएँ निर्मित की गई थी जहाँ नियमित यज्ञ संपादित होते थे। गोविंद गुरू ने धूणी स्थलों की स्थापना की थी जहाँ आदिवासी स्त्री-पुरूष नियमित रूप से एकत्र हो गोविंद गुरू के प्रवचन सुनते थे।”[127]

उपरोक्त उद्धरण से पता चलता है कि गोविंद गुरू के ऊपर स्वामी दयानंद सरस्वती का प्रभाव था। दयानंद एवं गोविंद गुरू के बहुत सारे कार्यों में समानताएँ दिखाई देती हैं। दोनों अहिंसा के मार्ग पर चलते थे। दयानंद ने आर्यसमाज एवं यज्ञशाला के माध्यम से अपने कार्य को आगे बढ़ाया। उसी तरह गोविंद गुरू ‘संपसभा’ एवं ‘धूणी’ के माध्यम से अपना कार्य को आगे बढ़ाते थे। उम्र के हिसाब से, राज्यों के हिसाब से भी देखा जाय तो गोविंद गुरू पर स्वामी दयानंद सरस्वती का प्रभाव दिखाई पड़ता है। यहाँ पर सोचने की बात यह है कि- धूणी स्थलों में स्त्री-पुरूषों को समान रूप से जगह मिली थी।

अतिवृष्टि के कारण फसल आदिवासियों के हाथों में नहीं आई थी। आदिवासी को क्या करना ? किस तरह जीना ? कैसे जिंदगी चलेगी ? उन समुदायों को कुछ समझ में नहीं आ रहा था। मिट्टी में मिली हुई फसल को देखकर माथा पकड़कर रोने लगे। इन स्थितियों में आदिवासी बेहोश होकर बैठे थे। इस तरह की कठिन परिस्थितियों में गोविंद गुरू ने दूसरा रास्ता दिखाया था। गोविंद गुरू बार-बार आदिवासियों से कहते हैं कि

---

[127] हंस, अप्रैल 2010, पृ सं 56

मेहनत से पेट भरना सीखो, दूसरों पर कभी निर्भर नहीं रहना है । इसके साथ-साथ बुरे समय में अपना धैर्य नहीं खोना चाहिए । जीवन चलाने के लिए कोई दूसरा रास्ता खोजने की आवश्यकता है । फसल हाथ में नहीं आया तो जंगलों में से बहुत सारी चीजें आप लोग इकट्ठा करके सीधा हाट में बेचिए । आप लोगों को ज्यादा पैसे मिलेंगे । आप लोग अपना माल, बनिया को नहीं बेचना, आदिवासियों का शोषण बनिया करता है । इसलिए उससे बचने की बात गोविंद गुरू के माध्यम से उपन्यासकार कर रहे हैं । तुलसी दास के प्रवचनों के माध्यम से जनता में चेतना फैलाते हैं । भगवान पर विश्वास रखने की बात गोविंद गुरू करते हैं । ईमानदारी से अपना काम करना, सही मार्ग पर चलना और अन्याय का विरोध करना । सभा की बैठक में हरेक विषय की जानकारी गोविंद गुरू आदिवासियों को देता था । शिक्षा का महत्व, नशा से दूर रहना, लगान का विरोध करना, बेगार न करना इस तरह अनेक समस्याओं से मुक्त होने का रास्ता भगतों ने दिखाया । जीने का रास्ता एवं शोषण का विरोध इस तरह अपने संदेश के माध्यम से आदिवासियों को भगतों ने जागृत किया । भगतों के प्रवचनों, उपदेशों के माध्यम से अन्याय एवं शोषण को आदिवासी भी पहचानने लगे । इन लोगों के पास एक ही कमी है- शिक्षा का अभाव । अशिक्षा की वजह से क्या सही, क्या गलत, समझने की क्षमता इन लोगों के पास कम दिखाई देती थी । इसलिए वे शिक्षा प्राप्ति पर जोर देते हैं ।

4.1.4 सामाजिक-जीवन -

मनुष्य अपने समाज में रहकर जीवन बिताता है । समाज से उसका संबंध जुड़ा रहता है । हर समाज में मनुष्य की अपनी स्वतंत्रता एवं हक होता है । लेकिन आदिवासी समाज, सभ्य समाज से अलग दिखाई देता है । उनकी भाषा, रीति-रिवाज, वेश-भूषा अलग दिखाई देती है । यह उपन्यास अंग्रेजी शासन काल के सामाजिक व्यवस्था को आधार बनाकर लिखा गया है । ब्रिटिश आगमन से पूर्व आदिवासी समाज ने स्वतंत्रतापूर्वक जीवन जीया । ये जंगल एवं प्रकृति के साथ मातृसत्तात्मक संबंध से जुड़े हैं। विदेशी ब्रिटिश के भारत में आगमन के बाद आदिवासी समाज के सम्प्रदाय, रीति-रिवाज

एवं सभ्यता लुप्त होने लगी । हमारे समाज के ऊपर उनका प्रभाव स्पष्ट रूप में दिखाई देता है । ब्रिटिशों ने व्यापार के नाम से, हमारे देश में प्रवेश कर, जहाँ खनिज, कोयला, लोहा की कमी की पूर्ति के लिए उन प्रदेशों या इलाकों को अपने कब्जे में ले लिया जहाँ खनिज थे । प्रमुख रूप से ब्रिटिश सरकार ने जंगलों के ऊपर अपनी विशेष नज़र रखी । वहाँ रहने वाले आदिवासियों के संस्कृति के उपर अपनी संस्कृति थोपने लगे । अपनी कूटनीति से उनकी जमीनों को छीन लिया । उनको भूमिहीन कर दिया । इसके साथ-साथ जंगल प्रवेश पर रोक लगा दी । आदिवासियों के पास जंगल, जमीन ही नहीं होगा तो इस तरह के संकट में वह कैसे जीयेंगे ।? इस कठिन स्थिति में पेट भरने के लिए उन्हें दूसरे-क्षेत्रों की ओर भागना पड़ा । इस तरह शोषण एवं अत्याचार के जाल से मुक्त होने, इसके साथ अपने अस्तित्व की पहचान के लिए उन्होंने अनेक आंदोलन चलाए । तत्कालीन अंग्रेजी शासन काल में आदिवासियों को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा । आदिवासी समाज में श्रमिक शोषण, अत्याचार, स्त्रियों का मान हरण, इस तरह के अनेक यथार्थ-घटनाएँ उपन्यासकार ने इस उपन्यास के माध्यम से हमारे सामने रखी हैं ।

आदिवासी समाज के लिए नये-नये कानून बनाकर ब्रिटिश सरकार ने उनका शोषण किया । नये कानून की वजह से उनके ऊपर लगान का भार, जंगल प्रवेश पर रोक से आदिवासी समाज का शोषण में बढ़ोतरी हुई । आदिवासी समाज से कठिनाई एवं अकाल के समय में भी, बिना मजदूरी के ये लोग काम करवाते थे । किसी भी समाज का सामाजिक जीवन स्तर, आर्थिक-क्रियाकलापों पर निर्भर करता है । लेकिन आदिवासी समाज दयनीय स्थिति में दिखाई देता है क्योंकि इनके श्रम के ऊपर फल प्राप्त करने वाले ठाकुर, जागीरदार एवं सरकारी लोग सुखमय जीवन भोग रहा था । इनको न ठीक तरह से खाने के लिए रोटी, न पहनने के लिए कपड़ा था ।

4.1.4.1 अकाल और आदिवासी – जीवन -

आदिवासी जंगल को आधार मानकर जीवन बिताते थे । आदिवासियों के वन में प्रवेश पर पाबंदी ब्रिटिश सरकार ने लगा दी थी । इसके बाद ये लोग कृषि के माध्यम से जीवन बिताने लगे । आदिवासियों द्वारा की जाने वाली कृषि प्रकृति के बारिश के उपर निर्भर है । काल की दृष्टि से कुछ महिनों तक बारिश नहीं आई । इस वजह से घोर अकाल की समस्या सामने खड़ी हो गई । इस अकाल के समय खान-पान की वजह से बहुत सारे आदिवासी मौत के ग्रास बन चुके । जैसे- "छप्पन्या का भीषण अकाल । अन्न के दाने और पानी की बूंद-बंद को लोग तरस गये । मवेशियों के लिए चारे का तिनका-तिनका नदारद। भूखे-प्यासे लोग इधर-उधर भटकने और मरने लगे । पालतू मवेशियां और जंगली जानवर कंकालों में तब्दील होने लगे । चारों ओर मौत का क्रूर तांडव । लाशें, सड़ांध और अब महामारी । न जाने कितने लोग इस भयावह वातावरण में पलायन कर चुके थे ।"[128]

उस भीषण अकाल में पीने के लिए पानी नहीं मिला तो फसल कहाँ से आयेगी ? जंगलों में हरियाली कहाँ बचेगी ? आदिवासी अपना पेट कैसा भर पायेंगे ? कहीं पर भी देखें तो भुखमरी ही दिख रही थी । इस तरह की परिस्थितियों में आदिवासियों को किसी ने भी सहयोग नहीं किया ।

अकाल से प्रभावित आदिवासी समुदायों के लोग अपना पेट भरने के लिए इधर-उधर से चोरी करने लगे । धनी लोगों का धन लूटकर अपना पेट भरने लगे । इस तरह के बेसहारे आदिवासियों की भूख को लेकर, गरीबी की स्थिति को लेकर किसी को चिंता नहीं थी । उन समुदायों के ऊपर अपराधों का आरोप लगाकर उनको जीवन भर सताते रहते थे । जैसे- "आदिवासियों द्वारा यहां-वहां की जा रही लूट व चोरी की घटनाओं पर नियन्त्रण रखने के लिए कौंसिल ने डूंगरपुर रियासत क्षेत्र के भील, मीणा व गरासियों को आपराधिक जनजाति अधिनियम के तहत सूचीबद्ध कर दिया । .... वह अपने गांव से किसी कार्यवश दूसरी जगह जाता था तो उसे सम्बन्धित थानों में सूचना देनी होती थी ।

[128] धूणी तपे तीर, पृ सं 152

इस कानून की आड़ में आदिवासियों पर अनेक प्रकार के जुल्म किये जाने लगे । उन्हें अकारण थानों व चौकियों और जागीरदार के गढ़ में बुलाया जाकर प्रताड़ित किया जाने लगा ।"[129]

उपरोक्त उद्धरण से पता चलता है कि आदिवासियों के प्रति तत्कालीन समाज एवं सरकार अमानवीयता का व्यवहार कर रही थी । उसी अपराध को पीढ़ी-दर-पीढ़ी पर थोपना उपन्यासकार अनुचित मानते हैं । आदिवासी को दिनोंदिन पुलिस थाना पर हाजिरी के लिए बुलाना गलत था । आदिवासी दूसरे जगह जाये तो वहाँ पर भी पुलिस थाना पर जाना, इस तरह आदिवासियों को प्रताड़ित करना कदापि मान्य नहीं हो सकता है । इस तरह के आदिवासी-शोषण का रचनाकर विरोध करते हैं । तत्कालीन सरकार एवं समाज आदिवासियों को अपराधी साबित करने में जितना प्रयास कर रहे थे, उतना उन समुदायों की समस्याओं से मुक्ति दिलाने का लेशमात्र भी प्रयास नहीं कर रही थे । किस परिस्थिति में उन समुदायों को गलती करनी पड़ी थी । इसके पीछे के कारण क्या हो सकते हैं सही-सही जांच सामने आने की आवश्यकता है बिना कुछ जांच किये किसी समुदाय को अपराधी मानना कहाँ का न्याय है ?

अकाल के साथ-साथ उपन्यासकार ने अतिवृष्टि का वर्णन भी किया है । आदिवासियों के पास जो कुछ जमीन थी । उसमें जीवन-यापन के लिए कुछ फसलों के बीज, बो दिये । जैसे-मटर, सरसों आदि । फसल-कटाई के समय ओला बारिश की वजह से पूरी फसल खराब हो जाती है । इस तरह के यथार्थ परक घटनाओं का भी चित्रण इस उपन्यास में किया गया है । जैसे- "गांव के आदिवासी खेतों में ओलों की बरसात से चौपट हुई फसलों को देख-देखकर माथा पीट रहे थे । फसल नष्ट होने की गमी किसी प्रियजन की मौत से बड़ी पीड़ा थी उन के लिए ।"[130]

---

[129] धूणी तपे तीर, पृ सं 154

[130] धूणी तपे तीर,पृ सं 37

आदिवासी फसल को देखकर रोने लगे, आकाश की ओर देखकर ताकने लगे । इस तरह हमें आदिवासी-समाज में मनुष्य की दुर्भर जीवन स्थिति दिखाई देती है । इस तरह की दयनीय स्थिति में उन लोगों को सरकार की ओर से कुछ भी सहायता नहीं मिली थी । बल्कि फसलों के ऊपर लगान वसूल करने में वे आगे रहते थे । इसके साथ-साथ अंग्रेज सरकार ने उनके हकों एवं स्वतंत्रता को छीन लिया । जंगल में उत्पन्न होने वाले फूल, फल, पत्ता, लकड़ियों के ऊपर आदिवासी अपना अधिकार खो बैठे । हर कार्य के लिए सरकार से अनुमति लेनी पड़ती थी । आदिवासियों की स्थिति जानवर से भी खराब हो गई । इस तरह का सामाजिक- यथार्थ उपन्यासकार ने इस उपन्यास के माध्यम से हमारे सामने रखा है ।

4.1.4.2 अंधविश्वास -

भारत में अनेक जाति, धर्म और वर्ग-समूहों के लोग निवास करते हैं । आदिवासी समाज में सबसे अधिक अंधविश्वास दिखाई देता है । अंधविश्वास आदिवासी समाज में परम्परागत रूप से चलता आ रहा है । इनके इलाकों में अधिकांश बलि-प्रथा दिखाई देती है । प्रमुख रूप से आदिवासी-धर्म, शक्ति एवं पूर्वजों के नाम पर बलि देते हैं । बलि-प्रथा से इनकी इच्छाएँ पूरी होती हैं, इस तरह की किंवदंती हम देख सकते हैं । जैसे- कैप्टीन ब्राइटलैंड ने बताया है कि “आदिवासियों में लम्बे अर्से से व्याप्त सामाजिक-धार्मिक, अंधविश्वासों व कुप्रथाओं के विरूद्ध भी कोर ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, जिसमें डायन-वध, शिशु-बलि, झाड़ा-फूंकी के माध्यम से भोपाओं द्वारा बीमारी के इलाज के नाम पर की जाने वाली करतूतों तथा जादूटोना आदि की रोकथाम शामिल थी । उसने कुछ उदाहरण दिये- सन् 1852 में मेवाड़ भील कोर के सिपाही संपला ने एक बूढ़ी औरत को डायन के शक में मार दिया । उस सिपाही को सात वर्ष की सजा दिलवाई गयी ।”[131] इस तरह के अंधविश्वासों की वजह से इन लोगों को ब्रिटिश सरकार से कानूनी तौर पर सजा

[131] धूणी तपे तीर,पृ सं 77

भी मिली है। अंधविश्वास फैलने का प्रमुख कारण- अशिक्षा है। ये अनपढ़ है इसलिए सही या गलत समझने की क्षमता इन लोगों के पास कम है । इनके समाज में सबसे बड़ी कमजोरी अंधविश्वास है।

आदिवासी समुदायों में अंधविश्वास से संबंधी दूसरा उदाहरण है- “वागड़ प्रदेश के इस अंचल की पहाड़ियों के चैन में खलल पड़ा जंगल की शांत मुद्रा भंग हुई और गांव का बच्चा-बच्चा जग गया । प्रौढ़ औरतों ने अपनी झोंपड़ियों से काली हांडियां बाहर फेंकी । बुजर्ग महिलाओं ने पत्थर की चक्की के पाटों को उल्टी दिशा में फिराया ।”[132]

आदिवासियों की मान्यता है कि- काली हांड़ियों को बाहर फेंकने और चक्की को उल्टी फिराने से बरसात शांत हो सकती है। आदिवासियों के पूजा-पाठ से बारिश का कम और ज्यादा होना तय नहीं किया जा सकता है। उनके पुरखों ने जिस परंपरा को अपनाया उसी परंपरा को ये लोग अपनाते आ रहे हैं। इस तरह का अंधविश्वास हमें इनके इलाकों में दिखाई देता है।

उपर्युक्त बताये गये उदाहरणों के साथ-साथ आत्मा एवं पुनर्जन्म के ऊपर भी ये लोग विश्वास करते हैं। अपने पूर्वजों एवं शक्तियों को संतुष्ट करने के लिए बकरियों की बलि चढ़ाते हैं। जादू-टोने के ऊपर ये लोग विश्वास करते हैं। आखिर में जादू-टोना के जाल में फँसकर बाहर नहीं निकल पाते हैं । आदिवासियों के समाज में अंधविश्वास परम्परागत चलने वाली प्रक्रिया है। इनकी जड़ें बहुत गहरी हैं। आज तक आदिवासियों के समाज में अंधविश्वासों की जड़ें नहीं उखड़ सकीं। वर्तमान समय में भी हमें अंधविश्वास आदिवासी समाज में दिखाई देता है।

4.1.4.3 आदिवासी समाज में स्त्री और उसका उत्तरदायित्व -

आदिवासी समाज में स्त्री किसी भी कार्य में पुरूषों से कम नहीं है। आदिवासी-समाज में स्त्री-पुरूष दोनों मिलकर काम करते हैं। सुबह से शाम तक परिश्रम, पुरूष के

---

[132] धूणी तपे तीर,पृ सं 35

बराबर आदिवासी महिलाएँ करती हैं। पुरूष से तुलना किया जाय तो आदिवासी स्त्री सहनशील अधिक दिखाई देती है। आदिवासी समाज में या आदिवासी समाजेतर स्त्रियों को आर्थिक, राजनीतिक एवं मानसिक समस्याएँ झेलनी पड़ती हैं। प्रमुख रूप से पारिवारिक एवं समाज में इनका शारीरिक शोषण किया जाता रहा है। स्त्री को कमजोर मानकर उसे हीन दृष्टि से देखते हैं। उपन्यासकार ने आदिवासी समाज में स्त्री का स्थान पुरूष के समान रूप में चित्रण किया है। जैसे- आदिवासी विद्रोह एवं आंदोलन में औरतें भी भाग लेती हैं। इसके माध्यम से हमें यह पता चलता है कि स्त्री, पुरूष से किसी भी कार्य में कमतर नहीं है। "पूँजा धीरा की होनहार बेटी कमली की अगुवाई में सहेलियों से हुए इस ज्ञानवर्द्धक संवाद के बाद कमली एवं सहेलियों ने गोफन से पत्थर के टुकड़े फेंकने का अभ्यास किया।"[133]

आदिवासी समाज में स्त्रियों की आर्थिक-स्थिति बहुत खराब है। इस समाज में खान-पान एवं वस्त्र की कमी दिखाई देती है। जैसे-"स्त्रियों ने रंग-बिरंगे कपड़े पहन रखे थे, लेकिन उतने ही जिनसे शरीर मुश्किल से ढंका जा सके और उनके बच्चों को जैसा होना चाहिए था, उन हालात में, वे वैसे ही थे- सांवले रंग के दुबले-पतले और नंग-धड़ंग।"[134] इस तरह जीवन का यथार्थ चित्रण है।

परिवार को सुधारने के लिए हर स्त्री सोचती है लेकिन वह कुछ बोलती तो उसको मारा जाता है। पति, पत्नी के साथ हिंसात्मक रूप में मार-पीट करता है। पुरूष अपनी बीबी को अपने नियंत्रण में रखना चाहता है। इस तरह मार-पीट की वजह से स्त्री को गुलामी का जीवन बिताना पड़ता है। इस तरह की घटना हमें उपन्यासकार सोदान पात्र के माध्यम से कहलवाता है। "सोदान की औरत उसे तलाशती हुई पीछे-पीछे थान पर आई और ये शब्द कहे। अब तेरा मरद ठीक है। एकाध घड़ी में इसकी दारू उतर जायेगी।

---

[133] धूणी तपे तीर,पृ सं 315

[134] धूणी तपे तीर,पृ सं 274

अब इसे संभाल कर घर ले जा। घसीटा ने सोदान की औरत को समझाया। इस बापखणा को घर ले जाकर क्या करूँगी मैं। दारू पीने की बात पर मैंने इसे फटकारा था तो मुझे ही पीटने को दौड़ा। मैंने धक्का दिया तो पड़ गया और मरने- मारने की बात कहता हुआ आंगन से बाहर निकल गया।"[135] आदिवासी समाज में महिलाओं की इस तरह की स्थिति हमें इस उपन्यास में दिखलाई पड़ती है।

4.1.4.4 आदिवासी स्त्री के प्रति मुख्यधारा के समाज का दृष्टिकोण -

समाज में स्त्रियों को भोगवादी एवं हेय-दृष्टि से देखा गया है। इस तरह की भावना समाज में परम्परागत रूप से चल रही है। आदिवासी महिलाओं का हर जगह शोषण हो रहा है। जीवन-यापन के लिए आदिवासी महिला रोजगार की तलाश में जंगल से शहर में दाई, नौकरानी के रूप में कार्य करने लगी। यहाँ भी इनका शोषण होने लगा। जंगलों में भी इनके ऊपर अत्याचार होने लगे। इस तरह शारीरिक-हरण का वर्णन उपन्यासकार ने दल्ली के माध्यम से हमारे सामने रखा है। दल्ली आदिवासी लड़की है उपन्यासकार ने दल्ली पात्र के माध्यम से आदिवासी स्त्रियों, औरतों के प्रति होनेवाले अत्याचारों को दर्शाया है। दल्ली बचपन से ही बकरियों को चराती है। किशोरावस्था आने के बाद जंगल में बकरियों के साथ-साथ दल्ली को भी संभलकर रहना पड़ा। दल्ली की सगाई हरिया के साथ तय कर दी गई। हरिया के यादों में दल्ली खो जाती है। मां-बाप की एक मात्र संतान होने पर उसे किस तरह पाला-पोसा करते हैं। उस संतान के प्रति वे किस तरह का संबंध रखते हैं। इन सारे बातों के बारे में निम्न उद्धरण से समझ सकते हैं। जैसे- "दल्ली किशोरावस्था को पार कर चुकी थी। गदराया बदन और मदमाता यौवन। पांच्या निनामा की इकलौती संतान दल्ली को उसके माँ-बाप ने सौ अभावों के बावजूद बड़े लाड़-प्यार से पाला-पोसा था। मानगढ़ के पूरब में आमलिया गांव था और उस पार पश्चिम में बसे गांव कुंड़ा के हरिया के साथ पांच्या ने उसकी बेटी की सगाई कर दी थी।"[136]

---

135 धूणी तपे तीर ,पृ सं 40

136 धूणी तपे तीर, पृ सं 341

आगे चलकर दल्ली बकरी चराती अपने प्रिय के यादों में समय काटती है। एक दिन दल्ली दिन में सपने देखती रहीं, समय पता नहीं चला जंगल में ही देर हो गई। होश में आकर जल्दी, जल्दी लकड़ी इकट्ठा करने लगी। घर लौटने को तैयार हो रही थी कि अचानक वन रक्षक ने उस पर हमला कर दिया। वन रक्षकों की जाल में दल्ली फंस गई। वन रक्षक दल्ली के साथ किस तरह व्यवहार किये हैं, दल्ली को किस तरह सताये हैं। निम्न कथन के माध्यम से समझ सकते हैं। जैसे-"ऐ छोरी ! तूने जंगल से लकड़ियां काटी ? पीठ पीछे से कड़कती आवाज सुनकर दल्ली चौंकी। घबराती हुई हड़बड़ाहट में स्वयं को संभालती हुई खड़ी हुई और पीछे मुड़ी। देखा वन रक्षक की पोशाक में दो हट्टे-कट्टे युवक खड़े थे। उनके हाथों में लाठियां थी। लकड़ियों के गठ्ठर को दल्ली अपने माथे पर रख ही रही थी कि एक वन रक्षक ने उसकी चोटी पकड़ कर झटका दिया। वह नीचे गिर पड़ी। लकड़ियों का गठ्ठर पीलू की लफर से बांधा हुआ था। लफर कई जगह से टूट गयी। लकड़ी की सूखी टहनियां जमीन पर बिखर गयी।"[137]

दल्ली को वन रक्षकों ने बंधी बना लिया। दल्ली के साथ अमानवीय व्यवहार उन्होंने किया। दल्ली को मार के साथ-साथ गालियाँ भी सुननी पड़ी थी। जैसे- "जंगली जिनावरों के हमलों के किस्से तो दल्ली ने सुने थे लेकिन इस कदर 'वन मनुष' झपट्टा मारेंगे, यह दल्ली का पहला कटु अनुभव था। पथरीली जमीन पर गिरने से दल्ली के माथे पर चोट लगी थी। वह उसे ससोड़ती हुई खड़ी हुई और साहस बटोर कर भागने का प्रयास करने लगी। चोट्टी कहीं की, जंगल बर्बाद करती है और बचकर भागना चाहती है। दूसरे वन रक्षक ने डांटते हुए दल्ली की बांह पकड़ी।"[138]

उपरोक्त कथन से पता चलता है कि शेर जिस तरह अपने शिकार को पांव के नीचे रखता है उसी तरह वन रक्षक ने दल्ली को अपने बाहों में ले लिया था। और उपर से

---

[137] धूणी तपे तीर, पृ सं 343

[138] धूणी तपे तीर, पृ सं 343

दल्ली को गालियाँ सुना रहा था। दल्ली वन रक्षक से मुक्त होने के लिए प्रयास कर रही थी लेकिन सफल नहीं हो पाई। यहाँ पर उपन्यासकार की सारी संवेदना दल्ली के पक्ष में जाती है।

आगे चलकर दल्ली के प्रति वन रक्षक की मानसिकता को देख सकते हैं। एक वन रक्षक दल्ली के प्रति सहानूभूति दिखा रहा तो दूसरा वन रक्षक टेढ़ी नज़र से देख रहा था। जैसे- "चल छोड़ यार, गलती हो गयी बेचारी से। साहब के पास ले चलते हैं। वो इसे माफ कर देंगे। पहले वन रक्षक ने सहानुभूति के जाल में लपेट कर ये शब्द कहे। साथी वन रक्षक ने उसे टेढ़ी नजरों से देखा और मुस्कराया। चरती हुई बकरियों में हलचल हुई। फिर वे छोटे से टहने में सिमट कर दल्ली की ओर टुकर-टुकर झांकने लगी। निरीह प्राणियों की आंखों में सहानुभूति व प्रतिरोध के मिश्रित भाव झलक रहे थे।"[139]

उपरोक्त कथन से पता चलता है कि- आदिवासी लड़कियों के प्रति काम वासना से देखना गलत है। गरीब-स्त्रियों का शारीरिक हरण करना पाप है। लड़कियों के साथ इस तरह के व्यवहार करने वाले लोगों को सजा देने की आवश्यकता है। आदिवासी लड़कियों की सुरक्षा के लिए कानून बनाने की आवश्यकता है।

औरतों के प्रति मुख्यधारा का समाज किस तरह का दृष्टिकोण रखता है ? आदिवासी औरतों के प्रति किस तरह का विचार मुख्यधारा का रहा है ? लड़कियों का किस तरह का नामकरण करते हैं ? औरतों को किस तरह के विकृत नाम देकर बुलाते हैं ? जैसे- "मेरा प्यारा दोस्त आया है। इसे खुश करने के लिये कोई जुगाड़ करो। रेंजर किसन सिंह ने अपने कर्मचारियों को कहा था। जुगाड़ के लिये भटकने की जरूरत नहीं पड़ेगी। नीचे नाले के किनारे मैं अभी-अभी बकरियां चराती एक टन्न गिंदोड़ी वन-परी को देखकर आया हूं, उसे पकड़ लाओ, तब तक मैं तैयार होता हूं। कहते हुए सूबेदार लियाकत ने वन

139 धूणी तपे तीर, पृ सं 343

रक्षकों का काम हल्का कर दिया था। राह आसान समझते ही दोनों वन रक्षक सीधे दल्ली के पास पहुंचे थे।"[140]

उपरोक्त कथन से पता चलता है कि किसी भी आदमी को खुश करने के लिए आदिवासी औरतों का इस्तेमाल किया जा रहा था। दल्ली के साथ सूबेदार ने किस तरह का व्यवहार किया था। दल्ली ने अपने मान एवं प्राण बचाने के लिए भरसक कोशिश की थी। वन रक्षक दल्ली को रेस्ट हाउस में लाया। "किसन सिंह ने दल्ली को यूं समझा कर अन्दर कमरे में भेजा था। दल्ली के भीतर घुसने के पहले ही सूबेदार हिंसक जिनावर की तरह शिकार पर हमला करने के लिए तैयार बैठा था। दल्ली को देखते ही उसने भीतर से दरवाजा बंद कर लिया। दल्ली चीखी-चिल्लायी। प्रतिरोध भी डटकर किया था। सूबेदार को जोर से धक्का मारा था। छाती में जमकर लात भी मारी थी। उसने अपने मां-बाप को पुकारा था। और हरिया को आवाज लगायी थी। इस जरख से मुझे ब *SSS* चा *SSS* लो*S*!"[141]

दल्ली के प्रति घटित अत्याचार एवं बलात्कार को दबाने के लिए जहाँ जानवर घूमते थे वहाँ पर दल्ली की लाश को रख दिया गया। इसके पीछे कारण यह रहा था कि वह किसी जानवर की शिकार हो गई होगी। जैसे- "लोग मान कर चल रहे थे कि किसी जंगली जानवर ने ही दल्ली की यह हालत की है। दाह-संस्कार से पहले जब दल्ली की लाश को नहलाया गया तब औरतों में कानाफूसी हुई कि गले में चोट के निशान हैं और पूरी काया नोंची-खरौंची हुई है। गालों और छाती के उभरों पर मिनख के दांतों के निशान हैं और नीचे जख्म हैं!"[142]

---

[140] धूणी तपे तीर, पृ सं 343

[141] धूणी तपे तीर,पृ सं 345

[142] धूणी तपे तीर, पृ स 346

सच्चाई सामने आने के बाद आदिवासी समुदायों के लोग अपराधियों पर टूट पड़ते हैं । दल्ली का बदला हरिया ले लेता है । आदिवासी कभी भी बदला लेने में पीछे नहीं हटते हैं । दल्ली के दैहिक-शोषण से जितने लोग जुड़े थे सबको आदिवासी मार देते हैं ।

इस कृति के माध्यम से हमें यह पता चलता है कि आदिवासी स्त्रियों का अपने जंगली इलाकों के साथ ही, शहर में भी इनका मान हरण हो रहा है । इस तरह नर-जानवरों से उसको मुक्ति कब प्राप्त होगी ? आदिवासी-स्त्रियों की आर्थिक, मानसिक एवं राजनीतिक स्थितियों के बारे में इस रचना के माध्यम से हमें जानकारी प्राप्त हुई । इन घटनाओं के वजह से स्त्रियाँ घर से बाहर आने के लिए भी डर रही हैं । आजकल स्त्री के जीवन-विधान, रहन-सहन में भी बदलाव आ रहा है ।

4.1.4.5 प्रेम का वर्णन -

इस उपन्यास में उपन्यासकार ने प्रेमकथा का चित्रण भी हमारे समक्ष रखा है । कमली व नंदू तथा दल्ली व हरिया की प्रेमकथा का यथार्थ चित्रण इस कृति में है । एक बार प्रिय, प्रेयसी से दूर हो जाता है तो वे दोनों प्यार के विरह में खो जाते हैं । जैसे- 'भ्रमरगीत सार' में गोपियाँ कृष्ण के विरह में खो जाती है । अपने प्रिय से मिलन का विरह करती है । अपनी प्रिय की यादों में खोकर काम-काज के उपर ध्यान नहीं रखती है । काम करते समय, बकरी चराते समय अपनी प्रिय की विरह वेदना से समय को काटती है। इस तरह की वेदना को हम दल्ली पात्र के माध्यम से देख सकते हैं-

"दल्ली को याद आया हरिया गजब का गिलोलबाज है । अगर वह यहाँ होता तो गिलोल से तीतर मारता और मैं उन्हें आग में भूनती । नमक व मिरची लगाकर हम दोनों वह स्वादभरा मांस खाते । पेट भर जाने के बाद हरिया बांसुरी बजाता और मैं नाचती और तब बांसुरी व बिछुओं की घूघरियों की आवाज सुनकर मेरी सहेलियों को पता चलता

कि हम दोनों प्रेम की नदी में अठखेलियां कर रहे हैं ।"[143] इसके साथ-साथ आगे चलकर इस उपन्यास में कमली व नंदू का प्रेम को भी चित्रित किया गया है । आदिवासियों के जीवन-विधान में प्रेम की पवित्रता, एक-दूसरे की पसंदता और अपना सहयोगी चुनने में आदिवासी लड़की के पास स्वतंत्रता है । एक-दूसरे की पसंद से शादी करने की संस्कृति होने की वजह से आदिवासियों का उनके जीवन पर कोई दबाव नहीं रहता है । एक-दूसरे के प्रति प्रेम हो जाने के बाद उन लोगों का मानसिक व्यवहार किस तरह का रहता है । जैसे- "जब कमली ने नन्दू के सामने जमीन पर पातल रखी तो उसकी अंगुलियां नन्दू की अंगुलियों से छू गयी । पूरे बदन में सुखद व अनूठी तरंगों के प्रवाह की अनुभूति उसे हुई । कुछ क्षणों के लिए नन्दू ने कमली को इकटक देखा । कमली गयी । दौड़ती लौट आयी । मक्का की दो रोटी नन्दू की पातल पर रख कर चली गयी । फिर आयी सूखी काचरी का साग लेकर । नन्दू ने कहा- इतना मत घाल । खाने वाले बहुत हैं । सब का ध्यान रख । कमली को बुरा लगा । उसने मन ही मन सोचा- ध्यान तो तेरा ही रखना है । साग परोसती कमली पंगत में बैठे अन्य युवकों की तरफ चलती रही । उसकी नजरें नन्दू को बीच बीच में देख रही थी । नन्दू का जितना ध्यान रोटी खाने पर था उससे ज्यादा कमली पर ।"[144]

उस समय के प्रेम और आज के प्रेम में अंतर आ गया है । वर्तमान समाज में शारीरिक-आकर्षण को ही प्रेम कहने लगे हैं । आकर्षण की वजह से उत्पन्न संबंध और उनका जीवन सफलता नहीं प्राप्त कर सकता है । आदर्श प्रेम का वर्णन उपन्यासकार ने हमारे सामने रखा है । जैसे- "कमली व नन्दू तथा दल्ली व हरिया की प्रेमकथा भी उपन्यास में गुंफित है, जिसके माध्यम से हरिराम मीणा ने आदिवासी जाति के शुद्ध सच्चे उज्ज्वल प्रेम को दर्शाया है । जिसमें वासना की गंध व अश्लीलता नहीं बल्कि हृदय की गहन अनुभूति है, त्याग है, एक-दूसरे के प्रति समर्पण है । और यह सिद्ध किया है कि

[143] धूणी तपे तीर,पृ सं 342

[144] धूणी तपे तीर,पृ सं 317

जंगली कही जाने वाली यह आदिवासी जाति नैतिक व मानवीय मूल्यों के धरातल पर आज के सभ्य व कुलीन समाज से कई गुना है। बाँसुरी के माध्यम से नन्दू प्रेमानुभूति की गहराईयों में डूबा हुआ था। राधा व कन्हैया का प्रेम तो मिथक बन चुका था। नन्दू व कमली का प्यार तो वर्तमान यथार्थ था।"[145]

4.1.5 सांस्कृतिक-जीवन -

भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता का **विश्व** में महत्वपूर्ण स्थान है। यहाँ भारत के मूल निवासी कहलाने वाले आदिवासियों की सभ्यता एवं संस्कार का संबंध प्रकृति से जुड़ा हुआ है। इस संस्कृति के अंतर्गत कला, शिल्प, संस्कार, प्रथाएं, धर्म, त्यौहार, नृत्य एवं गीत सब शामिल हैं। "संस्कृति की दो प्रकार के व्याख्याएँ संभव हैं- व्यापक और सीमित। मानवविज्ञान सीखे हुए व्यवहार, प्रकारों की समग्रता को संस्कृति की संज्ञा देता है। इसकी परिधि में मानव और प्रकृति, मानव और समाज और मानव और अदृश्य-जगत की शक्तियों के सभी अंतः सम्बन्ध आते हैं। मानव का अन्तरजगत्-विचार, विवेक, व्यक्तिगत मूल्य, ऊर्जा की अभिव्यक्ति भी संस्कृति का अंग होता है। संस्कृति के भौतिक-पक्ष को उसके विचार पक्ष और क्रिया पक्ष से अलग नहीं किया जा सकता है।"[146]

4.1.5.1 प्रकृति-चित्रण -

आदिवासियों का जीवन प्रकृति से आर्थिक और भावनात्मक दोनों रूपों में जुड़ा हुआ है। अपना जीवन चलाने के लिए जो भी वस्तु-सामग्री की जरूरत है, वह उसे ये लोग प्रकृति से प्राप्त करते हैं। जहाँ हरियाली एवं प्रकृति वन संरक्षक है, वहाँ ये लोग अपना निवास स्थान बना लेते हैं। आदिवासी इलाकों में रात में प्रकृति का अद्भुत-वर्णन उपन्यासकार ने इस कृति में किया। इनके लोकगीत और लोक नृत्य प्रकृति को केन्द्रित कर

---

[145] हिंदी संवाद सेतु पत्रिका-अप्रैल-सितम्बर-2009   पृ सं   40

[146] समय और संस्कृति,पृ   सं   81

गाये और नाचे जाते हैं। जिसमें उसकी सुन्दर छटा सहज ही देखने को मिलती है। जैसे- "गांव के वन-पर्वतांचल में संकट में साथ देने वाले कल्पतरू जैसे महुआ के सघन दरख्त शांत थे। पता नहीं, सो रहे थे या कि वैसे थे, जैसे कहावत है कि सुनसान रातों में महुआ चुपचाप रोता है। यह सही है कि सर्दी ही क्या, ग्रीष्म ऋतु में भी रात में महुआ के पत्तों से पानी की बूंदें टपकती हैं। न जाने कौन-सी विरह वेदना इन वृक्षों को सताती रही है। आम, जामून, नीम, गूलर, सेमल, पलाश, सागौन, जंगली चंदन और अन्य प्रकार के पेड़ों एवं वनस्पतियों से समृद्ध यह आदिवासी अंचल निश्चिंत सोया हुआ था।"[147]

4.1.5.2 पर्व - त्यौहार -

इस उपन्यास में प्रमुख रूप से होली का चित्रण किया गया है। यह आदिवासियों के प्रमुख त्यौहारों में गिना जाता है। होली के दिन इस समाज में नृत्य, गीत एवं 'गेर' गाया जाता है। त्यौहार के दिन मिठाई एवं पसंद के भोजन का आस्वादन भी इन लोगों को नसीब नहीं होता है। होली के दिन स्त्री-पुरूष दोनों एक साथ मिलकर नृत्य एवं गीत गाते हैं। इस समाज में सीमित लोग होली के दिन इस अवसर पर आभूषण एवं नये कपड़े पहनते हैं। आदिवासी समाज में होली किस तरह मनायी जाती है इस तरह की जानकारी इस कृति के माध्यम से हमें प्राप्त होती है। जैसे- "दिन के चौथे पहर के आगाज के साथ गेर नृत्य आरम्भ हुआ जो सांझ से कुछ समय पहले समाप्त हुआ। युवकों के हाथों में बंदूक, डोने व लाठियां थी। युवतियां लेजम, कावेर व रूमाल लिए हुए थी। नाच के साथ मांदल व कुंडी बजायी गयी। युवक-युवतियों ने हाथों में हाथ डालकर खूब नृत्य किया। गोविंद गुरू, पूंजा भगत, गनी सबने गेर का आनंद लिया।"[148] होली के त्यौहार में नृत्य के साथ गीत भी गाते थे। इसके साथ-साथ थम्म खड़ा करते हैं। उसके बाद उसको जलाना

---

[147] धूणी तपे तीर,पृ सं 35

[148] धूणी तपे तीर,पृ सं 319

यह सब इनकी परम्परागत चलने वाली प्रक्रिया है । जैसे- “आमलिया गांव के चौक में परम्परानुसार होली का थम्म एक महिना पहले रोप दिया गया था । सेमल के पेड़ की पाँच-छः हाथ लम्बी हरी लकड़ी का थम्म बनाया गया था । होली के दिन थम्म के इर्द-गिर्द लकड़ियां व कंडे रख दिये गये । सूरज डूबने के साथ ही होली-दहन कर दिया गया । ..... युवक व युवतियों ने होली की परिक्रमा करते हुए होली का गीत गाया-

होली बाई वांहो रो रे
होली बाई वांहो रो रे
होली बाई आज के काल
होली बाई बांहो रो रे...

(हे होली बहन, एक दो दिन और ठहर जा । लेकिन होली बहन आज ही चली गयी) ।”[149]

4.1.5.3 वेश - भूषा -

आदिवासी समाज में हमें वेश- भूषा के स्तर पर वैविध्य दिखाई देता है । इस समाज में स्त्री के साथ पुरूष-वर्ग भी कुछ आभूषणों को पहनता है । इन लोगों के समाज में जो परम्परा से चलता आ रहा है, उसी को ये लोग कार्याचरण में रखते हैं । आदिवासियों की वेश-भूषा, सभ्य समाज से अलग दिखाई देती है । इनके वेश एवं आभूषणों को ये खुद तैयार करके पहनते हैं । इनकी वेश-भूषा को हम इस तरह देख सकते हैं । जैसे- “स्त्रियों ने हाथों में चाँदी की गजरे और चूड़े, नारियल की कसले, लाख की चूड़ियाँ, कुकड बिलास के भोरिये अथवा कातरिये, लाख की कमली, काकणी, चाँदी के घूघरी वाली बंगड़ी और चाँदी की कासली पहन रखी थी । ..... पुरूषों ने अपने हाथों में चाँदी के कड़े, बाजू में चाँदी की भोरिया, कमर में चाँदी का कनदोरा, कान में सोने या चाँदी की मुरकी,

[149] धूणी तपे तीर,पृ सं 321

भमरकड़ी और झेले तथा गले में आहड़ी पहन रखी थी। कइयों ने अपनी बंडी में चाँदी की ऊँदिया अथवा बटन लगा रखे थे।"[150]

उपरोक्त कथन से पता चलता है कि- पर्व-त्यौहार में स्त्री-पुरूष नये कपड़े पहनकर गीतों के साथ-साथ नृत्य करते हैं। वेश-भूषा में आभूषणों के अलंकरण में, आदिवासी-समुदायों के अंतर्गत स्त्री-पुरूषों में समानताएँ दिखाई देती हैं। आदिवासियों की वेश-भूषा किसी से मिलती-जलती नहीं है। .

4.1.5.4 धर्म -

आदिवासी, धर्म निष्ठावान है। इन लोगों के ऊपर धर्म का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। इनके सांस्कृतिक-कार्य में धर्म को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। ये धर्म भावना के ऊपर विश्वास रखते हैं। इस उपन्यास में गोविंद गुरू के माध्यम से धर्म की बात उठाई गई है। जैसे-"गोविंद गुरू ने अपने प्रवचन की शुरूआत तुलसीदास जी के इस दोहे से की -

'दया धर्म का मूल है, पाप मूल अभिमान।
तुलसी दया न छोड़िये, जब लगि घट में प्रान।।'

इस दोहे की व्याख्या करते हुए गोविंद गुरू ने बताया कि- ईश्वर के निकट पहुंचने का मार्ग धर्म है। धर्म से ही ईश्वर के प्रति आस्था पैदा होती है। धर्म से मनुष्य में नैतिक गुणों का विकास होता है और दम्भ, पाखण्ड व हिंसा की प्रवृत्तियों का विनाश होता है। हमारे सब भाइयों का कर्तव्य है 'सम्प-सभा' के नियमों की पालन करना।"[151]

उपरोक्त उद्धरण से पता चलता है कि- आदिवासियों का अपना धर्म है, अपनी संस्कृतियाँ हैं। वे दूसरे जीवों के प्रति दयाभाव रखते हैं। आदिवासी समुदाय के लोग किसी जरूरत के लिए अगर हरा पेड़ काटते हैं तो काटने से पहले पेड़ से विनती करते हैं,

---

[150] हंस, अप्रैल 2010, पृ सं 57

[151] धूणी तपे तीर, पृ सं 228

पेड़ से माफी मांगते हैं । उसके बाद पेड़ की कटाई करते हैं । इस तरह की परंपरा को आदिवासी समुदायों में देख सकते हैं । उनका धर्म एवं संस्कृति दूसरों से मेल नहीं खाते हैं। आदिवासी प्रमुख रूप से दया एवं धर्म को अपने कार्याचरण में रखते हैं । बिना कारण से किसी को वह कष्ट नहीं देते हैं । जंगल की कटाई बहुत दुःखद मन से करनी ही पड़ती है । पेड़-पौधों को काटने के लिए उनके हाथ आगे नहीं आते हैं । पेड़-पौधों से आदिवासियों का जीवात्मक-संबंध जुड़ा हुआ है । इस तरह आदिवासी सांस्कृतिक-जीवन में धर्म, प्रकृति, वेश-भूषा, गीत, नृत्य, त्यौहार यह सब इसके अंतर्गत आते हैं । इस तरह इन लोगों की संस्कृति के माध्यम से उनके जीवन-विधान, रीति-रिवाज, रहन-सहन, भाषा के बारे में हमें जानकारी प्राप्त होती है । अब इनकी संस्कृति एवं रीति-रिवाजों के ऊपर संकट गहरा गया है ।

4.1.6 आर्थिक - जीवन -

किसी समाज का जीवन-स्तर उसकी आर्थिक-स्थिति पर निर्भर करता है । आदिवासियों का आर्थिक-जीवन प्रकृति पर आधारित है । ब्रिटिश-आगमन के पूर्व आदिवासी एवं भारत की आर्थिक-व्यवस्था सुरक्षित थी । वे व्यापार के नाम पर भारत आकर हमारे ऊपर ही शासन करने लगे । अन्ततः हमें गुलाम बना लिया । ब्रिटिश शासन काल में उनके नये-नये कानूनों की वजह से देश की आर्थिक विषमता तीव्र गति से बढ़ते जा रही थी । सरकार ने अपनी कूटनीति से नये-नये कानून बना कर आदिवासियों को जंगल में प्रवेश से रोक दिया । उनके अधिकार, स्वतंत्रता एवं जमीन को धोखे से छीन लिया । आदिवासी-समाज में आर्थिक- व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गयी । इस तरह पराधीन होकर आदिवासियों को अनेक तरह की परेशानियाँ एवं समस्याओं का सामना करना पड़ा। सरकार ने उनका शारीरिक-शोषण भी किया । इनकी आर्थिक-स्थिति के ऊपर लगान का भार ने इन्हें और कष्ट पहुँचाया । आदिवासी जिन इलाको में रहते हैं वहाँ खनिज खूब मिलता है । अंग्रेजों ने इन इलाकों में खनिज और कोयला के ऊपर अपना अधिकार कर इस संपदा को लूट लिया । इसके साथ-साथ उनको भूमिहीन करके उनकी संस्कृति से बेदखल कर दिया ।

4.1.6.1 ब्रिटिश कानूनों का आदिवासी जीवन पर प्रभाव -

अंग्रेजी सरकार ने अपनी आर्थिक-व्यवस्था की वृद्धि करने के लिए अनेक योजनाओं को अमलीजामा पहनाया था । जैसे- "दक्षिणी राजपूताना के पोलिटिकल एजेंट ने जो पत्र मेवाड़ के रेजीडेंट को भेजा उसमें यह भी लिखा कि गोविंद गुरू ने जो बीज जमीन में बोये, वे अब फल देने लगे हैं । आदिवासियों में यह चेतना पैदा होने लगी है कि राज द्वारा उन्हें हमेशा हीन भावना से देखा और उनके साथ अमानवीय व्यवहार किया गया । ..... सम्प-सभा के भगतों व कार्यकर्ताओं को डकैती, लूट व चोरी के झूठे मुकदमों में पुलिस द्वारा फंसाने के उदाहरण भी सामने आये हैं । यही नहीं, सम्प-सभा के धर्म के माध्यम से फैलती जा रही जागृति को रोकने के लिए जागीरदारों द्वारा पूजा-स्थलों पर स्थापित धूणियों व ध्वजों को उखाड़े जाने की अनेक घटनाएं आये दिन घटित हो रही हैं । सम्प-सभा के उपदेशों को सुनने वाले आदिवासियों को अपने कर्म-क्षेत्रों से देस-निकाला दिया जाता है ।"[152]

4.1.6.2 बेगार की समस्या -

आदिवासी समाज में ब्रिटिश शासन-काल में अधिकांश इलाकों में बेगार की समस्या दिखाई देती है । यदि सरकार को कोई काम की जरूरत थी तो उस काम को ठाकुर को सौंप दिया जाता था । ठाकुर आदिवासियों से यह काम पूरा करवाता था । जंगल में बाघों व तेंदुओं के सुरक्षित शिकार के लिए शिकारगाह एवं मोर्चों का निर्माण करना ऐसे ही काम थे । इन कामों को करने के लिए ठाकुर आदिवासियों के बीच आकर हुकूम देता था । जैसे- "हर परिवार से अच्छी मेहनत कर सकने वाला एक आदमी इस

[152] धूणी तपे तीर, पृ सं 327-28

काम में शामिल होगा। तुम्हारे लिए गमेती के कहने से मैं इतनी रियायत देता हूं, नहीं तो सारे मरद व औरतों से काम करवाता।"[153]

उपरोक्त उद्धरण से पता चलता है कि आदिवासी एक ऐसा समाज रहा है जो बिना मूल्य के जीवन भर बेगार करता आ रहा है। रचनाकार इस बेगार की समस्या का प्रतिरोध करते हैं।

4.1.6.3 ऋणग्रस्तता की समस्या -

आदिवासी समाज में कर्ज की समस्या भी दिखाई देती है। ये लोग कभी जरूरत पड़ी तो सूदखोर महाजन के पास से कुछ धन लेते हैं। अपनी गरीबी के कारण ये तुरंत धन वापस नहीं लौटा पातें। कुछ महिनों के बाद लिया हुआ धन तिगुना से ज्यादा हो जाता है क्योंकि ये लोग अशिक्षित हैं, उनकी धोखेबाजी में फँसकर अपनी जमीन, बैल एवं संपत्ति खो देते हैं। इस तरह का चित्रण भी इस उपन्यास में दिखाया गया है। जैसे- "सूदखोर, महाजनान कर्जा के झूठे-सच्चे कागद हिंदू और मुसलमान के नाम से बनाके रख छोड़ते हैं और झगड़ा करके उस सच्चे झूठे कर्जे में उन गरीबों के घर का माल असबाब व गाय, बैल, भैंस, बकरी वगैरहा और जो भी सामान होता है उसे कर्जे में वसूल कर लेते हैं।"[154]

उपरोक्त उद्धरण से पता चलता है कि- आदिवासी अपनी अज्ञानता एवं अशिक्षा के कारण सूदखोर के हाथों में शोषित होता रहा है। आदिवासी को जरूरत के समय कर्ज लेना पड़ता है यही कर्ज से पैसा लेना ही उनकी भूल होती थी। जीवनभर काम करने पर भी कर्ज से आदिवासी मुक्त नहीं हो पाते हैं। झूठे कागज, हिसाब दिखाकर सूदखोर पीढ़ी-दर-पीढ़ी आदिवासियों का शोषण करते रहते हैं। इस तरह के अन्याय का उपन्यासकार गोविंद गुरू पात्र के माध्यम से विरोध करते हैं। आदिवासी कर्ज की वजह से अपना

[153] धूणी तपे तीर, पृ सं 64

[154] धूणी तपे तीर,पृ सं 107

जमीन, घर, गाय, बैल. खोकर सूदखोर की गुलामी करता है। इस तरह कर्ज के नाम पर दादा से लेकर पोते तक सूदखोर शोषण करते रहते हैं।

4.1.7 राजनीतिक – चेतना से युक्त आदिवासी-जीवन -

राजनीति देश का महत्वपूर्ण अंग है। इसके आधार से ही देश का शासन चलता है। राज्य में रहने वाले हर मनुष्य का राजनीति से प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष संबंध होता है। इसके ऊपर देश की उन्नति निर्भर है। समाज का कोई भी क्षेत्र राजनीति से अछूता नहीं रह सकता है। राजनीति की जड़ें इतनी गहरी हैं कि उसे कोई नहीं उखाड़ सकता है। आजकल राजनीति मानव जाति के शासित करने वाली एक महत्वपूर्ण ताकत के रूप में प्रतिष्ठित हो चुकी हैं। इस राजनीतिक-चेतना का वर्णन हमें उपन्यासकार ने इस उपन्यास में गोविंद गुरू के माध्यम से दिखाया है। गोविंद गुरू के ऊपर दयानंद सरस्वती का प्रभाव दिखाई देता है। इसलिए उन्होंने आदिवासी समाज-सुधार के लिए अहिंसात्मक रूप में अनेक आंदोलन चलाए।

4.1.7.1 शिक्षा का महत्व -

गोविंद गुरू अपनी बातों से आदिवासियों के मन में चेतना उत्पन्न करता है। आदिवासियों के बीच खड़े होकर इस तरह कहते हैं कि अपना जीवन सुधार करने के लिए शिक्षा की आवश्यकता है। शिक्षा से ही आदमी ज्ञान अर्जित कर सकता है। क्या सही, क्या गलत को समझ सकता है। इसलिए पढ़ाई-लिखाई के महत्त्व को समझो। इस तरह गोविंद गुरू आदिवासियों को संबोधित करते थे। जैसे- “मैं स्कूल में नहीं पढ़ा, लेकिन इधर-उधर से आखर ज्ञान सीख लिया। तुम भी सीखो। बच्चों को पढ़ाओ। तभी वे समझदार बनेंगे। गांव-गांव में जो भी थोड़ा पढ़ा लिखा हो, उसका धर्म है कि अन्य लोगों को पढ़ाये। पढ़ाई घर के वातवरण से होती है इसलिए बड़े आदमी भी शिक्षा प्राप्त करें।

राजा, जागीरदार, हाकिम की बेगार मत करो । इनमें से किसी का भी अन्याय मत सहो । अन्याय का मुकाबला बहादुरी से करो ।”[155]

उपरोक्त उद्धरण से पता चलता है कि आदिवासियों को शिक्षा का ज्ञान दिलाने में भगत गुरूओं की महत्वपूर्ण भूमिका रही है । गोविंद गुरू बार - बार आदिवासियों से कहते हैं कि आप लोग शिक्षा का अर्जन करो, साथ-साथ अपने बच्चों को पढ़ाओ । शिक्षा के ज्ञान से ही क्या न्याय है, क्या अन्याय है, समझ सकते हैं । अन्याय का विरोध कर सकते हैं । इसके साथ-साथ गोविंद गुरू आदिवासियों को इस तरह संदेश दे रहे थे कि पढ़-लिखे लोग आदिवासी इलाकों में जाकर शिक्षा का प्रचार-प्रसार करें । राजाओं की बेगार मत करो, जहाँ अन्याय हो रहा है, वहाँ पर अन्याय के विरोध में आदिवासियों को आवाज उठाने की आवश्यकता है । इस तरह गोविंद गुरू अपनी वाणियों से आदिवासियों को जागृत कर रहे थे ।

4.1.7.2 नशापान का विरोध -

आदिवासी समाज में नशापन भी हमें दिखाई देता है । नशा आदमी को जानवर बना देता है, इसके साथ ही उसे कमजोर कर देता है । इसलिए गोविंद गुरू आदिवासियों को नशा से दूर रहने के लिए बार-बार कहता है । आदिवासियों द्वारा दारू के विरोध करने में, गोविंद गुरू के उपदेश की महत्वपूर्ण भूमिका है । जैसे- “दारू पीने से अक्ल भ्रष्ट होती है । दारू पीने से नशा होता है और नशा बुद्धि को नष्ट कर देता है । नशे में डूबा आदमी तंगे खाता है । किसी के घर में घुस कर ऊद-फैल करने लगता है । अपने बीबी-बच्चों पर गुस्सा करने लगता है और मारपीट पर उतर आता है ।”[156]

---

[155] धूणी तपे तीर,पृ सं 70

[156] धूणी तपे तीर,पृ सं 176

उपरोक्त उद्धरण से पता चलता है कि नशे के कारण आदमी की अक्ल किस तरह नष्ट होती है, विभिन्न परिवार के लोगों को किस प्रकार की परेशानियाँ उठानी पड़ती हैं इसे समझ सकते हैं । आदमी नशा का गुलाम बन जाता है । नशे की वजह से उसकी व्यवहार शैली बिगड़ जाती है । इसलिए गोविंद गुरू के उपदेश से आदिवासियों को जागृत करते हैं । आदिवासी-इलाकों में 'कलाल' दारू लाकर बेचता था । गोविंद गुरू के प्रभाव से ये लोग दारू खरीदना बंद कर देते हैं । इसके साथ-साथ गोविंद गुरू उपदेश देता है कि- आदिवासी महुआ के फूलों की दारू तैयार करके पीते हैं वह इसका भी विरोध करके आदिवासियों को समझाता है कि- महुआ के फूलों की दारू की जगह महुआ के फल खाँए । इस तरह फल खाने से स्वास्थ्य सुरक्षित रहेगा ।

4.1.7.3 बेगार - प्रथा का विरोध -

आदिवासियों से बेगार करवाना परंपरागत रूप धारण कर चुका था । अंग्रेज सरकार के काम या राजाओं के कामों के लिए आदिवासियों को इस्तेमाल करते थे । शिकारगाह बनाने के लिए आदिवासियों को बहुत मेहनत से काम करना पड़ता था, लेकिन उन समुदायों को पैसे नहीं मिलते थे । अपनी खेती एवं घर का काम छोड़कर उन समुदायों को बेगार करनी पड़ती थी । बेगार के खिलाफ जागरण की तैयारी निम्न रूप में हो सकती है- अच्छा काम बेगार में कर सकते हैं लेकिन जिस काम की आवश्यकता नहीं हैं, उस काम को बेगार में नहीं करना है । जैसे- शिकारगाह बनाने के लिए काम करने का आदेश राजा के लोग देते हैं । इस काम की वजह से किसको फायदा है ? इसे इस तरह समझने की आवश्यकता है । जानवरों की शिकार के लिए शिकारगाह बनाना, इसकी वजह से जानवरों को मारेंगे. यह तो पाप है, इस तरह के कार्यों को आदिवासियों से करवाना अनुचित लगा । इसलिए गोविंद गुरू आदिवासियों को संकेत करते हैं कि पापों में आप लोग भी हिस्सेदार बनना चाहते हो, अपने खेल के लिए किसी जीव का प्राण हरण करना भगवान की नज़र में सही है क्या ? इसलिए इस तरह के पाप-कार्यों के लिए

बेगार आप लोग मत करों । इस तरह के संदेश के माध्यम से वे आदिवासियों को जागृत करके बेगार के विरोध में आदिवासियों को खड़ा करते हैं ।

4.1.8 आदिवासी - विद्रोह -

आदिवासियों को जागृत करने के लिए गोविंद गुरू ने मानगढ़ पर्वत पर आदिवासियों को एकत्रित होने के लिए आदेश दिया । गोविंद गुरू को चमत्कारी बाबा समझकर बहुत सारे लोग मानगढ़ के ऊपर एकत्रित हुए । अंग्रेज सरकार का एक ही लक्ष्य था वह यह है कि- 'आदिवासी जागृत सभा' को भंग करना है । इसलिए गोलियां चलाना शुरू कर दिये । आगे इस आदिवासी आंदोलन ने फिर हिंसात्मक रूप ले लिया था- "गोविंद गुरू को रक्षा दल के सदस्यों की सुरक्षा में छोड़कर पूंजा ने एलान किया कि जब लड़ाई छिड़ ही गयी है तो जवाबी हमला करो !' गोविंद गुरू धूणी की ओर इकटक निगाह से देख रहे थे । उनके मन की थाह पाना कठिन था । अचानक उनके मुंह से स्वरचित गीत के बोल फूट पड़े-

मानगढ़ मारी धूणी है
भूरेटिया नी मानू रे....
नी मानू रे......."[157]

"हम इन्सान हैं
इन्सानी हकों के लिए मुहिम छेड़ी है
जियेंगे तो सम्मान से
मरेंगे तो सम्मान से !

बहादुर भगतो,
यह पीढ़ियों की लड़ाई है
लड़ाई जारी रहेगी

---

[157] धूणी तपे तीर,पृ सं 365

हाँ,

लड़ाई आरपार की..... ।"[158]

इस तरह आदिवासी की ओर से अपने मन की भावना को गोविंद गुरू ने बाहर प्रकट करके आदिवासियों को लड़ने के लिए और उत्तेजित किया । उनको अंत में यह समझ में आया कि धर्म के रास्ता से हटकर 'धूमाल' रास्ता ही सही है । इस दुःखद घटना के बाद गोविंद गुरू के बोल थे कि "हम इन्सानों के लिए ही नहीं, भगवान की रचना के लिए लड़ रहे हैं । यह रचना जंगल देवता की है, जंगल की संतानों की है जिसमें हम लोग हैं, जिनावर हैं, पखेरू हैं, दरख्त हैं, जड़ी-बूटियां हैं । ये सब भगवान की अच्छी संतानें हैं । तुम भैमाता के कुपूत हो । तुम्हें भगवान कभी माफ नहीं करेगा । यह साधू गोविन्द गिरी का वचन है । तुम को मेरी ओर, मेरे भगतों की आह लगेगी । ये शब्द गोविन्द गुरू के मन की गहराइयों से प्रस्फुटित हो रहे थे ।"[159]

कुल मिलाकर कहना न होगा कि 'धूणी तपे तीर' आदिवासी समाज के घोर शोषण और उनके दलन का जीवंत दस्तावेज है । जिसमें उनके ऊपर सदियों से हो रहे अन्याय को दिखलाया गया है । यह कहना गलत न होगा कि आदिवासी समाज की जो समस्याएँ सदियों पहले थीं, वही समस्याएँ आज भी हैं । केवल परिवर्तन इस रूप में हुआ है कि उनके दर्द, उन पर हो रहे जुल्म तथा उनकी समस्याओं से भारतीय समाज अब अवगत हो रहा है ।

4.2 'जंगल-जंगल जलियांवाला' में चित्रित आदिवासी-जीवन -

'जंगल-जंगल जलियांवाला' (यात्रा-वृत्तांत, 2008) हरिराम मीणा आदिवासी लेखक के द्वारा लिखा गया हिंदी में पहला यात्रा-वृत्तांत है । अगर सही दृष्टि से देखा जाय

---

[158] धूणी तपे तीर, पृ सं 371

[159] धूणी तपे तीर,पृ सं 374

तो आदिवासी लेखकों द्वारा लिखे गये यात्रा-वृत्तांत बहुत कम दिखाई देते हैं। इस यात्रा-वृत्तांत का लेखन-कार्य शोध के आधार पर पूर्ण हुआ है। इस यात्रा-वृत्तांत में तीन आदिवासी विद्रोहों की महत्वपूर्ण घटनाओं का वर्णन है। वे घटनाएँ इस प्रकार हैं-

1.मानगढ़,
2. भूला-बिलोरिया,
3. पालचित्तरिया।

इस यात्रा-वृत्तांत के लेखन-कार्य शुरू करने से पहले रचनाकार ने स्थानीय आदिवासियों से मिलकर इन घटनाओं के बारे में जानकारी प्राप्त की है। इसके साथ-साथ आदिवासी घटनाओं से जुड़े लोगों से इन्होंने बातचीत की। इसके अलावा बुजुर्गों से घटनाओं के बारे में पूछताछ करके जानकारी प्राप्त की है। इन आदिवासी घटनाओं की जानकारी प्रक्रिया में, एक-के-बाद एक-एक कर आदिवासी बलिदान की तीन घटनाओं का पता चला। आदिवासियों के द्वारा घटित महत्वपूर्ण घटनाओं के रूप में 'मानगढ़', 'भूला-बिलोरिया' और 'पालचित्तरिया' हमारे सामने आये हैं।

4.2.1 'मानगढ़' में चित्रित आदिवासी - जीवन -

यात्रावृत्तांतकार ने सबसे पहले अपनी यात्रा के दौरान गोविंद गुरू के नेतृत्व में घटित मानगढ़ आदिवासी आंदोलन के बारे में जानकारी प्राप्त की है। इस घटना के बारे में लेखक ने नाथूराम जी के माध्यम से जानकारी प्राप्त की है। 'मानगढ़ बलिदान' के बारे में जानकारी प्राप्त करने के तत्पश्चात् उन्होंने लेखन-कार्य शुरू किया। 'मानगढ़' आदिवासी आंदोलन के तत्पश्चात् 'भूला-बिलोरिया' आदिवासी विद्रोह और आंदोलन से जुड़े नानजी और सुरत्या के माध्यम से जानकारी प्राप्त की है। इसके साथ-साथ मोतीलाल तेजावत के नेतृत्व में घटित 'पालचित्तरिया' आदिवासी विद्रोह के बारे में जानकारी सुरेश भाई के माध्यम से प्राप्त की है। इस तरह इन तीन आदिवासी घटनाओं के बारे में संपूर्ण ज्ञान प्राप्त

करने के पीछे नाथूराम, नानजी, सुरत्या एवं सुरेश भाई का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इनके अलावा भी बहुत सारे आदिवासी बुजुर्गों और रचनाकार के मित्रों का इस रचना-प्रक्रिया को सफल बनाने में विशिष्ट योगदान रहा है।

खासतौर पर देखा जाय तो इन तीन आदिवासी महत्वपूर्ण घटनाओं में करीब 3500 आदिवासी शहीद हुए थे। शर्म की बात है कि - इतनी बड़ी घटनाओं का ज़िक्र इतिहास में कहीं देखने को नहीं मिलता है। इस तरह के कई आदिवासी-विद्रोह, आंदोलन, घटनाएँ के बारे में हम लोग सुन सकते हैं लेकिन इतिहासों में आदिवासियों द्वारा घटित, यथार्थपूर्ण घटनाओं का ज़िक्र कहीं पर नहीं पाते हैं! इससे पता चलता है कि इतिहासकारों ने आदिवासियों के प्रति पक्षपात रखकर इतिहास को अंज़ाम दिया है। इसलिए इतनी बड़ी-बड़ी घटनाओं और आदिवासी बलिदानों को इतिहास में जगह नहीं मिली। इस तरह आदिवासियों के प्रति हो रहे अन्याय को देखकर, रचनाकार ने अपनी मानसिक वेदना को अपने लेखन के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। रचनाकार इतिहासकारों से अपने लेखन के माध्यम से आग्रह कर रहे हैं कि आदिवासियों द्वारा घटित यथार्थपूर्ण घटनाओं का वर्णन अपने लेखन में प्रस्तुत करें। अब तक जितनी भूल, त्रुटि हुई है, उन सभी गलतियों को सुधारने की आवश्यकता है। इस तरह रचनाकार अनुरोध करते हैं। सही साहित्य एवं सही इतिहास उचित रूप में सही ढंग से सामने लाने की आवश्यकता है।

(i) आदिवासी लोक-विश्वास - आदिवासी अपनी परंपराओं में विश्वास रखते हैं। उनके पुरखों ने जिस परंपरा को अपनाया उसे आज तक वे सुरक्षित रूप में अपनाते आ रहे हैं। आदिवासी पुरखों ने जिन वस्तु, जीवों में अपना विश्वास रखा उसी विश्वास को नयी पीढ़ी के लोग अपनाते आ रहे हैं। यहाँ पर आदिवासी-विश्वास को हम 'सूरा-बावड़ी' के माध्यम से समझ सकते हैं। जैसे- "जब हम उदयपुर से बांसवाड़ा आते हैं तो उदयपुर से करीब बीस किलोमीटर जयसमन्द झील आती है। उससे ठीक दो किलोमीटर पहले सड़क से दो फर्लांग दूर पहाड़ी स्थल पर बावड़ी है जिसका नाम है सूरा-बावड़ी। कहते हैं जब इधर के आदिवासी किसी संघर्ष के लिए एकत्रित होते थे तो लड़ाई से पहले 'सूरा-बावड़ी' का

पानी पीकर चलते थे । यह कसम खाते थे कि लड़ाई में हार कर नहीं लौटेंगे, चाहे शहीद ही क्यों न हो जायें । शौर्य, संघर्ष और जीत के प्रति गहरी निष्ठा के भाव के कारण बावड़ी को 'सूरा-बावड़ी' कहते हैं ।"[160]

(ii) आदिवासी - चेतना -

गोविंद गुरू 'संप-सभा' के नाम से आदिवासियों को एकत्रित करके उन्हें जागृत करता है । आदिवासियों के अंदर चेतना फैलाने में 'संप-सभा' भी महत्वपूर्ण भूमिका रही है । गोविंद गुरू आदिवासियों के बीच रहकर बार-बार कहते रहते हैं कि आप सभी लोग मिलजुलकर रहें । सही राह पर चलें । बुरे काल में दूसरों का सहयोग करें । एक-दूसरे का हाथ कभी मत छोड़ना । इसके साथ-साथ गोविंद गुरू, संदेश को गाँव-गाँव तक सुनाकर आदिवासियों को जागृत करते हैं । जैसे- "गोविन्द गुरू धूणी के पास बैठ जाते हैं । उनके अगल बगल में पूँजा धीरजी और कुरिया दानोत बैठे हैं । पास से समूहगान की आवाज आती है-

"सब हली-मली ने संप में रे जो रे मारा भाई
भगती ने भणती कर जो रे मारा भाई
वालम ऋषि मावजी महाराज ने
गोविन्द गुरू ना उपदेश हुणजे रे मारा भाई ।
घणी मोटी है दुनियाँ रे मारा भाई ।
तमे हलीमली ने रे जो रे मारा भाई
घणा मोटा थारा हारू
खोटु काम करो नखे रे मारा भाई
गामे-गामे जन जागरती नो काम करजो रे मारा भाई.... ।"

गीत का भावार्थ इतना है कि "सब हिलमिल कर संप सभा में रहो । इक दूजे का हाथ पकड़ कर चलना । भक्ति के माध्यम से नव निर्माण करना । मावजी महाराज और

[160] जंगल जंगल जलियांवाला, पृ सं 21

गोविन्द गुरू की सीख पर चलना। यह दुनियाँ काफी बड़ी है, तुमसे संभली नहीं जायेगी। बस, खोटा काम कोई भी मत करना और गाँव में जन जागरण करते रहना।"[161]

(iii) अहिंसा का मार्ग -

आदिवासियों पर भगतों का व्यापक प्रभाव पड़ा था। गोविंद और भगतों की बातों को वचन के रूप में वे लोग अनुसरण कर रहे थे। गोविंद गुरू ने जो रास्ता दिखाया था आदिवासी-समुदाय उसी राह पर चल रहे थे। इसके पीछे कारण यह था कि- भगत को आदिवासी भगवान का स्वरूप मानते थे। गोविंद गुरू आदिवासियों को बार-बार संबोधित करता है कि हिंसा कदापि नहीं करना। अहिंसा के मार्ग पर चलकर ही सफलता प्राप्त करेंगे। जैसे- "गोविन्द गुरू धार्मिक आस्थाओं में विश्वास करने वाले व्यक्ति थे। वे एक सन्त के साथ क्रान्तिकारी भी थे। उनके मन में आदिवासियों के स्वतंत्र और समृद्ध भविष्य का एक सपना था। चाहे आदिवासियों के भीतर विद्रोह के लिए कितने ही दहकते अंगारे क्यों न हों, फिर भी गोविन्द गुरू की योजना में हिंसक विद्रोह की रणनीति कहीं नहीं थी। आदिवासियों की कितनी ही विशाल भीड़ क्यों न हो, उस पर गुरू का पूरा नियन्त्रण रहता था। उनके नेतृत्व और मौजूदगी में कहीं कोई अप्रिय घटना का प्रश्न ही पैदा नहीं होता। हाँ, आदिवासी लोग अपने धनुष-बाण एवं अन्य छोटे-छोटे हथियार हमेशा साथ रखते थे। यह उनकी विशेष तैयारी न होकर परम्परा थी।"[162]

(iv) आदिवासी - आंदोलन -

गोविंद गुरू के आदेश के अनुसार आदिवासी मानगढ़ पर्वत पर एकत्रित हुए। इस सभा का मूल उद्देश्य यह था कि- आदिवासियों की समस्याओं का समाधान किया जाये। इसे देशी सामंतों एवं अंग्रेजी सरकार दोनों ने अपने खिलाफ बगावत समझा। इस आंदोलन का बहुत ही निर्ममता से दमन किया गया। जैसे - "घड़ी भर में लाशों का ढेर लग गया। लहू लथपथ तड़फती देह। भोले-भोले औरत-मर्द और मासूम बच्चे इधर-उधर

---

[161] जंगल जंगल जलियांवाला, पृ सं 27

[162] जंगल जंगल जलियांवाला, पृ सं 29

भागते दिखे । लुढ़कने लगे पठार पर और घाटी की गहराइयों में । खून से लथपथ अंचल के पत्थर, मिट्टी और हरियाली । तीर-कमानों तक हाथ न पहुँच पाये, बीमार, बूढ़ों व बच्चों को न छुपा पाये, वे संघर्षशील जन अपने आपको भी न संभाल पाये और भून दिये गये अकस्मात् परिन्दों के झुण्ड की तरह ।"[163]

निर्दोष आदिवासियों की जायज माँगे और शांतिपूर्ण सभाओं पर प्रतिबंध लगा दिये गए । साहित्य और इतिहास में यह घटना दर्ज नहीं थी । उसे इतिहास और आख्यान का हिस्सा बनाकर, साहित्य के अंतर्गत लाने का रचनात्मक-कार्य हरिराम मीणा ने किया है ।

4.2.2 'भूला – बिलोरिया' में चित्रित आदिवासी - जीवन -

अंग्रेजों के विरोध में मोतीलाल तेजावत के नेतृत्व में आदिवासियो की पंचायत बैठी थी । आदिवासियों को एकत्रित करने के पीछ कारण यह था कि अंग्रेजों द्वारा किया जाने वाले शोषण एवं अत्याचार में आदिवासी कई तरह से पिस रहे थे । इसलिए उन समुदायों को समस्याओं से मुक्त होने के लिए आंदोलन की आवश्यकता थी । जैसे-"पाँच मई, सन् 1922 के दिन लीलूड़ी-बड़ली तलाई पर अंग्रेजी और देशी रियासती शोषण एवं अत्याचारों के विरोध में चार-पाँच हजार आदिवासी एकत्रित हुए थे । मोतीलाल तेजावत की अगवाई में पंचायत चल रही थी । सरकार के लिए यह आदिवासी विद्रोह था । हथियारबन्द फौजें आ धमकीं । भीड़ पर अन्धाधुन्ध गोलियाँ बरसायीं । सैकड़ों आदिवासी हताहत हुए । मई के महिने में तलाई सूखी थी । भील और गिरासिया आदिवासियों के लहू से तलाई लाल हो गयी । इधर-उधर बचते-भागते आदिवासियों पर बन्दूकों से गोलियाँ दागी गयीं । गरम-गरम भोले और बेबस खून के धारे सपाट पठार, ऊबड़-खाबड़ पहाड़ियों और घाटियों में बह निकले थे ।"[164]

---

[163] जंगल जंगल जलियांवाला, पृ सं 31

[164] जंगल जंगल जलियांवाला, पृ सं 39-40

नानजी की आँखों देखी घटना को लेखक ने बहुत ही संजीदगी के साथ अभिव्यक्त किया है। दृश्यों को भाषा में व्यक्त करना बड़ी कठिन चुनौती है। "1906 नानजी का जन्म बैठता है तो इस हिसाब से उन्हें छियानवे साल का होना चाहिए इस बरस, अर्थात 2002 में। भूला-बिलोरिया की घटना सन् 1922 में हुई तब नानजी सोलह बरस के थे। पता चला, घटना के वक्त लीलूड़ी-बड़ली की पंचायत में तो मौजूद नहीं था, पर वहीं पास की टेकरी पर बकरियाँ चरा रहा था। उसने पंचायत में बोलने वालों की आवाजें सुनीं। आदिवासी चौतरफा से आये थे। काफी बड़ा मजमा था। एकदम गोलियों की आवाज आयी और हो हल्ला....यह सब उसने देखा और सुना। बकरियाँ छोड़कर वह अपने घर की ओर भागा। गाँव में अफरा-तफरी मची हुई थी। घटना दोपहर से पहले की बतायी। दोपहर बाद गाँव में आग लगा दी गयी। बाड़ों और घरों में बन्द मवेशी जल मर गये। कुछ रस्सी तुड़ाकर भाग निकले। कुछ अन्य औरत-मर्द-बच्चे भी आगजनी की चपेट में आये।"[165] उपरोक्त उद्धरण से पता चलता है कि- कोई भी स्वाधीनता-संग्राम की घटना, अपनी आँखों से देखकर, प्रस्तुत करने में कितना भावुक हो जाता है। आदिवासियों के बलिदान का इस रूप में वर्णन करके लेखक ने आधुनिक भारतीय स्वाधीनता-संग्राम में आदिवासियों की भूमिका को दर्ज करके ऐतिहासिक महत्व का काम किया है। परंपरागत इतिहास-लेखन में आदिवासियों की भूमिका को अदृश्य रूप में रखा था। यह कार्य एक साथ साहित्य और इतिहास दोनों की भूलों को दुरूस्त करता है।

4.2.3 'पालचित्तरिया' में चित्रित आदिवासी - जीवन- "अन्ततः आदिवासी चेतना और संघर्ष की राह पर चल पड़े। उन्हीं के नेतृत्व में पालचित्तरिया (गुजरात) काण्ड हुआ, जिसमें 1200 आदिवासी 7 मार्च, 1922 को शहीद हुए थे। वहाँ तेजावत के पैरों में गोली लगी थी। संघर्ष नायक कहाँ चुप बैठने वाला था। इधर आ गया और यहाँ संघर्ष

[165] जंगल जंगल जलियांवाला, पृ सं 47

का बिगुला बजा दिया। महात्मा गाँधी तेजावत की विद्रोह की शैली का विरोध करते थे। उन्हीं के कहने से सन् 1929 में तेजावत ने ईडर रियासत में आत्मसमर्पण कर दिया।"[166]

आदिवासी आंदोलन को दबाने के लिए सबसे पहले नेतृत्व करने वाले को सरकार अपने कब्जे में ले लेती थी। अचानक हमला कर देती थी। कोई सूचना नहीं देकर आदिवासियों पर गोली चलाती थी। इसके साथ-साथ आदिवासियों का नेतृत्व करने वाले मोतीलाल तेजावत को गिरफ्तारी में सहायता करने वाले को 500 रूपये पुरस्कार दिया जायेगा इस तरह का एलान अंग्रेज सरकार करती थी। धन के लालच में कोई-न-कोई आकर धोखेबाजी से तो नेतृत्व करने वाले नायक को पकड़वा ही देते थे। इस तरह की कूटनीति अपनाकर अंग्रेज सरकार ने आदिवासी वीरों की हत्या की थी। दूसरा तरीका भी अपनाती थी गोली चलाना कभी संभव नहीं था तो आदिवासी वीरों को गिरफ्तार करके बाद में उन पर राजद्रोह का आरोप लगाकर फाँसी दे दी जाती थी। इस तरह के आदिवासी-आंदोलनों में, हजारों आदिवासी शहीद हुए थे। उससे कई गुणा घायल हुए थे। आदिवासियों के वास्तविक आंदोलन का जिक्र एवं विवरण कहीं पर देखने को नहीं मिलता है। इस तरह के बड़े-बड़े आदिवासी बलिदानों को लेकर लेखक, मीडिया एवं इतिहासकार अनभिज्ञ बने हुए हैं। इन सबको प्रकाश में लाने का यह प्रयास 'जंगल-जंगल जलियांवाला' में बखूबी हुआ है।

4.3 'साइबर सिटी से नंगे आदिवासियों तक' में चित्रित आदिवासी - जीवन –

'साइबर सिटी से नंगे आदिवासियों तक', यात्रा-वृत्तांत, वर्ष-2012 में हरिराम मीणा ने हैदराबाद से लेकर अंडमान के नंगे आदिवासियों तक का विवरण समाज के सामने प्रस्तुत किया है। इस यात्रा के दौरान हरिराम मीणा ने बहुत सारा ज्ञान हासिल किया था। इस यात्रा-वृत्तांत में आदिवासी समस्याओं के साथ-साथ प्रकृति एवं मानवेतर

166 जंगल जंगल जलियांवाला, पृ सं 61

प्राणी की समस्याओं के बारे में भी वर्णन किया गया है। मुख्य रूप से इस रचना-यात्रा में हरिराम मीणा ने हैदराबाद शहर के नामकरण की कथा के साथ-साथ 'चेन्नई स्नेक पार्क' के महत्व को समाज के सामने लाने का स्तुत्य कार्य किया है । इस यात्रा के माध्यम से यात्रावृत्तांतकार ने शहरी जीवन से लेकर आदिवासी-जीवन के तहखानों तक पहुँचने की कोशिश की है।

प्रमुख रूप से देखा जाय तो इस यात्रा-वृत्तांत में अण्डमान के आदिवासियों की जीवनशैली उभरकर सामने आई है। हरिराम मीणा ने सरदार बख्तावरसिंह के सहयोग से अण्डमान द्वीप समूह के आदिवासियों तक पहुँच बनायी थी। अण्डमान द्वीप समूह में 'ग्रेट अण्डमानी', 'ओंग', 'जारवा' एवं 'सेंटेनली' चार आदिवासी समुदायों को देख सकते हैं। इसमें सेंटेनली और जारवा आदिवासी समुदाय बाहरी लोगों से अभी तक नहीं जुड़ पाये हैं। हरिराम मीणा ने अपने पर्यटन के दौरान अण्डमान आदिवासी समुदायों को करीब से देखा। उन समुदायों की समस्याओं को अपनी आँखों से देखा। अभी भी अण्डमान के आदिवासी नग्नवास्था में जिंदगी जी रहे हैं। इस तरह उन समुदायों को देखकर हरिराम मीणा ने अपनी मनोवेदना को अभिव्यक्त किया है।

यात्रावृत्तांतकार ने इस यात्रावृत्तांत में अण्डमान द्वीप में रहने वाले आदिवासी समुदायों के ग्रेट अण्डमानी, ओंग, जारवा एवं सेंटेनली इन आदिवासियों की जीवन-शैली, खान-पान, विश्वास, परंपरा, शिकार, पूजा-पाठ, शोषण एवं अस्तित्व आदि का वर्णन यथार्थपूर्वक ढंग से प्रस्तुत किया है।

अण्डमान के आदिवासी इलाकों में लेखक ने प्रवेश करके उनकी समस्या एवं शोषण को अपनी आँखों से देखा। इस तरह यात्रा के दौरान जिन-जिन समुदायों को देखा, जिस समुदाय की जीवन-शैली को देखा, जिन घटनाओं को देखा एवं विश्वासों के बारे में सुना, उन सभी को अपने लेखन के माध्यम से समाज के सामने प्रस्तुत कर दिया है। हरिराम मीणा पर्यटन के दौरान अण्डमान के आदिवासियों की संस्कृति, सभ्यता, जीवन-शैली एवं खान-पान से अवगत होने लगे। इस पर्यटन के पश्चात् लेखक इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि-

इस दुनिया में सबसे पिछड़ा तबका के रूप में अण्डमान के आदिवासियों को देखा जा सकता है।

यात्रावृत्तांतकार हमेशा से आदिवासियों की समस्याओं को लेकर चिंतित रहे हैं। आदिवासियों के जीवन में सुधार लाने के लिए निरंतर, संघर्ष करते रहे हैं। विकास योजनाएँ, आदिवासी समुदायों तक नहीं पहुँच पा रही है सबसे पहले आदिवासियों से जुड़कर उन समुदायों को समझाने के लिए कोई तैयार नहीं है। रचनाकार इस तरह अनुरोध करता है कि - आदिवसियों से समझौता के बाद विकास की प्रक्रिया को लागू किया जाय। आदिवासियों के जीवन से बिना जुड़े उनके नामों पर विकास योजनाएँ कितनी भी बनायें सब-की-सब व्यर्थ हैं। रचनाकार आदिवासियों की मानवीय गरिमा की रक्षा के लिए लेखन के द्वारा सदैव सक्रिय भूमिका निभाते आ रहे हैं।

4.3.1 अण्डमान के आदिवासियों का जीवन - विधान -

बख्तावरसिंह की बातों से अंडमान के आदिवासियों के बारे में समझा जा सकता है। अण्डमान द्वीप में रहने वाले आदिवासियों की जीवन-शैली को देखकर डर लगता है। जारवा एवं सेंटेनली जनजाति के लोग दयनीय स्थिति में जी रहे हैं। इस द्वीप में रहने वाले आदिवासी बाहरी समाज से जुड़े नहीं हैं। बाहर के आदमी उनके इलाकों में प्रवेश करेगा तो वे उनका शिकार करते हैं। उन समुदायों को भयानक जानवरों से भी डर नहीं है लेकिन इन्सान को देखते ही उन्हें डर लगता है इसलिए कोई आदमी दिखेगा तो वे उन पर हमला कर देते हैं। इसके पीछे कारण जरूर रहा होगा। आदमी को देखकर इन समुदायों को शक होता है कि यह जरूर हमारे साथ विश्वासघात करने को आया है। इस तरह समझ कर बाहरी लोगों पर हमला करते हैं। जैसे- “जारवा और सेंटेनली आदिवासियों से तो आज भी दोस्ती मुश्किल है। हाँ, जारवा तो फिर भी खासकर तीरूर क्षेत्र में पर्यटकों के नजदीक आने लगे हैं। बन्दरों की तरह सामान छीन लेते हैं। गाड़ियों की छत या बोनट पर बैठ जाते हैं और उन्हें उतारना बड़ा मुश्किल होता है। किन्तु

सेंटेनली तो अभी भी अलग-थलग और सबसे ज्यादा हॉस्टाइल हैं। उन्हें देखना असम्भव-सा है। हम जैसों को देखते ही तीर-कमानों से हमला करते हैं।"[167]

अंडमान द्वीप समूह के आदिवासी, मुख्यधारा या सभ्यता के साथ जुड़ नहीं पाये हैं। इसका कारण यह नहीं है कि वे मुख्यधारा से जुड़ना नहीं चाहते हैं बल्कि मुख्यधारा का उदासीन रवैया उनके प्रति रहा है । उनके समाज-मनोविज्ञान को पकड़ने में नीति-निर्माताओं एवं स्थानीय प्रशासन से चूक हुई है । अतः उन्हें विकास की धारा के साथ जोड़ना है तो उनके विश्वास को अर्जित करना पड़ेगा।

जैसे- "नाव जब भी उन टापुई तटों के निकट जाती जहाँ ट्राइबल्स होते और देख लेते तो वे निश्चित रूप से जहरीले-नुकले बाणों से हमला करते। छुप-छुप कर उनके लिए कपड़े, खाद्य सामग्री एवं अन्य वस्तुएँ तट पर फेंक आते। कई-कई बार तो तटीय पानी ही में इस सामान को पटककर भाग लेते । 'ऊई....ऊई....ऊई' करते आदिवासी आते और सामान झपटते, ले जाते।"[168]

उपरोक्त उद्धरण से पता चलता है कि आदिवासी ने आदमी को ही अपना शत्रु माना है। उन समुदायों के बीच कोई अकेला आदमी नहीं जा सकता है। उन समुदायों को देखने को जाने वाले पर्यटक खाद्य-पदार्थ लेकर जाते हैं। पर्यटकों को देखते ही आदिवासी 'ऊई....ऊई' करते एकजुट होकर आते हैं, सामान झपटकर ले जाते हैं । पर्यटक उन के लिए, जानवरों की तरह खाने की वस्तुएँ फेंकते हैं । इस तरह की घटना को लेकर यात्रवृत्तांतकार अपनी चिंता को अभिव्यक्त किया है । इस उद्धरण का सार यह है कि आदिवासियों के साथ एक मनुष्य की तरह व्यवहार किया जाये।

इस दुनिया में आदमी को अपना जीवन चलाने के लिए जिन चीजों की आवश्यकता होगी, उन सभी को प्राप्त कर लेता है । इस धरती पर किसी भी वर्ग, समुदाय को ले

---

[167] साइबर सिटी से नंगे आदिवासियों तक, पृ सं 70

[168] साइबर सिटी से नंगे आदिवासियों तक, पृ सं 71

लीजिए । रहने के लिए घर, पहनने के लिए कपड़े, खाने के लिए कुछ-न-कुछ जुगाड़ हमें दिखाई देता है । लेकिन इस धरती पर बिना भोजन, बिना कपड़े, बिना आवास के खुली जगहों में जीवन जीने वाले सिर्फ आदिवासी वर्ग, समुदाय ही हमें देखने को मिलता है । आदिवासी समुदाय प्राचीन काल से लेकर वर्तमान तक दयनीय जीवन जीता आ रहा है । एक आदमी को जिन चीजों की आवश्यकता होगी, उनमें से एक भी चीज वहाँ की पिछड़ी जनजातियों के पास नहीं है । जैसे- "जारवा एवं सेंटेनली तो अभी भी नग्नावस्था ही में रहते हैं ।"[169]

उपरोक्त उद्धरण से अण्डमान द्वीप समूह में रहने वाले जारवा एवं सेंटेनली जनजातियों की जीवन-शैली, जीवन-विधान, उन समुदायों की स्थिति, व्यवहार-शैली, खान-पान के बारे में समझ सकते हैं । इन समुदायों को रहने के लिए आवास नहीं है । उनके शरीर को ढकने के लिए वस्त्र नहीं है । जंगलों में फूल-पत्ते, फल, कच्चा माँस का वे सेवन करते हैं । अभी भी ये लोग नग्नवास्था में जानवरों की तरह जीवन बिता रहे हैं । क्या यह हमारे सभ्य होने पर तमाचा नहीं है कि हमने उन्हें विकास की राह से जोड़ा ही नहीं । लोकतंत्र एवं मानव की गरिमा पर यह बदनुमा दाग की तरह है, जिसको पोंछने का कार्य हम सबको करना चाहिए ।

ग्रेट-अण्डमानी जनजाति, गर्भवती स्त्री के लिए किस प्रकार की परंपरा को अपनाते हैं । प्रसव-पीड़ा कम करने के लिए किस तरह के पारंपरिक-चिकित्सा को अपनाते हैं । प्रसव के समय किन-किन वस्तुओं को चिकित्सा के रूप में इस्तेमाल करते हैं । प्रसव के बाद किस तरह का कार्य करते हैं । बच्चा का नामकरण किस तरह किया जाता है । इस तरह के तमाम विषयों के बारे में जानकारी निम्न उद्धरण के माध्यम से समझ सकते हैं । जैसे- " 'ग्रेट अण्डमानी' जनजाति के लोग गर्भवती स्त्री को अलाव के पास बनी झोंपड़ी में (प्रारम्भ में झोंपड़ी ऐसे ही अवसरों के लिए बनायी जाती होगी । अब यह जनजाति काफी हद तक स्थायी होती जा रही है ।) रखते हैं ताकि, उसे लगातार गर्म वातावरण मिलता रहे । प्रसव के समय गर्भवती महिला के पास कोई पुरूष सदस्य नहीं रहता ।

[169] साइबर सिटी से नंगे आदिवासियों तक, पृ सं 71

केवल बुजुर्ग स्त्रियाँ ही देखभाल और प्रसव में मदद करती हैं। प्रसव वेदना कम करने के लिए पत्थर के टुकड़े को गर्म करके किसी कपड़े में लपेट (यह वर्तमान स्थिति है। जब कपड़े नहीं थे तब क्या करते थे पता नहीं) कर पेट पर रखकर सेंक किया जाता है। नवजात की नाभिनाल को काटने के लिए शीशे के टुकड़े का इस्तेमाल किया जाता है। पहले समुद्री जन्तु-कवच (सी-शेल) को प्रयोग में लाया जाता था। एण्टीसेप्टिक के रूप में पांडु मिट्टी का लेप किया जाता है जिसे 'टोलोडू' कहते हैं। नाभिनाल को किसी पत्ते में लपेट कर प्रसूति-झोंपड़ी के पास जमीन में गाड़ दिया जाता है। गर्भावस्था तथा प्रसव के पन्द्रह दिनों बाद तक उस स्त्री को चर्बीयुक्त खाद्य सामग्री की पाबन्दी होती है। साथ ही उससे श्रम भी नहीं कराया जाता। बच्चे का नाम जन्म से पूर्व ही रख लिया जाता है।"[170]

उपरोक्त उद्धरण के माध्यम से हम अंडमान की ग्रेट अंडमानी जनजाति की बारे में जानकारी प्राप्त कर पाते हैं। आधुनिक मनुष्य की विकासयात्रा के मूल में क्या आदिम मनुष्य का यह परंपरागत ज्ञान भूमिका नहीं निभाता ? यह सवाल हमारे सामने यात्रावृत्तांतकार छोड़ देते हैं। आदिम मनुष्य भी सामूहिकता और प्रकृति आधारित जीवन के मध्य संतुलन बनाकर जीता आया है। उसने अपने निकट के परिवेश को बारीकी से पढ़ा है।

अंडमान के आदिम आदिवासियों की विश्वास-प्रणाली पर विचार करना तर्कसंगत होगा। मृत आदमी की आत्माएँ, आदिवासी इलाकों में आस-पास घूमती रहती है। ऐसा इन लोगों का विश्वास है। और यहाँ रहने वाले आदिवासी अपनी रक्षा के साथ-साथ, टापूओं की रक्षा करने के लिए प्रार्थना किस तरह अपने पुरखों से करते हैं। आदिवासी क्यों मनुष्य के साथ-साथ जानवरों की खोंपड़ियों को माला के रूप में धारण करता है ? इस तरह के अनजान विषयों के बारे में निम्न उद्धरण से समझ सकते हैं। जैसे- "धार्मिक दृष्टि से 'ग्रेट अण्डमानी' पुनर्जन्म में विश्वास करते हैं। और इसलिए शव को जलाने की बजाय दफनाते हैं। इनकी मान्यता है कि मरने के बाद इनके पूर्वज इनके आसपास ही

---

170 साइबर सिटी से नंगे आदिवासियों तक, पृ सं *77-78*

मृतात्माओं के रूप में विचरण करते रहते हैं । इसलिए ये उनकी प्रार्थना करते रहते हैं अपनी सहायता के लिए । ये 'एनीमिज्म' में विश्वास करते हैं । ये प्रेतात्माओं के अस्तित्व को मानते हैं । प्रायः खोपड़ियों, कछुआ के खोल और जंगली सुअर को खाना बनाने के स्थान पर बाँध कर रखते हैं । इनका विश्वास है कि ऐसा करने से शिकार उनके काबू में आसानी से आ सकता है । अन्यथा, शैतान शिकार को दूर ले जाएगा और वे भूखे मर जाएँगे ।"[171]

उपरोक्त कथन से पता चलता है कि- आदिवासी पुरखों ने जो परंपरा अपनाई उसी परंपरा को आज भी, आचरण करके उस परंपरा को हजारों सालों से ये लोग संरक्षित करते आ रहे हैं । अपने पुरखों ने जिस विषय, वस्तु, जन्म-पुनर्जन्म, भूत-प्रेत, आत्मा-परमात्मा पर विश्वास रखते हैं उसी तरह वर्तमान में वे भी उस परंपरा को आचरण करते हुए नज़र आयेंगे । अपने पुरखों की आत्माओं से विनती करते हैं कि- उनके समुदायों की रक्षा करें । इसके साथ-साथ जानवरों की खोपड़ी को माला के रूप में पहनते हैं । इसके पीछे कारण यह है कि- शिकार उनके आस-पास आये तब जाकर उनका पेट-भर सकता है। कभी-कभी जानवरों को शैतान दूर भगा देता है । इस वजह से उन्हें भूखों मरना पड़ता है। इस तरह का 'पारंपरिक प्रगाढ़ विश्वास' आदिवासी समुदायों में देखने को मिलता है ।

'जारवा' समुदाय का सदस्य मुख्यधारा के समाज से जुड़ने के पश्चात् उसे किस तरह के संकटों का सामना करना पड़ा । अपने पवित्र हरियाली भरे वातावरण से कटकर बाहर के नये वातावरण एवं खान-पान से जुड़ने की वजह से उसके शरीर पर किस तरह का असर पड़ा । अंग्रेजी दवाइयों ने उस जारवा आदमी के शरीर पर किस प्रकार नकारात्मक प्रभाव डाला । जैसे- "हॉस्पिटल में एक डॉक्टर ने हमें बताया कि 'एन मे' दस साल से अधिक नहीं जिएगा । यह 'शॉकिंग न्यूज' सुन कर मैं चौंका और आगे पूछने पर उन्होंने बताया कि जारवा लोग अभी भी प्राकृतिक भोजन खाते हैं तथा जंगली सुअर एवं

---

171 साइबर सिटी से नंगे आदिवासियों तक, पृ सं 79

समुद्री प्राणियों का माँस और नारियल। वे पका हुआ भोजन नहीं खाते। उनका 'बॉडी सिस्टम' इसी के अनुरूप है। एन मे हमारा खाना खाने लगा। तेल-मसाले और नमक आदि से युक्त भोजन कई-कई दिनों तक खा लेने से उसका 'सिस्टम' बिगड़ गया है। वह अक्सर बीमार रहने लगा है। ऊपर से इलाज और अंग्रेजी दवाओं का कुप्रभाव उसके शरीर को कमजोर करने लगा है।"[172]

उपरोक्त उद्धरण से पता चलता है कि- आदिवासी अपने कबीले से कटकर जी नहीं सकता है। यदि वह अपने कबीले के वातावरण से कटकर, नये वातावरण में प्रवेश करता है तो भी उस शहरी वातावरण में उसका शरीर साथ नहीं दे पाता। अंडमान के आदिवासियों का खान-पान पूर्णतः अलग दिखाई देता है। वे लोग पका हुआ खाना नहीं खाते हैं। प्राकृतिक भोजन खाते हैं। कच्चा मांस ही इस समुदाय के लोग खाते हैं। इसलिए उस वातावरण से कटकर शहरी वातावरण से जुड़ेंगे तो उनका बॉड़ी सिस्टम खराब होता है। और आदिवासियों की चिकित्सा पेड़ की छाल, पत्ते, जड़ी-बूटी के सहारे की जाती है। शरीर को सही करने के लिए वे लोग अपनी पारंपरिक दवाइयों का इस्तेमाल करते हैं। शहर में इस तरह की चिकित्सा नहीं है। आदिवासी अंग्रेजी दवाई इस्तेमाल करने की वजह से उनका शरीर और खराब हो जाता है। इसलिए रचनाकार अपने लेखन के माध्यम से इस तरह कह रहा है कि- आदिवासी अपने पुश्तैनी जंगल के पवित्र वातावरण से कटकर नहीं जी सकते हैं। नये वातावरण, मसाले से पका हुआ खाना एवं अंग्रेजी दवाइयाँ का कुप्रभाव आदिवासियों पर पड़ रहा है। इसलिए रचनाकार आदिवासियों की पारंपरिक-परंपरा के साथ छेड़खानी नहीं करने को प्रेरित करते हैं। जबरदस्ती उन समुदायों पर दबाव नहीं डालना है। धीरे-धीरे उन समुदायों में परिवर्तन लाने की आवश्यकता है। अचानक किसी वातावरण, खान-पान से जुड़ना असंभव-सा लगता है। इससे पता चलता है कि आदिवासी समुदाय अपना संस्कृति, सभ्यता खान-पान, वेश-भूषा, संस्कार, भाषा, पर्व-त्यौहार, उत्सव और जीवन-शैली को कभी पूर्णरूपेण नहीं त्याग पाते हैं। प्राचीन से लेकर वर्तमान समय तक उन समुदायों के लिए प्राकृतिक जीवन

---

172 साइबर सिटी से नंगे आदिवासियों तक, पृ सं 90

ही उचित है । इसलिए उसे जबरदस्ती बाहरी समुदाय से जुड़ने की बात करेंगे तो उनका कल्याण कदापि नहीं होगा । आदिवासी अपने कबीले, समुदाय से कटेंगे तो उन्हें अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है । इसलिए अंत में, रचनाकार आदिवासियों को उनके ही परिवेश और संस्कृति में उनके जीवनानुरूप विकास करने की सलाह देता है ।

4.4 'आदिवासी-दुनिया' में अभिव्यक्त आदिवासी-जीवन -

4.4.1आदिवासी कौन ?

'आदिवासी कौन' इस विषय पर कुछ परिभाषाएँ देख सकते हैं-

'जेकब्स तथा स्टर्न' के मतानुसार "एक ऐसा ग्रामीण समुदाय या ग्रामीण समुदायों का एक ऐसा समूह जिसकी समान भूमि हो, समान भाषा हो, समान सांस्कृतिक विरासत हो और जिस समुदाय के व्यक्तियों का जीवन आर्थिक दृष्टि से एक-दूसरे के साथ ओत-प्रेत हो - जनजाति कहलाता है ।"[173]

'डब्ल्यू.एच.आर. रिवर्स ' ने 'आदिम जाति' की परिभाषा करते हुए लिखा है कि "आदिम जाति एक अत्यन्त साधारण कोटि का सामाजिक समूह होता है जिसके सदस्य एक साधारण भाषा बोलते हैं, उसकी एक शासन प्रणाली होती है तथा सामान्य उद्देश्यों की पूर्ति के लिए तथा युद्ध इत्यादि की स्थिति में एकता का प्रदर्शन करते हैं ।"[174]

'इम्पीरियल गजेटियर' के अनुसार- "आदिवासी जनजाति परिवारों के एक ऐसे समुदाय का नाम है जिसका एक समान नाम हो, समान बोली हो, जो एक समान भू-भाग पर

---

[173] भारत की जनजातियाँ, पृ सं 75

[174] आदिवासियों के बीच, पृ सं 17-18

रहता हो या उस भू-भाग को अपना मानते हों, और जो अपनी ही जाति के भीतर विवाह करते हों।"[175]

आदिवासी एक ऐसा समुदाय है जो हज़ारों सालों से मुख्यधारा से कटकर दूर - दराज का जीवन जीता आ रहा है। प्राचीन से लेकर वर्तमान समय तक उन समुदायों को विकास योजनाओं का प्रतिफल नहीं मिल पाया है। जैसे-"किसी भी राष्ट्र समाज के उन घटकों के मानव समुदाय के सम्मिलित समाज को हाशिये का समाज कहा गया है जो समाज के अगुवा तबके की तुलना में सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक स्तर पर किन्हीं कारणों से पीछे रह गया है। इस सामान्यीकृत परिभाषा को विस्तार से समझने से पूर्व हाशिये शब्द पर थोड़ा विचार करना जरूरी है। किसी पृष्ठ में हस्तलेखन या टंकण करने से पूर्व शीर्ष एवं परम्परा अनुसार मुख्य रूप से बायीं ओर कुछ जगह छोड़ी जाती रही है और इसी जगह को हाशिया कहा जाता है।"[176]

उपरोक्त उद्धरण से पता चलता है कि- आदिवासियों को हाशिये पर रखकर उनका ऐतिहासिक रूप से शोषण किया जा रहा है। वर्तमान समय में कुछ आदिवासी समुदाय सतर्क होकर अपने हक की लड़ाई लड़ रहे हैं। कब तक अन्याय, शोषण को झेलते रहेंगे ? इसलिए रचनाकार आदिवासियों से आग्रह कर रहा है कि- अपनी हक की लड़ाई लड़ने की आवश्यकता है। वे विकास योजनाओँ से आदिवासियों को जोड़ने की बात करते हैं। हाशियाकृत जीवन जीने वाले लोगों के कल्याण की चिंता भी व्यक्त करते हैं। आदिवासियों के नाम पर जितनी भी योजनाएँ बन रही हैं इसका फल उन समुदायों तक नहीं पहुँच रहा है। इस पर ध्यान देने की आवश्यकता पर बल देते हैं।

मिथकों में निम्न-वर्ग की क्या स्थिति रही है ? मिथकों में आदिवासी एवं दलित वीरों को किस तरह का दर्जा मिला है ? इन सवालों को आदिवासी चिंतक हरिराम मीणा

---

[175] भारत की जनजातियाँ, पृ सं 75-76

[176] आदिवासी दुनिया, पृ सं 2

ने निम्न रूप में अभिव्यक्त किया है- "दलित-आदिवासी-लोक के अन्य घटकों से सम्बन्धित उदाहरणों में त्रेतायुग के उन सारे आदिवासी समुदायों को लिया जा सकता है जो राम के पक्ष में लंका की लड़ाई लड़े । हनुमान के अलावा सभी पात्र चाहे कितने भी योद्धा, कूटनीतिज्ञ व रणनीतिकार रहे हों, अन्ततः वे सबके सब वहीं रहे जहाँ थे । अयोध्या की शासन प्रणाली में उनमें से किसी को कोई उचित पद नहीं दिया गया ।"[177]

राम को विजेता के रूप में ठहराने में आदिवासियों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है । लेकिन राम की शासन-प्रणाली में हनुमान के अलावा किसी को जगह नहीं मिली । हनुमान के अलावा भी बहुत सारे योद्धा, वीर और ज्ञानी थे । राम के अयोध्या शासन में आदिवासी समुदायों को उचित स्थान नहीं मिला । यहाँ पर सोचने की बात यह है कि लड़ाई में इतनी मेहनत किये हुए आदिवासी वहीं-के-वहीं रह गये । इस तरह का पक्षपात अपनाकर आदिवासियों को दबाने की चेष्टा शुरू से रही हैं । इस तरह के भेद-भाव की भूलों का रचनाकार विरोध करता है । जो समुदाय मेहनत किया तो मेहनती लोगों को प्रतिफल मिलने की आवश्यकता है । आदिवासियों के साहसों का जिक्र भी सही ढ़ंग से प्रस्तुत नहीं हुआ है । इसलिए रचनाकार ने मिथकों के पन्ने पलटकर आदिवासियों के पात्रों के संदर्भ को समझने की कोशिश की है ।

वर्तमान समय में दिनोंदिन बाजार का विस्तार होता जा रहा है । यहाँ पर सोचने की बात यह है कि इस बाजारीकरण के क्या-क्या लाभ हैं ? क्या-क्या नुकसान हैं ? जैसे- "इस उत्तर-आधुनिक वैश्वीकरण के दौर में चीजें और साफ होती जा रही हैं जबकि पूंजी, बाजार, तकनीकी आदि के रूप में उभर रही नई शक्तियों पर भी एक चालाक वर्ग का कब्जा होता जा रहा है जो बाजार की ताकत के आधार पर शासन प्रणाली एवं लोकतांत्रिक व्यवस्था को भी अपने हित में इस्तेमाल करने की क्षमता रखता है । यह ऐसा वर्ग है जिसका एकमात्र लक्ष्य अधिकाधिक भौतिक लाभ अर्जित करना है । इस वर्ग को

[177] आदिवासी दुनिया, पृ सं 5

राष्ट्र-समाज के सरोकारों से अधिक मतलब नहीं है । परम्परागत वर्चस्वकारी वर्ग अब हाईटेक पूंजीनायक वर्ग बनता जा रहा है ।"[178]

उपरोक्त उद्धरण से पता चलता है कि इस वैश्वीकरण के दौर में सिर्फ पूँजी ने दुनिया को अपने कब्जे में ले लिया है । पूँजीपति हर जगह कंपनियाँ खड़ा कर रहा हैं । पूँजीपति का तो लक्ष्य एक ही था- उन्हें अधिक से अधिक मुनाफा कमाना है । राष्ट्र एवं समाज के सरोकारों से उसे कोई मतलब नहीं है । जनता के हित को लेकर पूँजीपति को चिंता नहीं हैं, उनकी चिंता अधिक लाभ अर्जन करने की है । यहाँ पर सोचने की बात यह है कि इस पूँजीवादी-व्यवस्था में आदिवासी एवं निम्न-वर्ग कहाँ ठहरेंगे ? बाजारीकरण की वजह से कितने आदिवासियों को विस्थापित होना पड़ेगा । यह भी एक महत्वपूर्ण मुद्दे के रूप में सामने आयेगा । बाजार की वजह से पर्यावरण का प्रदूषण बढ़ रहा है । बाजार के इतनी तेज़गति से विस्तार को देखकर, गरीबों के भविष्य को लेकर रचनाकार अपनी वेदना को अभिव्यक्त कर रहा है । इस बाजार के दौर में आदिवासियों के साथ-साथ निम्न-वर्ग के लोगों को भी सतर्क रहने के लिए रचनाकार अनुरोध कर रहे हैं ।

इस दुनिया के सबसे पिछड़े तबके के रूप में आदिवासियों को देख सकते हैं । वर्तमान में भी आदिवासी अनेक विकास योजनाओं से वंचित रहा है । आधुनिक -युग में कुछ आदिवासी समुदायों को न ठीक से खान-पान मिल रहा है । कुछ समुदायों का स्थाई आवास नहीं है । शरीर ढंकने के लिए कपड़े भी उन समुदायों के नसीब में नहीं है । इस तरह की हालत में आदिवासी अपना जीवन चला रहा है । वर्तमान में कुछ लोगों की दृष्टि आदिवासियों की ओर जा रही है । उन समुदायों की समस्याओं को लेकर चिंता अभिव्यक्त कर रहे हैं । इसके साथ-साथ आदिवासी समुदायों को एक मनुष्य की तरह सुखमय जीवन जीने के लिए किस तरह की योजनाएँ सामने लायी जाय ? आदिवासियों के विकास के लिए किस तरह के कार्य किये जायें ? जैसे- "वर्तमान काल में मूलवासियों से संबंधित समस्याएं **विश्व** के सामने महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं जिनमें नस्लभेद, रोटी-कपड़ा-मकान,

[178] आदिवासी दुनिया, पृ सं 4

शिक्षा-स्वास्थ्य जैसी मूलभूत सुविधाएं, विस्थापन, संस्कृति का संरक्षण, पहचान का संकट एवं मानवाधिकारों के संरक्षण आदि शामिल हैं। भारतीय परिप्रेक्ष्य में आदिवासी आबादी की आधी से अधिक जनसंख्या गरीबी के स्तर से नीचे का जीवन जीने को विवश है जबकि गरीबी की रेखा से नीचे जीने वाले भारत की कुल आबादी का करीब तिहाई अंश है । शेष **विश्व** के मूलवासियों की भौतिक दशा भी कमोबेश ऐसी ही है । इन समस्याओं के समाधान के बिना मूलवासियों का भविष्य सुरक्षित नहीं है, जो **विश्व** मानवता के सामने सबसे बड़ी चुनौती है ।"[179]

रचनाकार लेखन के माध्याम से कहते हैं कि सबसे पहले आदिवासी समुदायों के रहवास का जुगाड़ किया जाय, तत्पश्चात् खान-पान पर ध्यान दिया जाय, कपड़ों का इंतजाम किया जाय। इसके साथ-साथ आदिवासी इलाकों में विद्यालय एवं चिकित्सालय बनाया जाय । उन समुदायों को शिक्षा उन्हीं के भाषाओं में देने की आवश्यकता है । आदिवासियों की संस्कृति को संरक्षण-हेतु उत्सव मनाने के लिए आर्थिक-सहायता की जरूरत है । अगर किसी कारणवश विस्थापन हुआ है तो उन आदिवासी समुदायों का पुनर्वास किया जाये । इस तरह के कार्यों की वजह से आदिवासी जीवन में परिवर्तन दिखाई देगा । भविष्य में उनका अस्तित्व भी संरक्षित रहेगा । इस तरह रचनाकार आदिवासियों से जुड़कार विकास योजना बनाने का आग्रह करते हैं।

4.4.2 भारतीय इतिहास एवं मिथकों में आदिवासी -

"इतिहास हमें पढ़ाया-सुनाया जाता रहा है, उसमें आदिवासी किस रूप में हैं ? इसे समझने के लिए हमें भारतीय मिथक परंपरा में जाना होगा, चूंकि सारी गड़बड़ी वहीं से शुरू हुई है । मिथक एवं इतिहास के साथ सबसे बड़ी दिक्कत यह रही है कि हारी हुई कौमों को विकृत करके चित्रित किया जाता है, वर्चस्वकारी वर्ग के पक्ष में सब कुछ रचा-सजाकर प्रस्तुत कर दिया जाता रहा है ।"[180] उपरोक्त उद्धरण से यह संकेतित होता है कि

---

[179] आदिवासी दुनिया, पृ सं 16

[180] आदिवासी दुनिया, पृ सं 22

परंपरागत भारतीय साहित्य एवं इतिहास-लेखन में आदिवासी की छवि को वर्चस्वकारी या विजेता-वर्ग ने अपने वर्गीय हितों को ध्यान में प्रस्तुत किया था । आदिवासी वर्ग की विकृत छवि प्रस्तुत की गयी । चिंतक हरिराम मीणा ने इसलिए परंपरागत साहित्य की पृष्ठभूमि को पुनःपढ़ने एवं पुनर्लेखन पर जोर दिया है ।

भारत के प्राचीनतम उपजीव्य ग्रंथों में से एक 'महाभारत' का 'एकलव्य - प्रसंग' यहाँ देखा जा सकता है जिसमें आदिवासी पात्र के साथ अमानवीय व्यवहार पर लेखक चिंता व्यक्त करते हैं । हरिराम मीणा बार-बार जोर देते हैं कि आदिवासी विषयों से संबंधित सच्चाई उभरकर सामने आने की आवश्यकता है । आदिवासियों के बारे में सही प्रस्तुति सामने लाने की जिम्मेदारी शिक्षित मध्यवर्ग की है ।

'महाभारत' में आदिवासियों पात्रों के साथ किस प्रकार का अन्याय हुआ ? आदिवासी योद्धओं को किन वजहों से अपने प्राणों को त्यागना पड़ा ? आदिवासियों का अंत करने के लिए, किस तरह की योजनाएँ बनाई गईं ? इन तमाम विषयों की जानकारी निम्न उद्धरण से समझ सकते हैं । जैसे-"आदिवासी स्त्री हिडिम्बा के पुत्र घटोत्कच का प्रसंग आता है जिससे अर्जुन को बचाने के लिए शहीद कर दिया जाता है । घटोत्कच के पुत्र बर्बरीक का महत्वपूर्ण प्रसंग 'महाभारत' में है । वह किशोरावस्था में ही था, मगर अत्यन्त बलवान । दुर्योधन कहीं से ढूंढ़कर उसे अपने पक्ष में लड़ने के लिए बुला लेता है । वह कौरवों की तरफ से लड़ने को तत्पर है ।"[181] उपरोक्त उद्धरण से पता चलता है कि कृष्ण की कूटनीति की वजह से आदिवासी योद्धाओं की हत्या की गई है । अपने आप को महान् साबित करने के लिए आदिवासियों को राक्षस, दानव, पिशाच, नरभक्षी आदि तरह-तरह के आरोप आदिवासियों के समुदायों पर लगाकर उन लोगों की हत्या की गई थी । आदिवासी भी इतना कमजोर नहीं था । आदिवासी योद्धा अधिक बलवान के रूप में नज़र आयेंगे । 'महाभारत' के पात्र जैसे- घटोत्कच एवं बर्बरीक को देख सकते हैं । इतने बलवान

[181] आदिवासी दुनिया, पृ सं 25

योद्धाओं की धोखेबाजी से हराकर, उनकी हत्या की गई थी । युद्ध लड़ने की क्षमता एवं ज्ञान आदिवासियों के पास परंपरा से रहा है । एक अन्य उदाहरण देखा जा सकता है- “भोले किशोर बर्बरीक को सोलह कला प्रवीण भगवान छलने के लिए चल देते हैं । कहते हैं- “कलियुग में तेरी पूजा का इंतजाम किये देता हूँ । इस वक्त बैकुंठ (या स्वर्ग) धाम में भेजने की गारन्टी भी लेता हूँ । बस एक काम कर दे, लड़ मत और अपना शीश मुझे सौंप दे ।” “जवाब मिलता है,” आप तो भगवान हैं, जो करेंगे ठीक ही होगा । मेरी इतनी-सी इच्छा है कि दोनों ओर से बड़े-बड़े धुरंधर लड़ रहे हैं । मैं इनकी बहादुरी देखना चाहता हूँ। शर्त मान ली जाती है । बर्बरीक शीश सौंप देता है ।”[182] उपरोक्त उद्धरण से पता चलता है कि आदिवासी जिस व्यक्ति या समुदाय पर भरोसा रखते हैं वही व्यक्ति इनके साथ विश्वासघात करते हैं । जिस पर आदिवासी ने विश्वास रखा, भागवान माना, दूसरों की राय को ठीक मानकर चलना आदिवासियों का स्वाभाविक गुण है । आदिवासी सीधा-साधा दल वाला आदमी है । उस समुदाय के लोग हर किसी को भी मानते हैं । लेकिन जिसको वे अपना मानते हैं वहीं इनके अहित का कारण बन रहा है । इसलिए रचनाकार इस कथन से आदिवासियों को जागृत कर रहा है । आदिवासी कभी भी दूसरे वर्गों पर भरोसा नहीं करें, दूसरों के दबाव में नहीं आयें । दूसरों से हाथ मिलाने से पहले दिमाग चलाने की आवश्यकता है । यह संदर्भ वर्तमान समय के आदिवासियों को सचेत करने के लिए रचनाकार ने रखा है ।

एक अन्य उदाहरण मध्यकालीन भारतीय इतिहास से देखा जा सकता है- “महाराणा प्रताप के अत्यन्त **विश्व**सनीय और योद्धा सेनापति राणा पूंजा थे । वे भील थे । भील राजा भी उन्हें कहा जाता रहा । राजीव गांधी जब प्रधानमंत्री थे, तो राणा पूंजा की प्रतिमा का उदयपुर में उन्होंने अनावरण किया । हिरणमगरी (पहाड़ी) जहाँ राणा प्रताप की प्रतिमा है, उसी से कुछ दूरी पर राणा पूँजा की प्रतिमा स्थापित की गई । यह सर्वविदित है कि राणा प्रताप के साथ लड़ने वाले राजपूत अत्यल्प थे और आदिवासी ही

[182] आदिवासी दुनिया, पृ सं 25

प्रमुख रूप से लड़े थे । कुछ लोगों ने एक कुचक्र रचा । चमचे किस्म के इतिहासकारों की एक कमेटी बनायी । उनसे यह साबित करवाया गया कि राणा पूंजा आदिवासी न होकर राजपूत था । उनके हिसाब से योद्धा केवल राजपूत होते हैं, और सब नपुंसक हैं । अगर इस साजिश का विरोध नहीं हुआ होता तो सम्भव था ऐसे लोग अपने प्रयासों में सफल हो जाते और राणा प्रताप के साथ लड़े आदिवासियों के बलिदान को पूरी तरह भुला दिया जाता ।"[183] उपरोक्त कथन के माध्यम से पता चलता है कि- राजाओं के विरोध में लड़ने वाले, आदिवासी वीरों के नाम और जाति बदलकर उनके अस्तित्व को मिटाने का षड्यंत्र रचा गया है । आदिवासी वीरों की वीरता से जलने वाले मुख्यधारा के समाज के लोग आदिवासी वीरों के नाम बदलकर किसी दूसरे राजा के नाम के साथ जोड़ देते हैं । इस तरह अपने आँखों से देखी हुई घटनाओं के बारे में और वीरों के बारे में इस तरह के आरोप फैला रहे हैं तो, आदिवासी वीरों के नाम बदलकर, दूसरा नाम देकर, मुख्यधारा का समाज उनके ऐतिहासिक महत्व को भुलाने की कोशिश कर रहा है । आदिवासी वीरों की महानता को, वीरता को दबाने के लिए और मिटाने के लिए तरह- तरह की साजिशें रचते रहते हैं । इससे साबित होता है कि ऐसे कई आदिवासी वीरों की लड़ाई, वीरों की वीरता को भुला दिया होगा । इसलिए इतिहास को खंगाल कर, भूल को सही रूप देकर, पुनर्मूल्यांकन की आवश्यकता है ।

4.4.3 भारतीय स्वाधीनता आंदोलन में आदिवासियों की भूमिका -

भारत के स्वाधीनता संग्राम में सारे देश के आदिवासियों ने भूमिका निभाई थी, लेकिन इतिहास में हमें केवल राष्ट्रीय कांग्रेस से जुड़े हुए लोगों को ही पढ़ाया जाता है ऐसा क्यों ? भारत के सीमांत - क्षेत्रों की, विशेषकर उत्तर-पूर्व की स्त्रियों ने अंग्रेजी सेना से सशस्त्र रूप में संघर्ष किया था । जिसकी बानगी-रानी गाइदिल्ल्यू का सशस्त्र-संघर्ष में देखी जा सकती है । जैसे- "1931 में जब वह नवीं कक्षा में पढ़ रही थी तब उसके छोटे भाई 13 वर्षीय जादोनांग ने स्वयं को नगा दल का नेता घोषित कर अंग्रेजों के विरूद्ध स्वतंत्रता का बिगुला बजाया । एक अंग्रेज अधिकारी को मारने के अपराध में उसे फांसी दे

---

[183] आदिवासी दुनिया, पृ सं 28

दी गई। भाई के शहीद होने के बाद गाइदिल्ल्यू कबीले की मुखिया बनी और उसने भाई के संग्राम को आगे बढ़ाने का काम किया। उसके पास गुरिल्ला युद्ध के कुशल चार हजार नगा क्रांतिकारी थे। अंग्रेजों की फौज असम राईफल्स की उसके दल से कई बार मुठभेड़ हुई। गाइदिल्ल्यू ने यह संकल्प लिया कि या तो अंग्रेज मरेंगे या मैं।"[184]

अंग्रेजों के आने से पहले संथाल परगना पर आदिवासियों का शासन था। अंग्रेजों ने षड्यंत्र रचकर, संथाल परगना को अपने कब्जे में लेकर, शासन करने लगे। अंग्रेज-शासन से मुक्त होने के लिए आदिवासियों ने सशस्त्र विद्रोह कर दिया। यथा- "तिलका मांझी ने 1781 में अंग्रेजों के विरूद्ध विद्रोह की शुरूआत की। विद्रोह की आग सम्पूर्ण संथाल परगना, भागलपुर व आसपास के इलाकों में फैल गई। अंग्रेजों की घुसपैठ से पूर्व संथाल परगना पर पहाड़िया आदिवासियों का शासन था। तिलका मांझी द्वारा किये गये विद्रोह में एक तरफ धनुष-बाण थे तो दूसरी तरफ अंग्रेजों की बन्दूक व तोपें थीं। आदिवासियों के इस मुक्ति-संग्राम में 388 आदिवासी वीर शहीद हुए थे। तिलका मांझी के बाण से ईस्ट इंडिया कंपनी का एक सेनानायक आगस्टस क्लीवलैंड मारा गया।"[185]

तिलका मांझी ने अंग्रेजों की कूटनीति को समझकर उस परगने में निवास कर रहे विभिन्न धर्मों एवं जातियों के लोगों को संगठित करके अपनी युद्ध-कौशल, रणनीति का अभिनव परिचय दिया। जैसे- "तिलका मांझी ने अंग्रेजों की कूटनीति व चालबाजी को समझ लिया। उसने क्षेत्र के हिन्दू व मुसलमानों को एकत्रित किया और अंग्रेजों के विरूद्ध संघर्ष किया। अंग्रेजों ने तिलका मांझी के विरूद्ध कुछ पहाड़िया आदिवासियों को अपने पक्ष में करने में कामयाबी हासिल जरूर की थी लेकिन तिलका मांझी ने अंग्रेजों की नाक में दम कर दिया। इसी लड़ाई में क्लीवलैंड मारा गया। अंग्रेजों ने भारी संख्या में सेना एकत्रित की। तिलका मांझी को अन्ततः अंग्रेजों द्वारा फांसी की सजा दे दी गई। तिलका

---

[184] आदिवासी दुनिया, पृ सं 57

[185] आदिवासी दुनिया, पृ सं 59

मांझी को प्रथम स्वतंत्रता सेनानी माना जाता है व उसके नाम पर भागलपुर के तिलका मांझी चौक में उसकी प्रतिमा भी स्थापित की हुई है।"[186]

आदिवासियों पर भगतों का प्रभाव पड़ा । भगतों की बातों का आदिवासी अनुपालन करते थे। आदिवासियों को सही राह पर चलाने में भगतों की विशिष्ट भूमिका रही है । यहाँ पर ताना भगत के अवदान के द्वारा इस पक्ष को समझा जा सकता है- "उन्होंने आदिवासियों को अंग्रेजों के विरूद्ध एकत्रित करने के लिये इस माध्यम को अपनाया कि उनके धर्मेश अर्थात धार्मिक राजा ईश्वर ने स्वप्न में दर्शन दिये हैं और यह कहा है कि समाज में फैली बुराइयों को दूर करो तथा अंग्रेजों से मुक्ति की लड़ाई शुरू करो। जात्रा उराँव के नेतृत्व में आदिवासी आन्दोलनकारियों ने भूत-पूजा, जादू-टोना, बलि-प्रथा तथा मांस-मदिरा के सेवन आदि कर्मकाण्ड व बुराइयों को खत्म करने के लिये मुहिम छेड़ी।"[187] उपरोक्त उद्धरण से पता चलता है कि आदिवासियों को जागृत करके उनके जीवन में सुधार लाने के पीछे भगतों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इसके साथ - साथ आदिवासियों को अन्याय के विरोध में खड़ा करने में भगतों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

ताना भगत के आदेश के अनुसार आदिवासियों ने कार्यालयों में काम बंद कर दिये। अंग्रेज सरकार के विरोध में यह सब गतिविधियाँ आदिवासियों ने ताना भगत (जात्रा उराँव) के नेतृत्व में किये थे । अपना स्वतंत्र जीवन जीन के लिए आदिवासियों ने असहयोग आंदोलन, अंग्रेजों के विरोध में चला रखा था। जैसे- "अंग्रेज अधिकारियों तथा उनके अधीन सामन्ती सत्ता के प्रतिनिधि जमींदारों के विरूद्ध इन आन्दोलनकारियों ने मोर्चा खोला और यह तय किया कि वे कोई सरकारी काम नहीं करेंगे, कोई मालगुजारी नहीं देंगे, जमींदारों के खेतों में काम नहीं करेंगे, अपने इलाके में कोई सरकारी गतिविधियां नहीं चलने देंगे तथा सरकार के प्रतिनिधि कर्मचारियों को किसी प्रकार का

---

[186] आदिवासी दुनिया, पृ सं 60

[187] आदिवासी दुनिया, पृ सं 62

सहयोग नहीं देंगे। इस असहयोग आन्दोलन की शुरूआत रांची के निकट धोबी टोली गांव से की गई जबकि आदिवासी श्रमिकों ने एक सरकारी भवन के निर्माण में कार्य करने से मना कर दिया। इस घटना से क्रोधित होकर अंग्रेजी शासन ने जात्रा उराँव सहित सात आन्दोलनकारियों को गिरफ्तार किया लेकिन इनके पक्ष में आन्दोलन भड़कने की संभावनाओं को देखते हुए चेतावनी देकर छोड़ दिया।"[188] उपरोक्त उद्धरण से पता चलता है कि अंग्रेजों के विरूद्ध आदिवासियों ने असहयोग आंदोलन चलाये हैं। सब लोग यह मानकर चलते हैं कि सबसे पहले असहयोग आंदोलन गाँधी के नेतृत्व में चला। सच्चाई की बात यह है कि महात्मा गाँधी से पहले आदिवासियों के नेतृत्व में असहयोग आंदोलन चला है। लेकिन आदिवासियों के द्वारा किये गये आंदोलन की ओर किसी का ध्यान नहीं गया था। हरिराम मीणा की चिंताओं में एक विषय यह है कि- आदिवासियों के इतिहास विषयक प्रसंगों को शिक्षित मध्यवर्ग के समक्ष पूरी ईमानदारी एवं प्रमाणिकता से उपस्थित / प्रस्तुत किया जाये। इससे उनके प्रति बनी हुई परंपरागत सोच में बदलाव आयेगा।

इसी आंदोलन में ताना भगत अपने गीतों के माध्यम से आदिवासियों को जागृत कर रहे थे। वह बार-बार कह रहे थे कि सरकार की खिंचाई करो। अंग्रेज- शासन का विरोध करो। जैसे- "'सरकार की खिंचाई करो', आन्दोलनकारियों का मूल मंत्र था। खिंचाई को स्थानीय भाषा में 'ताना' कहते हैं। उन्होंने गीत के माध्यम से इसे प्रकट किया जो निम्न प्रकार थाः

"ताना बाबा ताना तान,
तुन ताना गोल से लेन
ताना बे लेन
ताना हुकुम, मान ताना
ताना थनानन ताना पुलिसाना ताना"

---

[188] आदिवासी दुनिया, पृ सं 63

अर्थात् खींचो भाई खींचो, सरकार को खींचो, जमींदार को खींचो, व्यवस्था को खींचो, कानून को खींचो, पुलिस को खींचो । हे भगवान ! हमें अपने अधिकार दो, हम स्वयं शासन करेंगे । हमें ज्ञान दो, हमें नियम दो, हमें लिखने की शक्ति दो, हमें पढ़ने की शक्ति दो ।"[189] उपरोक्त उद्धरण से पता चलता है कि आंदोलन में आदिवासियों के साहस को बढ़ाने में भगतों के संदेश के साथ-साथ गीतों की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही है ।

आदिवासियों को समस्याओं से मुक्त करने के लिए बिरसा मुंडा ने अंग्रेजों के विरोध में आंदोलन का बिगुला बजाया था । अंग्रेजों से मुठभेड़ से पहले, बिरसा ने एक योजना के साथ, अलग-अलग क्रांतिकारी दलों को तैयार किया था । जैसे- "फरवरी 1898 के दिन चालकाड़ के निकट डुम्बारी पहाड़ियों में आदिवासियों की पंचायत बुलाई । वहीं बिरसा ने आदिवासी सेना का गठन किया । एटके गाँव के गया मुण्डा को प्रधान सेनापति नियुक्त किया । स्थान-स्थान पर सभाएं की गईं । बिरसा ने खूँटी, राँची, चक्रधरपुर, बुण्डू, मताड़, कर्रा, तोरपा, बसिया, सिसई, बुस, बाड़ी, रूईटोला, पोजे, कोटा, गाड़ा, कुआदा तथा जेईसा आदि जगहों पर क्रांतिकारी दल गठित किये । क्रांतिकारियों का मुख्य केन्द्र खूँटी को बनाया गया । सन् 1899 के 'बड़ा दिन' तिथि को आक्रमण का दिन निश्चित किया । पुलिस थानों, जागीरदारों व अंग्रेजों के ठिकानों को निशाना बनाना तय किया गया । अलग अलग टुकड़ियों ने दर्जनभर ठिकानों पर सफल हमले किये । स्वयं बिरसा ने तीन सौ आदिवासियों के धनुर्धर लड़ाकुओं के साथ खूँटी थाना पर आक्रमण किया । अत्याचारी दरोगा व उसके एक सहयोगी को मार दिया गया । संघर्ष में बिरसा का एक अनुयायी भी शहीद हुआ । गया मुंडा सैकड़ों आदिवासियों के साथ संघर्ष करता हुआ राँची की ओर बढ़ने लगा । बिरसा के आंदोलन से अंग्रेज अफसर आतंकित हो गये ।"[190]

टंट्या मामा अन्याय के विरूद्ध लड़ने वाला एक अन्य साहसी योद्धा था । जैसे- "यह तिथि थी 25 मार्च, सन् 1884 की । 24 मार्च की शाम टंट्या के दल ने मेलघाट के एक

---

[189] आदिवासी दुनिया, पृ सं 63

[190] आदिवासी दुनिया, पृ सं 68-69

जमींदार के घर धावा बोलकर बदला लिया था। मेलघाट इलाके में अंग्रेज व होल्कर राज की संयुक्त पुलिस के दल के अफसर व जवान टंट्या की गिरफ्तारी के लिए जाल की तरह फैले हुए थे। टंट्या ऐलानिया बदला लेने वाला संघर्ष नायक था। पुलिस की जानकारी के बावजूद उसने जमींदार के घर पर हमला किया। पुलिस ने टंट्या के दल को घेर लिया। भीषण मुठभेड़ हुई। इस मुठभेड़ में टंट्या का एक साथी लछमन पुलिस की गोली से घायल हो गया जिसे पुलिस के सिपाही उठाकर थाने ले गये। यह सुनते ही टंट्या के दल ने हमला तेज कर दिया। इस हमले में पुलिस का एक बड़ा अधिकारी मारा गया।”[191]

जोरिया भगत आदिवासियों को अपनी वाणियों के माध्यम से जागृत कर रहे थे। लगान एवं बेगार के विरोध में आदिवासियों को आंदोलन करने के लिए प्रेरित कर रहे थे। जोरिया भगत का व्यापक प्रभाव आदिवासियों के ऊपर पड़ा। जैसे- “वह जहाँ भी जाता आदिवासियों से बस ये ही सवाल पूछता था कि “किसी के अधीन न रहने वाले हम आदिवासी भाई फिरंगियों के मातहत रियासती राजाओं की बेगार क्यों करते हैं ? जंगलाती पैदावार पर हमारा परंपरागत हक हम से क्यों छीना जा रहा है ?” इन सवालों का वह एक ही जवाब देता था कि ‘हम एकजुट होकर विरोध नहीं कर रहे हैं।’ इस आधार पर जोरिया ने उस इलाके के आदिवासियों को संगठित कर लिया था। लोगों ने जोरिया के मकसद और तरीकों को आत्मसात कर लिया। उसे मुक्तिदाता की तरह माना जाने लगा। जोरिया का धार्मिक संदेश यह था कि “हमारे जिन पूर्वजों ने बड़ा काम किया वे भगवान के अंश हैं और भगवान के अंश भगवान के पक्के ‘भगत’ होते हैं। इस सन्देश का असर यह हुआ कि आदिवासी लोग जोरिया को भगवान के प्रति समर्पित ‘भगत’ मानने

---

[191] आदिवासी दुनिया, पृ सं 69

लगे और उनका लोकप्रिय नाम 'जोरिया भगत' पड़ गया। उनका एक सहकर्मी था रूपा नायकदास।""[192]

4.4.4 आदिवासियों की संस्कृति, संप्रदाय एवं परंपरा -

(i) विवाह -

आदिवासी समुदायों में मुख्यधारा से हटकर अलग तरह के विवाह की परंपराओं को देख सकते हैं। आदिवासियों की कुछ अपनी परंपराएँ जो हैं किसी समुदाय या वर्ग से ताल-मेल नहीं खाती है। वधू एवं वर को अपनी मन पसंद से विवाह करने की परंपरा आदिवासी समुदायों में देखने को मिलती है। जैसे- "पारम्परिक मेलों के अवसर पर जो आदिवासी इकट्ठा होते हैं, उनमें आदिवासी युवक-युवतियों की संख्या काफी होती है। मेले के उत्सव-उमंग, नाच-गान व मौज-मस्ती में वे उल्लास के साथ भाग लेते हैं। इस दौरान जान-पहचान व दोस्ती होती है। विपरीत लिंगाकर्षण से उत्पन्न स्वाभाविक प्रीति भी पनपती है। जो युगल शादी करने का मानस बना लेते हैं वे मेला स्थल से भाग कर ऊँची पहाड़ियों पर चढ़ जाते हैं और वहाँ से अपने 'एक हो जाने' का एलान करते हैं। सम्बन्धित युवक - युवतियों के परिवार व सम्बन्धियों में बुजुर्ग लोगों को यह पता चलता है तो वे गोत आदि व पृष्ठभूमि की कोई वैमनस्यता की बाधा न होने पर शादी की स्वीकृति दे देते हैं तो वे युगल वापस मेले में आ जाते हैं और वहीं सगाई की रस्म निभा दी जाती है। यदि बुजुर्ग किसी कारणवश शादी से इन्कार कर देते हैं तो वे युवक - युवतियों के जोड़े दूर भाग जाते हैं और ब्याह रचाकर घर बसा लेते हैं। दोनों की स्थितियों में मेला स्थल से भाग जाने की वजह से इस परम्परा को 'भगोरिया' नाम दिया गया है।"[193]

दूसरे तरह की आदिवासी विवाह-परंपरा को देख सकते हैं। विवाह से पूर्व- संबंध को भी हम आदिवासी समुदायों में देख सकते हैं। आदिवासी लड़का-लड़की विवाह से

---

[192] आदिवासी दुनिया, पृ सं 71

[193] आदिवासी दुनिया, पृ सं 92-93

पहले यौन-संबंध बनाते हैं। यह परंपरा उनके पुरखों से चली आ रही है। इसलिए इस तरह विवाह-परंपरा का संबंधित आदिवासी जनसमुदाय विरोध नहीं करते हैं। मुंडा और मुड़िया जनजातियाँ में इस तरह की विवाह-परंपरा को मान्यता प्राप्त है । जैसे- "छत्तीसगढ़ के मुड़िया और झारखण्ड के मुण्डा व अन्य आदिवासियों में 'घोटुल' की प्रथा को बाकायदा परम्परागत मान्यता दी हुई है। 'घोटुल' अर्थात् सामूहिक वास-स्थल। इस प्रथा का लक्ष्य सामूहिक जीवन-शैली के संस्कार विकसित करना रहा है। इस बहुआयामी गतिविधि का एक पक्ष यह भी है कि स्थानीय आदिवासी युवक-युवतियाँ अपनी मनपसंद और सहमति के आधार पर 'घोटुल' में यौन-सम्बन्ध बनाते हैं और इसके बाद मनपसंद जोड़े बनाकर शादी के लिए सहमति देते हैं जिसे अन्यथा कोई कारण सामने न आये तो समाज स्वीकार करता है।"[194]

उपरोक्त उद्धरण से पता चलता है कि- अपनी पसंद से विवाह करने की स्वतंत्रता आदिवासियों में हैं। हम मुंडा और मुड़िया जनजातियों में 'घोटुल' की प्रथा को देख सकते हैं। मुड़िया एवं मुंडा समुदायों के लड़का - लड़की बुजर्गों एवं नेताओं की सहमति से, विवाह से पहले, सामूहिक जीवन जीते हैं। अगर सामूहिक जीवन के पश्चात् किसी कारण वश मना करने की भी स्वतंत्रता है। इस तरह के विवाह- परंपरा को 'घोटुल' के नाम से जाना जाता है। आदिवासियों का मानना है कि यह कोई गलत काम नहीं है। इस आधार पर हम आदिवासी युवक - युवती की मानसिकता को समझ सकते हैं। वे जीवन भर खुश रहेंगे की, नहीं, तय कर सकते हैं। इसके साथ-साथ इस तरह की पंरपराओं के कारण स्त्री-पुरूष में लैंगिक भेदभाव व असमानता, नहीं दिखाई देती है। इसे ये जन समुदाय अपने पुरखों की पंरपराओं को अपनाते हुए संरक्षित कर रहे हैं।

(ii) **पूजा-पाठ** - आदिवासी समुदायों के लोग किसको पूजते हैं? क्या-क्या पूजा में चढ़ाते हैं। आदिवासियों के आराध्य देव-देवी कौन-कौनसे हैं? आदिवासी किस तरह के विश्वासों

[194] आदिवासी दुनिया, पृ सं 93

को मानते आ रहे हैं ? इस तरह के विषयों के बारे में जानकारी निम्न उद्धरण के माध्यम से समझ सकते हैं। जैसे-“उनके देवालय साधारण से स्थल यथा पहाड़ी चोटी, पेड़ का उभरा हुआ जड़-स्थल या देवला (चबूतरा) होते हैं । और पूजा विधि अत्यंत सरल व सहज । सोलह श्रृंगारी मूल्यवान प्रतिमाएं भव्य मंदिर, और जटिल कर्मकांडों को वहाँ स्थान नहीं। उनके धर्मस्थल व्यावसायिक केन्द्र नहीं बनते । जैसा वे खाते हैं, पीते हैं वैसा ही चढ़ावा देव-देवी के सामने अर्पित किया जाता है। दिखावटीपन कहीं नहीं होता।”[195]

मुख्यधारा के समाज की पूजापाठ से हटकर, आदिवासी समुदायों का पूजा-पाठ होता है । आदिवासी आराध्यों को प्रसाद स्वयं चढ़ाते हैं । इनके यहाँ कोई पंडित नहीं रहता है। इनके पूजा-पाठ एकदम सरल है। आदिवासी प्रकृति से संबंध रखने वाले, जैसे-सूर्य, वायु, चंद्र, पहाड़, पेड़, समुद्र आदि को पूजते हैं। इसके साथ -साथ अपने पुरखों को पूजते हैं । आदिवासी अपने पूजा - पाठ में वे लोग जो खाते-पीते हैं उसी को, देव को, प्रसाद के रूप में चढ़ाते हैं। इसके साथ - साथ कुछ समुदायों में शक्तियों की पूजा के नाम पर बलि भी चढ़ाते हैं । आदिवासी समुदायों में देखा जाये तो मूर्ति रूप भगवान हमें दिखाई नहीं देता है । अमूर्त शक्ति ही आराध्य है । इसके साथ-साथ अपने पुरखों की आत्माओं से विनती करते हैं कि उनकी रक्षा करें । इस तरह के विश्वास को आदिवासी-समुदायों में देखा जा सकता है।

(iii) **जाति-** आदिवासी समुदायों में जाति का भेदभाव देखने को नहीं मिलता है । आदिवासी समाज में जाति को स्थान नहीं प्राप्त है। समुदाय के सभी लोग समान है, इसी सूत्र को आदिवासी अपनाता है। स्त्री-पुरूष की समानता की भावना को भी आदिवासी समुदायों में देख सकते हैं। धर्म के नाम पर, जाति के नाम, गोत्र के आधार पर भेदभाव आदिवासी समुदायों में नहीं है । इस धरती पर जाति रहित समुदाय के रूप में आदिवासियों को मान सकते हैं। जैसे- “आदिवासी केवल आदिवासी (tribe) रहा। क्षमा करें, ‘ट्राइब’ का हिन्दी अनुवाद ‘जनजाति’ गलत है क्योंकि आदिवासी समाज में ‘जाति’

195 आदिवासी दुनिया, पृ सं 97

की कोई अवधारणा नहीं रही । आदिवासियों के भिन्न-भिन्न नाम या संज्ञाएं उनके अंचल, गणचिह्न, गोत्र, वंश, प्रजाति आदि पर आधारित रहे हैं । यह एकमात्र समाज है जो 'वर्ग' व 'जाति' की अवधारणा को अपने यहाँ स्थान नहीं देता । अगर वर्ग व जातिविहीन समाज के इस उपलब्ध सूत्र को पहचान कर अंगीकार कर लिया जाता है तो राष्ट्रीय एकीकरण और तनावविहीन समाज के लिए इस से बढ़िया कोई विकल्प आज हमारे सामने नहीं है । इसलिए सामूहिकता और सह-अस्तित्व आदिवासी-संस्कृति का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष है । इस पक्ष का एक अन्य उपांग है । वह यह कि धर्म के नाम पर आदिवासी समाज में किसी प्रकार के समुदाय का नहीं होना ।"[196] उपरोक्त उद्धरण से पता चलता है कि- आदिवासी समुदाय में जाति का विभेद नहीं है । उस समुदाय के लिए 'जनजाति' का नामकरण करना रचनाकार अनुचित मानते हैं । रचनाकार इस कथन के माध्यम से इस तरह का आग्रह करते हैं कि 'जनजाति' शब्द की जगह और कोई दूसरे शब्द का प्रयोग हो । उन्हें जनजाति कहकर 'जाति' के आधार पर कैद करना रचनाकार अनावश्यक मानते हैं ।

आदिवासी-समुदायों में समानता की भावना दिखाई देती है । उन समुदायों में स्त्री-पुरूष की समानता दिखाई देती है । आदिवासी अपना जीवन चलाने हेतु शिकार करते हैं। शिकार उनकी परंपरा का हिस्सा रहा है । शिकार में भाग लेने वाले कुत्तों को भी मांस का भाग दिया जाता है । जैसे- "पर्व के दौरान किये जाने वाले सामूहिक शिकार का बंटवारा सारे गाँव में किया जाता है । जिन परिवारों में पुरुष या शारीरिक दृष्टि से सक्षम सदस्य नहीं होते उन घरों में भी शिकार को बाँटा किया जाता है ।"[197] उपरोक्त उद्धरण से पता चलता है कि- आदिवासियों में समानता की भावना उभर कर सामने आती है । किसी पर्व के दौरान शिकार में भाग नहीं लेने वाले पुरूष, बच्चे के साथ-साथ शिकार में किसी कारण वश नहीं आये हुये परिवार को भी शिकार का बंटवारा समान रूप से देते हैं । किसी को

---

[196] आदिवासी दुनिया, पृ सं 100

[197] आदिवासी दुनिया, पृ सं 111

ज्यादा, किसी को कम देना इस तरह की भेदभावपूर्वक परंपरा आदिवासियों की नहीं रहीं है। इसलिए रचनाकार इस कथन के माध्यम से मुख्यधारा के समाज की ओर इशारा कर रहे हैं कि आदिवासियों से कुछ सीखने की आवश्यकता है। इस तरह की परंपरा की वजह से आदिवासियों का संस्कार प्रस्तुत होता है।

भारत के ज्ञात स्रोतों के आधार पर आदिवासी समुदाय शुरू से इस धरती (भारत की) का मूलवासी है। बाहर से लोग आकर मूलवासियों पर हमला करने लगे। उनसे लगातार संघर्ष किया। बाहर वालों के हाथों में हारी हुई कौम को या तो गुलाम बन के जीना पड़ा या अपनी जगह छोड़कर जाना या प्राण त्याग करना पड़ा। इस तरह के कारणों की वजह से, हजारों साल-पूर्व अपनी जान बचाने के लिए इस देश के मूलवासी ने जंगल का सहारा लेकर सभ्य समाज से दूर रहकर जीवन जीना सीखा। जैसे- "सामान्यीकृत दृष्टिकोण से दो तरह की मानव प्रजातियों के मध्य यह युद्ध क्रम था, दो सभ्यताओं के बीच का संघर्ष, जो लंबे अर्से तक चला संग्राम व संधियों के दौर के साथ अनेकानेक चरणों में। इसे नाम दिया सुरासुर-संग्राम, देव-दानव युद्ध, धर्म व अधर्म के बीच की लड़ाई वगैरह... । युगों-युगों चले इस दीर्घ संघर्ष में जो मूलवासी अपनी आदिम पहचान के साथ दुर्गम वन-पर्वत-घाटियों में अब तक बचे हुए हैं, वे ही निस्संदेह आज के आदिवासी हैं।"[198]

आदिवासियों की अपनी-अपनी धार्मिक-आस्थाएँ, पूजा-पाठ मुख्यधारा के समाज से हटकर है। आदिवासी अधिकतर अपने पुरखों को पूजते हैं। जिससे उनका जीवन चलता है उसे आदिवासी समुदाय पूजते हैं। जैसे - समुद्र, सूर्य, चंद्र, वायु आदि। इसके साथ-साथ भगवान शिव को कुछ समुदाय पूजते हैं। जैसे - "आदिवासियों की अपनी परंपरागत धार्मिक मान्यताएँ रही हैं। उनके अपने लोक देवता हैं (क्षमा करें, देवता शब्द के अलावा इस सन्दर्भ में दूसरा कोई नाम मुझे याद नहीं आ रहा हैं) जो पृथ्वी लोक से परे किन्हीं अदृश्य (काल्पनिक) स्वर्गों या बैकुंठों के वासी न होकर उनके इर्द-गिर्द खेतों की मेंड़, दरख्तों के तेल, नदी-नाले-तालाबों के किनारे, डूँगरियों-टेकरियों-टीलों पर रहते

---

[198] आदिवासी दुनिया, पृ सं 116

आये हैं। ये देवता आलीशान धर्मस्थलों में साज-श्रृंगार के साथ नहीं दिखते और न ही इन्हें छप्पन भोग परोसा जाता है । ये तो इन्हीं आदिवासियों- 'अधमानुष जंगली-जाहिल-गंवार' लोगों जैसे हैं। इन देवताओं में अधिकांश तो आदिवासियों के पितर-पुरखे ही होते हैं। दुख-दर्द व खुशी के मौकों पर अपने जैसे इन्हीं देवताओं को भजते-पूजते आये हैं ये आदिवासी । इन देवताओं से आदिवासीजन किसी पारलौकिक अमूर्त मोक्ष की कामना नहीं करते । बस, रोटी-कपड़ा-झोंपड़ी का जुगाड़ होता रहे- इतनी ही मनौती करते हैं।"[199]

घुमंतू आदिवासी समुदाय एक ऐसा समुदाय है जो कई सालों से एक जगह से दूसरी जगह अपना जीवन चलाने के लिए घूमते रहते हैं। इन समुदायों के लोगों को स्थिर आवास नहीं है। इन जनजाति को लेकर कोई चिंतित नहीं है। उनके हित में न तो समाज है, न सरकार काम कर रही है। सरकार उन समुदायों को आदिवासी स्थाई प्रमाण पत्र नहीं दे रही है। इन घुमंतू समुदायों को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। जैसे- "आदिवासियों में घुमंतू समुदाय अलग से हैं जो अब तक किसी धर्म की पकड़ में नहीं आ सके। वे इधर से उधर घूमते ही रहते हैं। इस आदिवासी घटक की तो जनगणना भी नहीं होती है।"[200] उपरोक्त उद्धरण से पता चलता है कि घुमंतू जनजाति के लोग किसी कैटगीरी में नहीं गिने जाते हैं। उनके पास न आधार कार्ड है, न राशन कार्ड है, सरकार की ओर से कोई प्रमाण-पत्र इन समुदायों के लोगों के पास नहीं है । इसलिए सरकारी विकास योजना के फल इन लोगों को नहीं मिल रहा है।

आदिवासी-विकास के नाम पर कई योजनाएँ बनायी गईं है । लेकिन उसमें से कितनी योजनाएँ आदिवासियों तक पहुँची हैं ? विकास योजनाओं से आदिवासी जुड़े की नहीं ? इसके साथ-साथ आदिवासियों के प्रति बाहर के लोगों का दृष्टिकोण किस तरह का

---

[199] आदिवासी दुनिया, पृ सं 116-117

[200] आदिवासी दुनिया, पृ सं 119

रहा है ? आदिवासियों के बारे में सभ्य समाज के लोगों की दृष्टि किस तरह की रही है, इसे इस उद्धरण के माध्यम से समझा जा सकता है- “वर्ष 1976-77 में श्री रामशरण जोशी द्वारा किये गये बस्तर के आदिवासियों में आधुनिक शिक्षा के अध्ययन के दौरान उन्होंने पाया कि प्रशासक से लेकर सवर्ण अध्यापक तक प्रायः इस विश्वास के थे कि आदिवासी लोग जाहिल, काहिल, जंगली होते हैं और कभी सभ्य नहीं बन सकते । इनकी शिक्षा पर सरकार जो खर्च कर रही है, वह सब व्यर्थ है, क्योंकि आदिवासी अपनी जंगली व्यवस्था से बाहर आना ही नहीं चाहते हैं ।”[201]

आदिवासियों के प्रति सभ्य समाज का व्यवहार उदासीनता से युक्त रहा है । आदिवासियों के प्रति कठोर एवं उन्हें जाहिल के तौर पर पढ़ा-लिखा तबका भी देखता आ रहा है । आदिवासी के मन में इस व्यवहार से हीन भावना का उदय हो जाता है । किसी भी समाज, समुदाय, व्यक्ति से जुड़ने के लिए समय देना पड़ता है । धीरे-धीरे संबंध बनता है । उसके बाद सब कुछ चलता है । इस तरह सबसे पहले आदिवासी समुदायों से जुड़कर, उनके जीवन को समझकर उन समुदायों की भलाई के लिए योजना बनाने की आवश्यकता है । आखिर रचनाकार इस तरह कहते हैं कि ‘आदिवासियों के साथ सभ्य समाज एक मनुष्यता की तरह व्यवहार करें ।’

आदिवासी समुदायों की अपनी-अपनी भाषाएँ होती हैं । बहुत सारी आदिवासी भाषाओं को संविधान में जगह नहीं मिली हैं । वर्तमान में आदिवासियों की भाषाएँ किस तरह विलुप्त हो रही हैं । आदिवासी भाषाओं का अस्तित्व मिटने की कगार पर हैं । आदिवासी भाषाओं को बचाने की आवश्यकता है । आदिवासी भाषाओं को संविधान में स्थान देना चाहिए, आदिवासी भाषाओं को बचाने के लिए सरकार को योजनाएँ बनाने की आवश्यकता है । किसी भाषा की मौत हो गई तो समुदाय की भी मौत हो जाती है । भाषा के आधार पर आदिवासी का अस्तित्व जुड़ा है । इसलिए आदिवासियों की संस्कृति का संरक्षण सरकार एवं जन-समुदाय दोनों की ही जिम्मेदारी है । इस तरह मरने वाली

---

[201] आदिवासी दुनिया, पृ सं 124

आदिवासी भाषाओं को लेकर रचनाकार मनोवेदना अभिव्यक्त करते हैं। इसके साथ-साथ आदिवासी इलाकों में आदिवासी भाषाओं में पढ़ाने की बात हरिराम मीणा करते हैं।

(iv) विकास परियोजनाओं के नाम पर विस्थापन -

विकास के नाम पर अनेक बांध परियोजनाओं का निर्माण किया गया है। अधिकतर बांध-परियोजनाएँ आदिवासी इलाकों में बनायी गयी हैं। बांध- परियोजनाओं की वजह से आदिवासियों को कई तरह की समस्याओं का सामना करना पड़ा है। अपनी पुश्तैनी जमीन से उन समुदायों को विस्थापित होना पड़ा है। जैसे - "बांध परियोजना, राष्ट्रीय उच्च मार्ग, रेलवे लाईन, खनन-व्यवसाय, औद्योगीकरण, अभयारण्य एवं अन्य कारणों से आदिवासियों का अनिवार्य विस्थापन होता है तो एक तरह से उन्हें अपनी पारम्परिक जमीन व परिवेश से खदेड़ने को विवश किया जाता है। इसकी वजह से उनकी जीविका के आधार भी समाप्त होते हैं। प्रश्न उठता है उनके जीविकोपार्जन के विकल्प तलाश किये जाने का।"[202]

विकास की परियोजनाओं की वजह से कितने आदिवासी गाँवों को विस्थापित होना पड़ा। बांध के साथ-साथ बड़ी-बड़ी कंपनियाँ आदिवासी इलाकों में खड़ी करने की वजह से, थर्मल पावर के कारण, रेल मार्ग के कारण कई आदिवासी समुदायों के लोग विस्थापित हुए हैं। आदिवासी को विस्थापन के कारण रहन-सहन से लेकर खान-पान तक तरह-तरह की समस्याओं का सामना करना पड़ा है। सबसे पहले उन समुदायों के अस्तित्व पर ही खतरा है। जैसे- "झारखण्ड की एन.टी.पी.सी (नेशनल थर्मल पावर कॉरपोरेशन) परियोजना के कारण कनकपुरा घाटी के 186 गांवों के कुल 3 लाख में से 2 लाख लोगों पर विस्थापन का संकट गहराया। नवम्बर, 2006 में 10,000 आदिवासियों ने एकत्रित होकर इसका विरोध किया। जैसे ही एनटीपीसी ने अपना दफ्तर खोला

202 आदिवासी दुनिया, पृ सं 141

3000 की भीड़ ने उसे नष्ट कर दिया। एक तरफ परियोजना को सफल बनाने की जिद रही है दूसरी ओर विरोध अभी भी जारी रहा।"[203]

विकास की किसी भी परियोजना के निर्माण के लिए आदिवासियों की जमीन ही अनुकूल दिखती है। आदिवासियों की जमीन को आसानी से हड़प सकते हैं। इस तरह की सोच अपनाकर, सरकार एवं पूँजी के पैरोकार आदिवासियों की जमीनों पर बांध, पावर प्लांट, रेल मार्ग, बड़ी- बड़ी कंपनियाँ खड़ी करते हैं। आदिवासियों की जमीन लेकर उन्हें कुछ प्रतिशत कमिशन देने की बात भी करते हैं। उनके जीवन को लेकर चिंता नहीं करते हैं। उनका भविष्य कैसा होगा ? इससे किसी को लेना-देना नहीं है। सरकार एवं पूँजी का एक ही लक्ष्य था कि- आदिवासियों की जमीन को अपने कब्जे में लेकर उन्हें बेदखल करना। इस तरह की व्यवहार शैली का रचनाकार लेखन के माध्यम से विरोध करते हैं। विस्थापित हुए आदिवासियों को पुनर्वास दिलाने की जरूरत है। उनकी जमीनों में खड़ी की कंपनियों में उन्हें नौकरी देनी चाहिए।

(v) नक्सलवाद -

आदिवासी-इलाकों में नक्सलवाद का उदय किन कारणों से हुआ ? नक्सलवाद की वजह से गरीबों के जीवन में परिवर्तन आया की नहीं ? आदिवासी- समुदायों के लोग नक्सलवाद से जुड़े की नहीं ? आदिवासी-गाँवों में नक्लवाद के उग्र रूप लेने के पीछे क्या कारण रहे हैं ? नक्सलवाद से आदिवासी समुदाय के लोग किस तरह प्रभावित हुए हैं ? इन सवालों को निम्न उद्धरण के द्वारा समझा जा सकता है- "आन्ध्रप्रदेश के आदिलाबाद जिला के गंगापुर गाँव का सर्वेक्षण का हवाला देते हुए कहा गया है कि जो ग्रामीण अंचल किसी वक्त नक्सलवाद से प्रभावित क्षेत्र रहा था वह गांव आधारभूत सुविधाओं से वंचित रहा है। सूदखोरी जमकर व्याप्त रही, कृषि उत्पाद व वनोपज को सूदखोरों द्वारा कोड़ियों के भाव या कर्ज के बदले छीना जाता रहा। गांव के लिए नाममात्र का विद्यालय था।

---

[203] आदिवासी दुनिया, पृ सं 147

वहां कोई अध्यापक नहीं था। सड़क गांव से 16 किलोमीटर दूर व कस्बा का बाजार 40 किलोमीटर दूर था। यह गांव आदिवासियों का है। पहाड़ी व जंगलों से घिरे हुए दुर्गम स्थल में बसी हुई आबादी। यही कारण रहा कि यह पूरा गांव नक्सलवादी बन गया या यों कहें कि नक्सलवाद के लिए यह गांव उपयुक्त था।"[204]

उपरोक्त उद्धरण से पता चलता है कि- गरीबी से मुक्ति के साथ-साथ, शोषण के विरोध में, नक्सलवाद का आविर्भाव हुआ। सामंतवादी - व्यवस्था में देखा जाय तो गाँव की सामान्य जनता से लेकर किसान तक सभी लोगों का शोषण किसी-न-किसी रूप में सूदखोर शोषण करते रहते हैं। किसानों की फसल को कम दाम में खरीदकर उसके श्रम का शोषण करना, किसी परिवार को कर्ज में पैसा देकर झूठे -हिसाब से उनके जगह पर कब्जा कर लेना। गाँव के विकास के नाम पर पैसे अपनी जेब में डाल लेना, आदिवासी गाँवों में ठीक से न तो पीने का पानी मिलता है, न तो विद्यालय, चिकित्सालय का अभाव, सड़क की असुविधा, अंधेरे में जीवन जीना। इस तरह के तरह-तरह के कारण सामने आते हैं। इस तरह की समस्याओं से मुक्ति पाने के लिए नक्सलवाद ने जन्म लिया। तत्कालीन समय में नक्सलवाद का प्रभाव लूटेरों के ऊपर पड़ रहा था। नक्सलवाद, जहाँ अन्याय हो रहा था, वहाँ उग्र रूप धारण करने लगा। नक्सलवाद का एक ही लक्ष्य था कि- सामान्य जनता को समस्याओं से छुटकारा दिलाना। निम्न-वर्गों के जीवन में परिवर्तन लाना ही नक्सलवाद का लक्ष्य रहा है। वर्तमान में देखा जाय तो इसके स्वरूप में परिवर्तन दिखाई देता है। आदिवासी गांवों में परिवर्तन, नक्लवादी-आंदोलन से ही संभव हुआ था। वर्तमान में नक्सलवाद के स्वरूप में अंतर आ चुका है। उसमें सत्तावान के समर्थक रहकर नक्सली आदिवासियों को निशाना बना रहे हैं।

आदिवासी-समुदायों के अपने स्वतंत्र धर्म हैं, संस्कृतियाँ हैं, सभ्यता है। आदिवासी समुदायों को किसी दूसरे धर्म को स्वीकारने की आवश्यकता नहीं है। जैसे- "धर्म के स्तर पर भारतीय मुख्य समाज का अधिकांश हिन्दू वर्ग तथा शेष समाज में मुस्लिम, ईसाई, सिख, पारसी आदि शामिल होंगे। इन सबमें आदिवासी नहीं होता। आदिवासी समाज

---

[204] आदिवासी दुनिया, पृ सं 159

का प्रकृति पर आधारित अपना धर्म है इसलिये ईसाई एवं हिन्दू पक्षधर प्रायः यह कहते पाये जाते हैं कि आदिवासी जन हिन्दू समाज का हिस्सा है। यदि इस बात में दम होता तो हिन्दू धर्मावलम्बियों द्वारा आदिवासियों का हिन्दू धर्म में धर्मान्तरण करवाने के प्रयासों की आवश्यकता नहीं थी। धर्म के स्तर पर पृथक पहचान आदिवासी अस्मिता का एक महत्वपूर्ण पक्ष है।"[205]

उपरोक्त उद्धरण से पता चलता है कि- आदिवासी-धर्म को लेकर किस तरह की गलत धारणा को मुख्यधारा का समाज फैला रहा है। आदिवासी-धर्म के अस्तित्व को मिटाने के लिए कूटनीति को अपना रहे हैं।

(vi) क्या जंगलों को आदिवासी उजाड़ते हैं ?

शुरू से आदिवासी जंगल के संरक्षक ही रहे हैं। आदिवासी वृक्ष को पूजते हैं, फलदार पेड़ की आराधना करते हैं। जंगलों के आधार पर ही उनका जीवन चलता है। हरे पेड़ को आदिवासी कभी नहीं काटते, बाहर के लोग कटाई करते हैं आरोप आदिवासियों पर लगते हैं। इतिहास में जाकर देखेंगे तो आर्यों ने इस देश में प्रवेश के बाद उन्हें कृषि करने के लिए जमीन की आवश्यकता थी तब वे लोग जंगलों को जलाकर साफ करना शुरू किये थे। इसका विरोध आदिवासियों ने किया था। इसे पहला आदिवासी आंदोलन के रूप में ले सकते हैं। जैसे-"सबसे पहले कृषि योग्य भूमि तैयार करने के लिए आर्यों ने जंगलों को जलाना आरम्भ किया। इस कार्य को बाकायदा 'यज्ञ' का नाम दिया गया। खाण्डव वन-दहन इसका एक उदाहरण है। उस घटना का तीखा विरोध नाग जनजाति ने अपने मुखिया वासुकी के नेतृत्व में किया था। जंगलों के पक्ष में वह पहला आदिवासी प्रतिरोध था जो युद्ध तक पहुँचा और अनेक आदिवासी शहीद हुए। हालांकि उस जमाने में कृषि योग्य भूमि की आवश्यकता थी।"[206]

---

[205] आदिवासी दुनिया, पृ सं 169

[206] आदिवासी दुनिया, पृ सं 179

जंगल कटाई किन लोगों की वजह से हो रही है ? जंगलों का सफाया कौन कर रहे हैं ? जंगलों के प्रति आदिवासियों का किस तरह का दृष्टिकोण रहा है ? जंगलों में आदिवासी-समुदायों के लोग किस तरह के व्यवसाय अपनाते हैं । इन सवालों को निम्न उद्धरण के माध्यम से उचित रूप में समझा जा सकता है- “घास-फूस की झोंपड़ी, यहाँ-वहाँ कुछ खाली पड़ी जमीन में अत्यन्त कम मात्रा में खेती-बाड़ी और सहज उपलब्ध वनोपज को निकटवर्ती हाट-बाजार में बेचकर दैनिक उपयोग की कुछ आवश्यक वस्तुओं की खरीद से आगे उनकी मानसिकता नहीं बढ़ी है । अगर ऐसा न होता तो आदिवासी आज भी फटेहाल न रहकर जंगलों को नष्ट करने वाले ठेकेदारों की तरह साधन सम्पन्न होते ।”[207]

आदिवासी की दृष्टि अत्यल्प और संतोषी-वृत्ति की रही है । अतः वह जंगल का उपयोग अपनी दैनिक जरूरतों के लिए ही करता है । यह उपयोगी-दृष्टिकोण है, उपभोगी नहीं । यह संतोषी वृत्ति का परिचायक है, संग्रही और लालजी वृत्ति का नहीं जिस ओर सारी दुनिया जा रही है, आदिवासी अपनी फटेहाल जिंदगी में भी प्रसन्न हैं ।

4.4.5 आदिवासी साहित्य सम्मेलन -

नई दिल्ली, साहित्य अकादेमी का सभागार, दिनांक एक जून, सन् 2002 में आयोजित किये साहित्य सम्मेलन में बी.चीनिया नायक ने बंजारा भाषा को लेकर अपना विचार प्रकट किया था । ‘इस धरती पर जहाँ पर भी देखा जाय तो बंजारों की एक ही बोली, भाषा देखने को मिलती है । उनकी भाषा या बोली को ‘गोर-बोली’ नाम से जाना जाता है ।’ बंजारा बोली को जानने वाले करोड़ों आदिवासी मिल जायेंगे । गोर-बोली की लिपि नहीं है इसलिए उस भाषा को संविधान में जगह नहीं मिल पाई है । गोर-बोली की लिपि तैयार करने के लिए प्रयास जारी है । जैसे-“बी.चीनिया नायक ने बनजारा

---

[207] आदिवासी दुनिया, पृ सं 179

आदिवासी समुदाय के बारे में जानकारी देते हुए बताया कि देश में इस समुदाय की जनसंख्या आठ करोड़ है । ये लोग कश्मीर से कन्याकुमारी और उत्तर-पूर्वांचल से देश की पश्चिमी सीमाओं तक बिखरे हुए हैं, फिर भी इनकी एक भाषा है 'गोर बोली' । कहावत ही नहीं, सच्चाई है कि हर बारह कोस पर बोली बदल जाती है, मगर हिंदूस्तान में बनजारों की गोरबोली ऐसी भाषा है जो देश के सारे बनजारों द्वारा बोली जाती रही है, चाहे वे कही भी हों भाषा के स्तर पर इस आदिम समुदाय की इकजुटता अनुकरणीय है।"[208]

उपरोक्त कथन से पता चलता है कि कितने कोस दूर पर जाकर देखेंगे तो भी बंजारों की गोर-बोली में कोई परिवर्तन नहीं दिखाई देगा है । इस दुनिया में आदिवासियों के जितने समुदाय हैं इन सभी समुदायों से हटकर बंजारा समुदाय भाषा के स्तर पर अपनी संस्कृति को बचाये हुए है । इसलिए यहाँ पर बी.चीनिया नायक जोर देकर कहते हैं कि- हर बारह कोस पर भाषा बदलती है लेकिन बंजारों द्वारा बोली जाने वाली 'गोर-बोली' में इस तरह का बदलाव नहीं दिखाई देता है । भाषा के स्तर पर बंजारों की एकजुटता अनुकरणीय के साथ - साथ मान्य भी है ।

4.4.6 आदिवासी और मीडिया -

आदिवासी विद्रोहों का ज़िक्र तो इतिहासकारों ने नहीं किया लेकिन मीडिया भी आदिवासियों के प्रति पक्षपात का व्यवहार रखता है । मीडिया में आदिवासियों का जिक्र किस रूप में हुआ है ? मीडिया का सहयोग आदिवासियों को रहा की नहीं ? आदिवासियों की समस्याओं को मीडिया में जगह नहीं मिल पाई है । अगर थोड़ा- बहुत जगह मीडिया दे रहा है तो वे रोमांटिक नज़र से आदिवासियों को प्रस्तुत कर रहे हैं । जैसे- "मीडिया में आम आदमी को इस कदर दिये गये स्पेस को देखते हुए जब आदिवासियों की बात सामने आती है तो यह दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति दिखाई देती है कि आजादी की लड़ाई में सन् 1770-

---

[208] आदिवासी दुनिया, पृ सं 225

71 के पहाड़िया विद्रोह से 1947 तक नागारानी गाईदिल्ल्यू के संघर्ष तक भारत के विभिन्न आदिवासी क्षेत्रों में हुए विद्रोहों को इतिहास के साथ तत्कालीन मीडिया यथा पत्र-पत्रिकाओं में कोई स्थान नहीं दिया गया। आजादी के बाद भी नक्सलवाद जैसे मुद्दों के अलावा मीडिया में अगर आदिवासियों को अभिव्यक्त किया है तो बतौर फैशन या अमूर्त्त रोमांटिक दृष्टिकोण अपनाते हुए किया गया है। आदिवासी-जीवन का यथार्थ अपेक्षित स्थान के साथ मीडिया में नहीं देखा गया।"[209]

आधुनिक मीडिया प्रबंधन-तंत्र का हिस्सा बनकर आ रहा है। प्रबंधन-तंत्र का मुख्य उद्देश्य है- अत्यधिक मुनाफा कमाना। यह मुनाफा वे फटेहाल आदिवासियों से कैसे प्राप्त करें यह विचारणीय मुद्दा है। क्रय करने की क्षमता जिन समुदायों के पास होती है वे ही सत्तातंत्र और मीडिया में शोहरत पाते हैं। आदिवासी तो मीडिया के नोटिस का भी हिस्सा नहीं है। वह केवल राष्ट्रीय झांकियों में दिखलायी पड़ता है। अन्यथा वह तो बाजार विरोधी स्वर के कारण 'अन नोटिस्ड' ही बना रहता है।

4.5 'मानगढ़ धाम' (आदिवासी जलियाँवाला) का औचित्य -

'मानगढ़ धाम' (आदिवासी जलियाँवाला), 'धूणी तपे तीर' उपन्यास का ही संक्षिप्त रूप है। 'धूणी तपे तीर' उपन्यास 1857 की 150 वीं जयंती के उपलक्ष्य में प्रकाशित हुआ था। तो 'मानगढ़ धाम' मानगढ़ घटना की 100 वीं जयंती पर प्रकाशित हुआ। इस रचना को लाने के पीछे जो मंतव्य रचनाकार का रहा है, वह है कि- वहाँ हर वर्ष जो मेला उन शहीद बलिदानियों के लिए लगता है उसमें आने वाले श्रद्धालुओं को भी इस रचना से परिचित कराया जाये। इस रचना की उस मेले में 2000 प्रतियाँ हाथों-हाथ बिक गयी। इससे यह पता चलता है कि- वहाँ के जन समाज की लोक-चेतना में मानगढ़ आंदोलन अभी भी सक्रिय भूमिका निभा रहा है। वे लोग उसका लिखित साक्ष्य संक्षिप्त रूप में चाहते थे अतः लेखक ने उस अभाव की पूर्ति 'मानगढ़ धाम' लाकर कर दी।

---

[209] आदिवासी दुनिया, पृ सं 235-236

आज के मनुष्य के पास बहुत ही तीव्र और तेज दौड़ती दुनिया में अत्यल्प समय, दूसरों के लिए बचा है। स्वयं अपने लिए भी उसके पास कम ही समय है। वह संक्षेप में पॉकेट डिक्शनरी के मानिंद तुरंत सक्षेप में जानना चाहता है। 'मानगढ़ धाम' इस आंदोलन को अर्थपूर्ण तरीके से पाठकों, आंदोलन को जानने के जिज्ञासुओं एवं अध्येताओं के लिए उसकी पूर्ति करता है। अतः 'मानगढ़ धाम' का ऐतिहासिक महत्व तो है ही। लोक-चेतना में यह उपस्थित होने के कारण भी लोकेतिहास की सामग्री देने वाली रचना के रूप में उसका स्थान इतिहास में अक्षुण्य बना रहेगा। यह आंदोलन विभिन्न आदिवासी जन-समुदाय की एकता को लेकर लड़ा गया था। इसलिए भी विभिन्न जन-समुदायों के शिक्षित-वर्ग की दृष्टि में इस आंदोलन की अर्थवत्ता एवं उपयोगिता दोनों ही स्तरों पर बनी रहेगी। इतिहासकारों की नज़र से भी यह रचना आधारभूत सामाजिक - इतिहास की सामग्री, उपलब्ध कराती है, जिसकी प्रासंगिकता पर संदेह कम ही है।

4.6 'खाकी में कलमकार' में अभिव्यक्त आदिवासी- जीवन संदर्भ -

आदिवासी रचनाकार के द्वारा हिंदी में लिखे गये पहले संस्मरण के रूप में 'खाकी में कलमकार' को देख सकते हैं। इस संस्मरण में हरिराम मीणा ने अपनी यात्राओं के अनुभवों के साथ - साथ पुलिसकर्मी के अनुभवों को भी इस कृति में समेटने की कोशिश की है। हरिराम मीणा ने पुलिस की नौकरी पाने के बाद, उनके जीवन से जुड़े अनेक अनुभवों के साथ - साथ जिम्मेदारी, दबाव के कारण वे किस तरह महसूस करते हैं इन सबको इसमें दर्ज़ किया है। यहाँ पर सोचने की बात यह है कि- पुलिस का अनुभव दूसरे लोगों से हटकर रहता है। परिवार में परेशानी है तो भी नौकरी में जाना पड़ता है। छुट्टी नहीं मिलती है। कभी-कभी पुलिस को अपनी जम्मेदारी निभाने के लिए जान भी देनी पड़ती है। अधिकतर आपराधिक प्रवृत्तियों के लोगों से इनका वास्ता पड़ता है। पुलिस-कर्म में रात-दिन अनेक परेशानियों का सामना करना पड़ता है। समाज में अनेक घटनाओं से जुड़कर जांच करनी पड़ती है। इस तरह अपने जीवन में घटित अनुभवों को हरिराम मीणा ने इस संस्मरण के माध्यम से समाज के सामने लाने का प्रयास किया है। हरिराम

मीणा को साहित्य के प्रति रूचि पहले से रही है। नौकरी पाने से पहले ही कविता लिखने में उनकी रुचि थी। पुलिस नौकरी पाने के बाद इतनी व्यस्तता एवं दबाव के कारण सहित्य-लेखन के लिए समय नहीं मिल पाता था। इनके मन में बहुत से विचार आते रहते थे। लेकिन समय के अभाव के कारण साहित्य-लेखन के लिए कम समय दे पाते थे, इस विवशता का यहाँ चित्रण हुआ है।

संस्मरणकार ने अपने जीवन में देखी घटनाओं को ही पाठक, समाज के सामने प्रस्तुत किया है। मुख्यधारा के समाज में, पुरूष वर्ग की मानसिकता को भी प्रस्तुत करने की कोशिश इसके अंतर्गत हुई है। उन्होंने लैंगिक भेदभाव का तीव्र विरोध किया है। हमें जिसने जन्म दिया है- वह एक स्त्री है, उस विषय को भूलकर इस आधुनिक युग में स्त्री-जाति को गर्भ में समाप्त कर रहे हैं। इस तरह लैंगिक आधार पर की जाने वाली हत्याओं का हरिराम मीणा विरोध करते हैं। जैसे- "यहाँ पुरूष के मस्तिष्क के भीतर कहीं सामंतवादी मानसिकता की उपस्थिति दिखाई देती है। सामंतवाद के साथ दिक्कत यह है कि किसी के सामने माथा झुकाने में उसे परहेज होता है। इसलिए ऐसे संस्कारों से घिरे पुरूष को स्त्री चाहिए मां के रूप में, बहन के रूप में, पत्नी के रूप में और प्रेमिका के रूप में लेकिन ऐसी पुत्री के रूप में नहीं जिसकी शादी के वक्त माथा झुकाना पड़े। नारी के प्रति पुरूष के ऐसे दृष्टिकोण के चलते कन्या को पैदा होने के बाद मारा जाता रहा है। अब तो हालात ये हैं कि उसे पैदा ही नहीं होने दिया जा रहा। तकनीक की जो सोनोग्राफी रोग-निदान के लिए ही उपयोग में ली जानी थी उसे इंसानी भ्रूण की हत्या करने के काम में लिया जा रहा है। आश्चर्य है कि यह सब कुछ विकसित अंचलों के उन घर-परिवारों में हो रहा है जो भारतीय समाज के ढांचे में अपने-आप का कद ऊँचा मानकर चलते रहे हैं।"[210]

उपरोक्त कथन से पता चलता है कि- स्त्री को शुरू में ही यानी गर्भ में लिंगगत जाँच के आधार पर ही हत्या करने की साजिश रची जा रही है। इस तरह चलता रहेगा तो इस सृष्टि का सत्यानाश होगा। जन्म देने के लिए आने वाले दिनों में कोई माँ नहीं रहेगी। इसलिए रचनाकार अपने आप पुरूष सत्ता पर गर्व करने वाले मूर्खों को सचेत कर रहा है

[210] खाकी में कलमकार, पृ सं 11

कि इस तरह के मानसिक विचार से बचें। स्त्री-जाति को लिंगगत आधार पर अंत करने वालों को सजा देने की आवश्यकता है। स्त्री-शिशु संरक्षण के लिए कानून बनाने की आवश्यकता है। भ्रूण हत्या करने वालों को आजीवन सज़ा दिया जाय। इस तरह हरिराम मीणा अपनी मनोवेदना को अभिव्यक्त करते हैं।

समाज में बहुत सारे ऐसे लोग हैं जो बाबा का वेश धारण करके जनता को गलत दिशा पर चलाते हैं। इन लोगों से बचकर रहने की बात हरिराम मीणा कहते हैं। किसी बाबा का उदाहरण ले लीजिए उनकी मानसिकता पवित्र न रहकर प्रदूषित रही है। उनके झूठ - मूठ के संदेशों को सुनकर उनके जाल में नहीं फंसना है। जैसे - "तो ऐसे बाबाओं से सभी समझदार और सज्जन लोगों को जरा सावधान रहने की जरूरत है चाहे बाबा धौलपुर वाला हो या इन दिनों जोधपुर वाला या ईलाज के नाम पर प्याज-समोसा खिलाने वाला निर्मल बाबा हो अथवा वो अच्छा-खास पुलिसवाला पांडा बाबा ही क्यूं ना हो राधा का स्वांग करता पहुंच गया था जगन्नाथ पुरी।"[211]

उन्होंने बहुत सारी कविताएँ लिखी हैं। पुलिस नौकरी पाने के बाद, साहित्य-लेखन एवं पुलिस-सेवा दोनों के बीच का संबंध बनाने का उन्होंने भरसक प्रयास किया है। लोग इस तरह मानने लगे कि पुलिस के लोगों से संवेदनशील कविता लिखी जाती है क्या ? इस तरह के अपवाद भी सुनने में आ रहे हैं। लोगों की मानसिकता में कवि से पहले उनकी पुलिस वाली छवि सामने आ रही है। उनके द्वारा लिखित कविता-संकलन पर राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी का सर्वश्रेष्ठ 'मीरा पुरस्कार' उन्हें दिया गया।

हरिराम मीणा ने जब पुलिस नौकरी में थे उनको एक जिम्मेदारी दी गई थी। फिल्म शूटिंग की बंदोबस्त करने की, इस बंदोबस्त के समय में उन्होंने बहुत कुछ ज्ञान अर्जन किया था। बड़े-बड़े स्टार से मुलाकात हुई। इसके साथ - साथ गिरीश कर्नाड जैसे लोगों से मिलकर बात करने का मौका मिला है। जैसे-"भरतपुर के घना राष्ट्रीय पक्षी उद्यान में इस फिल्म की शूटिंग चली थी पंद्रह दिन तक। पुलिस बंदोबस्त की दृष्टि से

[211] खाकी में कलमकार, पृ सं 27

डिप्टी एस.पी. की हैसियत से मेरी ड्यूटी फिल्म यूनिट के साथ लगा दी । फिल्म यूनिट ठहरी थी पक्षी अभयारण्य में अवस्थित फोरेस्ट लॉज में । घना की शूटिंग पूरी हो गई । मेरा जिम्मा पूरा हुआ । फिल्म शूटिंग के दौरान बहुत कुछ देखने, सीखने व गिरीश कर्नाड, शशि कपूर, रेखा जैसे स्टार कलाकारों से मुलाकात का अवसर मिला ।"[212]

उपरोक्त उद्धरण से पता चलता है कि फिल्म स्टार के साथ भयंकर जंगलों में बंदोबस्त करना, नये-नये माहौल को देखना, फिल्म शूटिंग को अपने आँखों से देखना, रेखा जैसी स्टार से मिलना, बड़े निर्देशक से बातचीत करना एक तरह का नया अनुभव है। उस बंदोबस्त के दौरान बहुत कुछ सीखने को मिला है । शूटिंग में स्टार को बहुत मेहनत करनी पड़ती है, एक ही शॉट को बार-बार करना पड़ता है । इस तरह हरिराम मीणा ने बहुत सारे क्षेत्रों से अनुभव प्राप्त किये हैं और उन्हें पाठकों तक पहुँचाया है ।

समाज में जाति, गोत्र की जड़ें गहराई से फैली हुई हैं । इसलिए जाति को मिटाना इतना आसान नहीं अधिकांश लोग तो जाति-गोत्र की मानसिकता में ही जी रहे हैं । एक आदमी, दूसरे आदमी की मुलाकात के समय, पहले जात को तलाशते हैं । जात से ही आदमी का भविष्य तय किया जाता है । जात के आधार पर ही प्राचीन काल में कार्यभार करना पड़ता था । समाज में असली समस्या जाति से ही पैदा होती है । आदमी से बातचीत के दौरान जाति को तलाशने वाले लोग हमें आज भी मिल जायेंगे । इस तरह जाति को चिह्न मानकर चलने वालों का रचनाकार विरोध करते हैं । इसके साथ-साथ पढ़े-लिखे लोग जाति-व्यवस्था से बचने की बात करते हैं । जैसे- "'क्या है ये ?' साहब ने मुझसे पूछा । मैंने ज़वाब दिया 'पुलिस का इंस्पेक्टर ।' उन्होंने फिर पूछा कौन हैं ये ? मैंने कहा 'नंदलाल ।' (काल्पनिक) यह प्रश्न उन अफसर महाशय ने पांच-छः बार पूछा । हर बार मैंने ज़वाब यही दिया कि 'नंदलाल ।' मेरे प्रत्येक उत्तर पर उन अफसर का पारा चढ़ता दिखाई दे रहा था । उन्होंने झल्लाकर पुलिस निरीक्षक की तरफ मुखातिब होकर पूछा 'क्या नाम है आपका ?' पुलिस निरीक्षक ने ज़वाब दिया कि 'नंदलाल ।' पुनः सवाल

---

[212] खाकी में कलमकार, पृ सं 88

दागा 'क्या हैं आप ?' ज़वाब मिला कि 'जी, पुलिस निरीक्षक ।' अगला सवाल फिर से वही पुराने वाले अंदाज़ में 'कौन हैं आप ?' इसका जवाब भी पेटेंट मिला जी सर, पुलिस निरीक्षक । बार-बार नेम प्लेट देखता हुआ सतर्कता शाखा की वह वरिष्ठ पुलिस अफसर उस निरीक्षक की ओर गुर्राता हुआ मुझसे पूछता है 'यह अपना पूरा नाम नहीं लिख सकता अपनी नेम प्लेट पर ?' मैंने बड़ी विनम्रता के साथ ज़वाब दिया सर, पुलिस मुख्यालय के आदेश हैं कि 'राजस्थान पुलिस का प्रत्येक अधिकारी व कर्मचारी वर्दी के साथ लगाई जाने वाली अपनी नेम प्लेट पर केवल अपना नाम लिखवाएगा ।' और इस पुलिस निरीक्षक ने अपना नाम नंदलाल लिखवा रखा है । और यह नंदलाल ही है । आप बताइए यह और क्या लिखवाता ? कुल मिलाकर वह अफसर उस पुलिस निरीक्षक की जाति पूछना चाह रहा था ।"[213]

उपरोक्त उद्धरण से पता चलता है कि जाति-गोत्र की जड़ें कितनी गहरी हैं । इस दौर में जात-पांत से कुछ लेना देना नहीं है । सभी लोगों की एक ही जात है मनुष्यजाति, इस धरती पर सब लोग समान है । जाति के आधार पर किसी को नीचा करके देखना अनुचित है । रचनाकार जाति-गोत्र का खण्डन करते हैं । जाति के वजह से एक-दूसरे में भेदभाव उत्पन्न होता है । जाति के वजह के किसी समुदायों को सताना इस तरह के हरकतों को रचनाकार खुद विरोध करके नये पीढ़ी के लोगों को इस तरह के जाति की भावना से बचने के लिए कहते हैं । जाति के जाल में नहीं फंसने की बात हरिराम मीणा कहते हैं । इस तरह के अपने अनुभवों के माध्यम से वे जनता को जागृत करते हैं । पढ़े-लिखे लोगों को जाति की भावना का त्याग करना पड़ेगा ।

---

[213] खाकी में कलमकार, पृ स 115-116

4.7. 'आदिवासी लोक की यात्राएँ' में अभिव्यक्त आदिवासी - जीवन -

'आदिवासी लोक की यात्राएँ' (आदिवासी यायावरी) पुस्तक के बारे में इसके ब्लर्व पर लिखा है कि – "देश की स्वतंत्रता के पश्चात् संविधान एवं अन्य सरकारी योजनाओं में आदिवासी विकास के बहुत से प्रावधान बनाये गये हैं। ब्रिटिश काल से लेकर अब तक हुए शोध व अध्ययनों की भी कमी नहीं है। यह सब कुछ होने के बावजूद आदिवासी विकास की गति अत्यन्त धीमी रही। लोकतांत्रिक असरदार होने पर भी मजबूत आदिवासी नेतृत्व पैदा नहीं हो सका।"[214]

इस कृति में आदिवासी समाज के यथार्थ से पाठकों का सीधा साक्षात्कार और परिचय रचनाकार ने करवाया है। आदिवासी समाज सदियों से देश की प्राकृतिक संपदा का संरक्षण एक ट्रस्टी या कस्टोडियन की हैसियत से करता आ रहा है लेकिन आज के दौर की विडंबना देखिए कि वही आदिवासी समाज आज अपनी अस्मिता को लेकर चौतरफा दबावों से घिरा हुआ है। उत्तर-औपनिवेशिक दौर में वह बाहरी और भीतरी घुसपैठियों से जूझता हुआ अपने अस्तित्व के लिए त्रासद समय में जी रहा है। रचनाकार ने इस रचना की भूमिका का शीर्षक 'प्रस्थान : पहले यहाँ से देखें' में लिखा है कि "समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से अगर देखा जाये तो भारतीय समाज को हम दो बड़े वर्गों के रूप में देख सकते हैं; एक, वर्णावतरित जाति प्रणाली पर आधारित भारतीय समाज और दूसरा आदिवासी भारत। इस देश के आदिवासी इस देश की धरती के मूलवासी हैं। इस मूल-मानवता को मैं निरपेक्ष अर्थ में नहीं लेकर 'ज्ञात प्राचीनता' के सापेक्षिक संदर्भ में समझने का प्रयास करता रहा हूँ।"[215]

'आदिवासी लोक की यात्राएँ' कृति के मूल में आदिवासी-जीवन ही है। रचनाकार ने एक निर्णय लिया कि चलो, खुद चलकर ही उन आदिम इलाकों को देखा जाये कि वहाँ

---

214 आदिवासी लोक की यात्राएँ, आवरण पृष्ठ

215 आदिवासी लोक की यात्राएँ, पृ सं 7

क्या हो रहा है ? लोग कैसे जी रहे हैं ? उनकी स्मृतियों में क्या है और क्या है उनके स्वप्नों में ? इन सारी बातों को लेकर लेखक का रूझान आदिवासी जीवन से संबंधित मुद्दों की ओर गया और उन्होंने निम्नांकित आदिवासी बहुल अंचलों की यात्राएँ की । जैसे - "जिन-जिन अंचलों की मैंने यात्राएँ की उनमें आदिवासी 'हृदयांचल' के झारखंड, छत्तीसगढ़, महाराष्ट्र, तेलंगाना व आन्ध्रप्रदेश हैं । उनमें मध्यप्रदेश, राजस्थान व गुजरात हैं । दक्षिण भारत का प्रतिनिधित्व करने वाली नीलगिरी की घाटियाँ हैं । बंगाल की खाड़ी के 'कालापानी' के तूफ़ानी थपेड़ों को सदियों से झेल रहे अंडमानी टापू हैं और पश्चिमी बंगाल से लेकर हिमालय के धवल शिखरों की गोद में बसे शीतांचल भी हैं । इन भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में आदिकाल से घुमक्कड़ी अथवा स्थायी रूप से निवास करने वाले आदिवासी समुदाय निःसंदेह, नृतत्व वैज्ञानिक दृष्टिकोण से अनेक प्रजातियों से संबंध रखते हैं, किंतु आश्चर्य है कि उनका अतीत व वर्तमान, उनकी स्मृतियाँ व स्वप्न, उनके सांस्कृतिक मूल्य व स्वभाव, उनका परंपरागत सामाजिक व राजनैतिक ढाँचा, उनका आर्थिक व भौतिक जीवन, बाहरी लोगों के प्रति उनका नज़रिया व व्यवहार, उनके इलाकों में अवैध व अनैतिक घुसपैठ करने वालों के विरुद्ध उनका प्रतिरोध-संघर्ष-बलिदान सब का सब समान प्रतीत होता है । एक मात्र वजह है उनके जीवन में प्राकृतिकता व आदिमता ।"[216]

भारत के आदिवासियों के प्रति मुख्यधारा के समाज का नज़रिया परंपरागत पूर्वाग्रह से युक्त रहा है और है । इस नज़रिये को बदलने की जरूरत है क्योंकि परंपरागत इस नज़रिये में द्वीपदीय या बाइनरी-सिद्धांत कार्य करता है जिसमें शक्तिवान एवं शक्तिहीन, प्रधान और गौण / हाशियाकृत की विषमता का भेद-भाव मूल में है । यात्रा-वृत्तांतकार आदिवासी जन-समुदायों को मानवीय गरिमा के साथ प्रस्तुत करते हैं । वंचित मानवता के इन वर्गों को साहित्य में दृष्टि संपन्नता के साथ रचनाकार ने प्रस्तुत किया है । रचनाकार ने उन वर्गों को देखने की धार्मिक, वर्णिक, औपनिवेशिक और उत्तर-औपनिवेशिक दृष्टियों का प्रत्याख्यान करके नवीन दृष्टिकोण से रचना का मौलिक

[216] आदिवासी लोक की यात्राएँ, पृ सं 9

परिप्रेक्ष्य उपस्थित किया है । जैसे- “ओंग समुदाय के लोग अपने आप को ‘एन-इरेगल’ कहते हैं जिसका अर्थ होता है ‘संपूर्ण आदमी’ । सृष्टि के जो सरोकार होते हैं वे ही संपूर्ण आदमी के सरोकार होते हैं । ये सरोकार अगर कहीं बचे हैं तो केवल आदिवासी समाज में।..... धरती को यदि किसी से बड़ा खतरा है तो वह है आधुनिक मनुष्य से ।.....लेकिन इन आदिवासी भाईयों में तो निजी संपत्ति की अवधारणा अभी भी उस रूप में नहीं है जिस रूप में ‘विकसित सभ्य-जन’ कुत्ते-बिल्लियों की तरह लड़-झगड़ रहे हैं ।”[217]

हरिराम मीणा की सारी चिंताएँ आदिम मनुष्य की इस सोच को बचाने की है क्योंकि यह मानवता के पक्ष में जाती है । आदिवासी की संपूर्ण कोशिश पर्यावरण और धरती की हरियाली को निरंतर बचाने की रही है । लेकिन आज उसका ही जीवन बहुराष्ट्रीय निगमों, नये पनपे दलाल वर्ग तथा सुविधाभोगी नव संभ्रांत की असीम लालची भूख के हाथों अकाल काल-कवलित हो रहा है। वैश्वीकरण के इस युग में राष्ट्र समाजों की सीमाओं का तेजी से अतिक्रमण हो रहा है तब यह सवाल उठ खड़ा होता है कि स्थानिक व आंचलिक अस्मिताएँ किस रूप में बची रहेंगी ? और बची भी रहेंगी या नहीं ? भारत जैसे सांस्कृतिक बहुलतावादी देश के लिए एक राष्ट्र और एक संस्कृति का नारा खतरनाक तो है ही यह हमें फासीवाद की ओर अग्रसर करता है । लेप्चा जन-समुदाय की संस्कृति को आधुनिक चोला पहनाया जा रहा है इससे उनकी सांस्कृतिक अस्मिता पर संकट और भी अधिक गहरा गया है । जैसे - “किसी ज़माने में लेप्चा लोग भी घुमक्कड़ी कबीलाई जीवन पद्धति के साथ रहा करते थे। ..... अपनी धरा ..... को ये ‘मायेल देश’ कहा करते थे ।..... हमारी भूमि पर हम ही अल्पसंख्यक हो गये । हमारी विरासत, हमारी संस्कृति, हमारी पुस्तकों, हमारी पांडुलिपियों, हमारे पुश्तैनी ज्ञान-विज्ञान और हमारी ‘जननी’ ‘कंचनजंघा’ की किसी को कोई परवाह नहीं ! वास्तव में सारा सामाजिक ताना- बाना चौपट हो गया ।”[218]

---

[217] आदिवासी लोक की यात्राएँ, पृ सं 24

[218] आदिवासी लोक की यात्राएँ, पृ.सं. 87-88

पंचम अध्याय

हरिराम मीणा की कला और भाषा

हरिराम मीणा के सृजनात्मक और आलोचनात्मक – लेखन को समझने के लिए सर्वप्रथम हमें दो बिंदुओं पर विचार करना जरूरी है । पहला – रचना में रचनाकार का निजी - कौशल क्या सर्वोपरि होता है ? दूसरा – रचना की अपने - आप में कोई स्वायत्तता नहीं है बल्कि वह भाषा का ही एक हिस्सा है । उपरोक्त दोनों तत्वों का आशय यह है कि रचना में रचनाकार का कौशल और भाषा दोनों विशिष्ट भूमिका निभाते हैं । इन दोनों के समायोजन से ही रचना महत्वपूर्ण और संप्रेषणीय बनती है । ये दोनों तत्व कला और भाषा के अंतर्गत समाहित होते हैं । कला में रचनाकार का कौशल, सोच, उद्देश्य और प्रतिबद्धता विशिष्ट भूमिका निभाते हैं । जबकि अभिव्यंजना-पक्ष में रचना की बाहरी बुनावट, रूप-पक्ष और परिवेश विशेष की भाषा विशिष्ट हो जाते हैं ।

5.1 रचना का विषय, अंतर्वस्तु और लेखक की रचना – दृष्टि का अंतः संबंध -

हरिराम मीणा ने भारत की आदिवासी दुनिया के उपेक्षित और सीमांत-क्षेत्रों में अवस्थित जन-समुदायों को साहित्यिक स्वर प्रदान किया है । इन्होंने विषय-वस्तु के स्तर पर भारत के आदिम आदिवासियों, मिथक, इतिहास में आदिवासियों से संबंधित संदर्भों और औपनिवेशिक भारत में आदिवासियों के संघर्ष-बलिदान और आंदोलनों को साहित्य की आधार-सामग्री बनाया है । वैश्वीकरण के दौर में आदिवासी जन-समुदायों की स्थिति विशेष को इन्होंने साहित्य के धरातल पर लाने का अभिनव कार्य किया है । इस रूप में हरिराम मीणा ने मानवता के सबसे उपेक्षित जन को अभिव्यक्ति प्रदान की है । सबसे उपेक्षित जन-समुदायों के प्रति आधुनिक मनुष्य का रवैया उदासीनता से युक्त है या अद्भूतता और रोमानियत से भरा हुआ है । उसके जीवन-यथार्थ को अभिव्यक्ति प्रदान करने की सौगंध कर्मठ हरिराम जी ने खायी हुई है । अतः उनके साहित्य में इन उपेक्षित जन-समुदायों की आदिवासी दुनिया और उसके आस-पास का समाज दोनों एक साथ

अभिव्यक्त हुए हैं। हरिराम मीणा के साहित्य में भारत का आदिवासी जन-समुदाय प्राक्-ऐतिहासिक काल खण्ड से लेकर अधुनातन संदर्भों और स्थितियों में अभिव्यक्त हुआ है। इस विषय का चुनाव करने के पीछे ठोस आधारभूत कारण रहे हैं। भारत की आबादी का लगभग 8.6 प्रतिशत (10 करोड़, 2011 की जनगणना के अनुसार) जन-समुदाय क्या इतिहासविहीन हो सकता है ? जो सभ्यता की विकास-यात्रा में निरंतर प्रतिकूल परिस्थितियों में भी अस्तित्ववान और संघर्ष की लौ को थामे हुए आगे बढ़ता रहा हो आज उसकी स्थिति और अस्तित्व पर गंभीर खतरा उपस्थित हो गया है। यह खतरा सुनियोजित षड्यंत्र और विचारधारा के गलत उपयोग से उत्पन्न हुआ है जिसका प्रत्याख्यान हरिराम जी करते हैं। जैसे- "जहाँ तक आदिवासी समाज का सवाल है तो भारतीय मिथकों में उसका चित्रण मानवेतर प्रजातियों यथा राक्षस, असुर, दैत्य, दाना, दानव आदि का हिकारत भरा दर्जा देते हुए किया गया है। प्राचीन इतिहास में दूर से देखे गये 'जंगली कबीलों' के रूप में। ब्रिटिशकाल में वैज्ञानिक अध्ययन किए गये हैं, मगर कुल मिलाकर नज़रिया जो रहा, वह था 'जंगली बर्बर' मानने का। इसीलिए करीब-करीब सभी आदिम समुदायों को 'जरायम पेशा' कहा गया और बाकायदा आपराधिक जनजातीय अधिनियम के तहत उनको सूचिबद्ध किया गया, जिसकी एकमात्र वज़ह थी कि उन्हीं समुदायों के लोग विदेशी सत्ता के लिए प्रतिरोधी चुनौती थे। या फिर फ़ादर होफमैन व वेरियर एल्विन जैसे विद्वानों ने काम किया, जिनके तथ्यात्मक अवदान को एक हद तक स्वीकार करते हुए भी अंततः वह सारा का सारा आदिवासियों की श्वेत-श्याम तस्वीरों की रूमानियत के प्रदर्शन से आगे नहीं बढ़ सका, जहाँ विभिन्न आदिम प्रजातियों की उत्पत्ति की खोज, घुमक्कड़ जिंदगी के मार्ग, संस्कृति के विभिन्न उपांग, बस्तियाँ, शासन-प्रणालियाँ, गोत्र, साहित्य, मिथक, भौगोलिकता वगैरा बहुत कुछ है, लेकिन उनके क्षेत्र में अवैध व अनैतिक घुसपैठ, उनका शोषण, उन पर लगायी गयी पाबंदियाँ, उनके अभाव, उनके डर, उनकी चिंताएँ, उनकी असुरक्षाएँ, प्राकृतिक प्रकोप,

महामारियाँ तथा इन सबके साथ उनके स्वप्न, गौरव, प्रतिरोध-संघर्ष-बलिदान और मुक्ति के मार्ग जैसे महत्वपूर्ण विषयों की अनुपस्थिति देखकर हमें निराश होना पड़ता है।"[219]

उपरोक्त उद्धरण का आशय है कि आदिवासी को विषय के रूप में तो चुना गया था या है लेकिन उसके समाज और उसके जीवन की अभिव्यक्ति करने में अनेक भूलें और त्रुटियाँ हुई हैं। हरिराम मीणा आदिवासी-जीवन के संदर्भों को पकड़ते हैं और उन्हें लेखक की रचनात्मक और **विश्व** दृष्टि से नवीन, मौलिक और प्रासंगिक बना देते हैं। विषय एक हो सकता है लेकिन रचनाकार की रचना-दृष्टि और जीवन को देखने का दृष्टिकोण उसे विशिष्ट और भिन्न बना देते हैं। यह लेखक की अंतर्दृष्टि से ही संभव हो पाता है। तभी तो विषय में अपूर्वता अर्थात जो साहित्य में पहले न देखी गई हो का समावेशन हो पाता है। यह रचनाकार की अंतर्दृष्टि का ही कमाल है। हरिराम मीणा की रचना-दृष्टि का विकास कैसे और किन रूपों में हुआ है ? इस सवाल की पड़ताल के क्रम में ही उनके कला और भाषा-संबंधी विचारों को समझा जा सकता है।

'धूणी तपे तीर' की कथा-वस्तु या अंतर्वस्तु में मानगढ़ में हुए आदिवासी जनांदोलन को प्रमुखता से उठाया गया है। इस आंदोलन का नेतृत्व गोविंद गुरू ने किया था। उन्होंने सामाजिक-सुधार के माध्यम से धूमाल मचाने का आह्वान किया। गोविंद गुरू का लक्ष्य यह था कि- किसी भी तरीके से आदिवासियों को जागृत करके उनके अंदर चेतना को फैलाना है। गोविंद गुरू अपने आस-पास की चीजों को उदाहरण के रूप में लेकर, आदिवासियों को जागृत करते थे। आदिवासियों को समझाने की कोशिश करते थे। जैसे- "कुरिया ने चकमक में से चिनगारी पैदा की। चिनगारी आग बनी। इसका मतलब पत्थरों में आग है। जो पत्थरों में आग है तो पहाड़ में आग है और जो पहाड़ में आग है तो जिन पहाड़ों में आदिवासी रहते हैं उन आदिवासियों के भीतर भी आग होनी चाहिए। उस आग को मैं जलाना चाहता हूं। मेरे गांव के पुजारी ने बताया था कि हर इन्सान के भीतर ज्योत है। जो आदमी उस ज्योत को पहचान लेता है उसे भगवान के दर्शन हो जाते हैं। ये

[219] आदिवासी लोक की यात्राएँ, पृ सं 7-8

दरसन भगवान की भगती से होते हैं। मन में कोई मैल रखे बिना आदमी भगती करे तो यह काम मुश्किल नहीं होता। ज्योत तो एक चिनगारी की तरह है जिस पर मन के मैल की राख जम जाती है। मन पर जमे मैल की राख को झाड़ दो तो ज्योत की चिनगारी परगट हो जाती है, वैसे ही जैसे चकमक में से चिनगारी निकलती है और चिनगारी आग बन जाती है। यही आग आदमी को बुराई से लड़ने की ताकत देती है।"[220]

श्री हरिराम मीणा ने आदिवासियों की समस्याओं को निकट से देखा है। उन्होंने शोध-कार्य के लिए आदिवासी इलाकों को चुना है। हरिराम मीणा ने जो-जो घटनाएँ देखीं, बुजुर्गों के माध्यम से जो सुना, उन सभी बिंदुओं को अपने लेखन के माध्यम से यथार्थ पूर्वक हमारे सामने प्रस्तुत किया है। हरिराम मीणा के साहित्य में काल्पनिक प्रस्तुतियाँ हमें बहुत कम दिखाई देती हैं। रचनाकार को धीरे-धीरे समझ में आया कि आदिवासियों के साथ अन्याय हुआ है। गैर-आदिवासी, आदिवासियों को छल-कपट के साथ उनका शोषण पीढ़ी-दर-पीढ़ी से करते आ रहे हैं। इस तरह आदिवासियों के प्रति होने वाले अन्याय के विरूद्ध रचनाकार अपनी कलम के माध्यम से आवाज उठा रहे हैं। आदिवासियों को न्याय दिलाने के लिए वे किस तरह से संघर्ष कर रहे हैं?

खासतौर पर देखा जाय तो हरिराम मीणा का साहित्य-लेखन शोध के आधार पर ही लिखा गया है। रचनाकार आदिवासी से संबंधित प्रमाण को तलाशकर अपनी रचना-प्रक्रिया को आगे बढ़ा रहा है। इतिहास के पन्ने को रचनाकार पलटकर आदिवासियों को तलाश रहा है। मिथकों में आदिवासियों की कैसी स्थिति रही है? आदिवासियों को छलपूर्वक एक योजना बनाकर कैसे दबाया गया है? इस तरह के तमाम मुद्दों को आधार के साथ रचनाकार प्रस्तुत कर रहा है। इसके साथ-साथ हरिराम मीणा के साहित्य में आदिवासी-जीवन से संबंधित तमाम मुद्दे उभरकर सामने आए हैं। प्रमुख रूप से देखा जाय तो इनके साहित्य में सबसे पहले आदिवासी-विमर्श सामने आया है। इसके साथ-साथ आदिवासी-चेतना, स्त्री-विमर्श, गरीबी की समस्या, बेगारी की समस्या,

---

[220] धूणी तपे तीर,पृ सं 23-24

अंधविश्वास, अस्तित्व पर संकट, आदिवासी परंपराएँ, आदिवासी-संग्राम, आदिवासी-संस्कृति, पर्व-त्यौहार, आदिवासी लोक-साहित्य, शोषण, विस्थापन की समस्या, जल, जंगल, जमीन, अकाल, अतिवृष्टि-अनावृष्टि आदि विषयक चिंताएँ इनके साहित्य में देखने को मिलती हैं।

अतिवृष्टि के कारण आदिवासियों को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा है। ओलों की बरसात ने उन्हें बरबाद कर दिया है। आदिवासियों की मेहनत से आई हुई फसल मिट्टी में मिल गई। इस तरह के माहौल में आदिवासियों की क्या स्थिति रही होगी इसका अंदाजा भी हम नहीं लगा सकते हैं ! इस तरह की कठिन परिस्थितियों में उन्हें धैर्य बँधाकर दूसरी राह दिखाने की आवश्यकता है। आदिवासियों पर भगतों का प्रभाव अधिकतर दिखाई देता है। आदिवासी भगत को भगवान का स्वरूप मानते हैं। भगत अपने संदेश एवं वाणी के माध्यम से आदिवासियों को समस्याओं से मुक्त करते हैं। भगतों ने हमेशा आदिवासियों को सहयोग दिया है। आदिवासियों को सही राह पर चलने में भगतों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। गोविंद गुरू भी भगत थे जिन्होंने अपने संदेश एवं वाणियों के माध्यम से आदिवासियों के अंदर चेतना फैलाकर, अन्याय के विरूद्ध आवाज उठाने की बात की। जैसे- “इस फसल के दाने तुम्हारे हाथ में नहीं आये। कोई बात नहीं। धीरज रखना होगा। जंगल में घास खूब है और दरख्तों में पत्तों की कमी नहीं। अतः बैल-गाय-बकरियों को चारा खिलाने में कोई दिक्कत नहीं होगी। रहा सवाल तुम्हारे पेट का, तो इस बार जंगल में दूर तक सही, तुम गोंद इकट्ठा करना, कत्था इकट्ठा करना, शहद इकट्ठा करना, सूखी लकड़ी इकट्ठा करना और इस बार इन सबको बनिये को न बेचकर हाट में जाकर बेचोगे तो दो पैसे ज्यादा मिलेंगे और महुआ के दरख्त काम चलाऊ कुछ-न-कुछ देते ही रहते हैं। भगवान पर भरोसा रखो। रोने-धोने से कुछ नहीं होता। मेहनत से अपने बाल-बच्चों की पेट भरायी करो। संत तुलसीदास जी ने रामजी की कथा में कहा है

कि 'करम प्रधान जगत रचि राखा ।' इसका मतलब है सद्कर्म ही जीवन का आधार है।"221

उपरोक्त उद्धरण के माध्यम से यह पता चलता है कि आदिवासियों के अंदर चेतना फैलाने में भगतों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है । गोविंद गुरू ने आदिवासियों का बुरे वक्त में साथ दिया था । आदिवासियों को सही राह पर चलने को कहा था । धीरज के साथ आगे बढ़ने को प्रेरित किया था । रचनाकार मेहनत से पेट भरने की बात गोविंद गुरू नामक पात्र के माध्यम से कहते हैं । गोविंद गुरू कहते हैं कि जीवन जीने के लिए बहुत सारे रास्ते हैं लेकिन सद्कर्म के साथ आगे बढ़ना चाहिए । पेट भरने के लिए, जिंदगी चलाने के लिए, जंगल में बहुत सारी सामग्री मिल जायेगी, मेहनत के आधार पर सही राह पर चलकर जीने के लिए गोविंद गुरू प्रेरित कर रहे हैं । इस तरह वे आदिवासियों को संबोधित करके उनके अंदर चेतना फैला रहे हैं ।

अंग्रेजों के शासन-काल में आदिवासियों को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा था । अंग्रेज सरकार के सिपाहियों ने आदिवासियों का शोषण किया था । अंग्रेजों के विलास के लिए आदिवासियों को श्रम करना पड़ा था । अंग्रेजों के लिए जंगल काट कर राह बनाना, बिना पैसा के बेगार करना, आदिवासी अपनी खेती, फसल को छोड़कर बेगार करना कदापि उचित नहीं समझते थे । गोविंद गुरू का प्रभाव प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से आदिवासियों पर दिखाई देता है । गोविंद गुरू जो कहते थे, उसका आदिवासी पालन करते थे । इसलिए आदिवासियों को गोविंद गुरू क्या न्याय, क्या अन्याय समझाने के बाद बेगार का विरोध करने के लिए प्रेरित करते हैं । जैसे-"बेगार में लगे सभी आदिवासियों ने एक स्वर में फैसला किया कि हम बिना पगार के काम नहीं करेंगे ।"222 आदिवासियों को एकजुट करके उनके अंदर चेतना फैलाने में गोविंद गुरू की महत्वपूर्ण भूमिका रही है । गोविंद गुरू ने आदिवासियों को अन्याय के विरूद्ध लड़ने को प्रेरित किया और बिना पैसा

---

221 मानगढ़ धाम, पृ सं 18

222 मानगढ़ धाम, पृ सं 25

के काम नहीं करने का संदेश दिया। वे अपना काम छोड़कर दूसरों के काम या बेगार को करते रहना अनुचित मानते थे। इस तरह आदिवासी अशिक्षा, अज्ञानता के कारण पीढ़ी-दर-पीढ़ी शोषित हो रहा था। इस तरह के शोषण को रचनाकार, गोविंद गुरू नामक पात्र के माध्यम से विरोध करते हुए दिखलाते हैं। और अंत में आदिवासियों को जागृत करके सही राह पर चलने को अग्रसर करते हैं।

आदिवासियों को अपनी संस्कृति पर प्रगाढ़ विश्वास है। आदिवासी, पारंपरिक विश्वास को अपनाते आए हैं। आदिवासी समूह और उनके पुरखों ने जिस तरह की जिंदगी जी, परंपराएँ अपनाईं, उसी पारंपरिक जीवन-शैली को आदिवासी अपनाते आ रहे हैं। खासतौर पर देखा जाय तो जन्म एवं पुनर्जन्म पर आदिवासी विश्वास करते हैं। वे देवी-देवता, भूत-प्रेत और आत्मा-परमात्मा में विश्वास करते हैं। इनकी मान्यता है कि आदमी या बाल-बच्चे मृत्यु के उपरांत फिर से किसी के गर्भ में पुनर्जन्म लेता है। इसलिए मृत शरीर को पूर्व दिशा की ओर चेहरा रखकर दफनाते हैं। इसके पीछे कारण यह है कि सूर्य की तरह फिर से वह किसी माँ के गोद में जन्म लेगा। जैसे- "किसी बच्चे की मृत्यु होने पर उसे उसकी खाट या मचान के नीचे दफनाते हैं और खाट या मचान को वहीं छोड़ देते हैं। इनका विश्वास है कि वह बालक पुनः माँ के गर्भ में पुनर्जन्म के लिए आएगा। मृत बालक की आत्मा कबीले के डेरे या बस्ती परिसर से दूर नहीं जाती। पुनर्जन्म तक उसकी आत्मा किसी हरे कबूतर में शरणार्थी बनकर रहती है। शव को दफनाने के लिए एक कब्र खोदी जाती है जिसमें मृत व्यक्ति की व्यक्तिगत चीजों के साथ शव को इस तरह रखा जाता है ताकि, उसका मुँह पूर्व दिशा की ओर रहे। यह मेरा अनुमान है कि शायद ये आदिवासी मानते हैं कि पूर्व से ही किसी का जन्म होता है जैसे कि सूर्य का।"[223]

उपरोक्त कथन से ज्ञात होता है कि आदिवासी अपने पारंपरिक विश्वास को नहीं छोड़ते हैं। अपने पुरखों की परंपराओं को संरक्षित करते हुए आगे बढ़ते हैं। यहाँ पर सोचने की बात यह है कि आदिवासी जिन जानवर या पक्षी को भगवान का स्वरूप मानते हैं उस पर कदापि हाथ नहीं उठाते हैं। उन जानवरों का शिकार नहीं करते हैं। इसके

[223] साइबर सिटी से नंगे आदिवासियों तक, पृ सं 78-79

साथ-साथ कम मात्रा में दिखाई देने वाले जानवरों का शिकार वे समुदाय कदापि नहीं करते हैं। आदिवासी समुदाय हरे कबूतर को पूजते हैं। आदिवासियों के मन में विश्वासों की गहरी जड़ें फैली हुई हैं। उन विश्वासों को छोड़ने के लिए आदिवासी तैयार नहीं हैं। इनका मानना है कि इस जन्म के कर्मफल के आधार पर पुनर्जन्म मिलता है। इस तरह उनके मन में प्रगाढ़ विश्वास है।

अंग्रेजों के शासन काल में आदिवासियों को जीवन जीने के लिए अनेक संघर्षों का सामना करना पड़ रहा था। आदिवासियों ने इस दमन और अन्याय के खिलाफ आंदोलन किया था। राजस्थान के अंचलों में आदिवासियों का नेतृत्व करने वाला नायक मोतीलाल तेजावत था। मोतीलाल तेजावत ने भील जनजातियों को एकत्रित करके अन्याय के विरूद्ध लड़ने को कहा था। मोतीलाल लोकगीतों के माध्यम से आदिवासियों के अंदर चेतना फैलाता है। हरेक आदिवासी क्षेत्र में लोक गीतों का प्रभाव देख सकते हैं। आदिवासियों में चेतना फैलाने में लोक-गीतों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। जैस- "मोतीलाल तेजावत के साथ जो भील नेता थे, उनमें मोतीरा भील और लाडूरा भील प्रमुख थे। ये दोनों गाँव कूकावास के रहने वाले थे, जो उदयपुर की तहसील कोटड़ा में हैं। कूकावास भूला से करीब तीस कि.मी. दूर है। इस अंचल में उन दिनों का एक गीत (उन दोनों भील संघर्षनायकों को केन्द्र में रखकर) अभी भी गाया जाता हैः

'ऐला टोपियो आयो रे
ऐला बेदूक लायो रे
मरद लुगायाँ टाबरा घेरया रे
डरज्यो मती, मोतीरो आयो रे
लाडूरो आयो रे......'

अर्थात "सिर पर टोप पहने हुए फिरंगी आ रहे हैं। वे बन्दूकों से लैस हैं। औरत-मरद-बालकों को घेर लिया है। इस सबसे मोर्चा लेने के लिए मोतीरा और लाडूरा आ रहे हैं। इसलिए कोई डरना मत।"[224]

---

[224] जंगल-जंगल जलियांवाला, पृ सं 57

उपरोक्त उद्धरण से पता चलता है कि आदिवासियों में एकजुटता करके चेतना फैलाने में लोकगीतों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है । मोतीलाल तेजावत लोक-गीतों के माध्यम से आदिवासियों को धीरज दे रहे हैं । संग्राम के लिए संबोधित कर रहे हैं । और इस संग्राम में लड़ने के लिए मोतिरा और लाडूरा भील आ रहे हैं । इसलिए आप लोग डरना मत । लोक-गीतों से आदमी के अंदर उत्साह-उमंग बढ़ता है । इसलिए वह समुदाय लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए, लड़ने की आवश्यकता समझ कर आंदोलन की ओर आगे बढ़ते हैं ।

साहित्य-लेखन में बहुत सारे ऐसे उद्धरण हमें मिल जायेंगे जो कि किसी घटना या विषय से तालमेल नहीं खाते हैं । कुछ लेखक जो मन में आया, जो उन्होंने कल्पना की, जो कुछ सोचा उसे यथा-तथ्य अपने लेखन में प्रस्तुत कर देते हैं । यहाँ सोचने की बात यह है कि समाज के सामने सच्चा साहित्य उभरकर सामने आ रहा कि नहीं ? रचनाकार समाज में जनता की मानसिकता को सही ढंग से अभिव्यक्त कर रहा है कि नहीं ? इस तरह की सामाजिक स्थिति को ध्यान में रखकर रचना करने की आवश्यकता है । यहाँ पर हरिराम मीणा नये लेखकों से आग्रह करते हैं कि जिस विषय पर लेखन किया जा रहा है, लेखन से पहले उस विषय से, उस घटना से जुड़कर ज्ञान प्राप्त करने के बाद लेखन कार्य शुरू करें तभी आगे चलकर साहित्य का सही रूप समाज के सामने आयेगा । बंद कमरे में रहकर जो मन में आया उसे लिखकर साबित करने के लिए कोशिश करना कदापि उचित नहीं है। इस तरह के लेखन कार्य का हरिराम मीणा विरोध करते हैं । जैसे- "मैंने एक जगह पढ़ा कि शराब पीकर जब आदिवासी पुरूष अपनी औरत को पीटता है तो वह औरत आनन्द की अनुभूति करती है । प्रताड़ना आनन्द का स्रोत किसी भी प्राणी के लिए नहीं हो सकता। यह उस लेखक की अज्ञानता और विकृत मानसिकता से उत्पन्न कल्पना थी ।"[225]

उपरोक्त उद्धरण से पता चलता है कि सही साहित्य-लेखन सामने आने की आवश्यकता है । अज्ञानता और विकृत मानसिकता के तहत कल्पना से लिखा गया लेखन

[225] आदिवासी दुनिया, पृ सं 95

मान्य नहीं है । इस तरह के सोच-विचार एवं लेखन-प्रक्रिया में सुधार की आवश्यकता है । इस तरह के साहित्य-लेखन की भूल आगे नहीं करने के लिए रचनाकार हरिराम मीणा सचेत करते हैं । उनका कहना है कि - यथार्थ – बोध, सही ढंग से और सही रूप में साहित्य लेखन में आने की आवश्यकता है ।

आदिवासी के पास भरपूर प्राकृतिक ज्ञान है । उन समुदायों से बहुत कुछ सीखा जा सकता है । जंगल में पेड़-पौधों के बारे में ज्ञान, पत्तों के बारे में ज्ञान, प्राकृतिक-चिकित्सा का ज्ञान, हस्त - कला का ज्ञान आदि देख सकते हैं । अण्डमान में रहने वाले आदिवासी को सुनामी के बारे में पहले से ही ज्ञात हो गया था इसलिए वे समुदाय सुरक्षित जगह पर चले गये थे । इस प्रकृति में कौनसा पेड़ कब फल देता है ? किस बीमारी के लिए कौनसा पेड़ की छाल और पत्ते इस्तेमाल करना है ? इस तरह के तमाम विषयों के बारे में जानकारी आदिवासी जन समुदायों के पास है । आदिवासी पारंपरिक दवाइयों का इस्तेमाल, बीमारियों का इलाज और विषैले-जंतुओं से सुरक्षा के लिए करते हैं । प्राकृतिक-संकट को यह समुदाय पहले से ही ज्ञात प्राप्त ज्ञान के आधार पर भाँप लेता है और सतर्क हो जाता है । जैसे- "जब सुनामी आया था तो चौबीस घण्टा पहले समुद्र के भीतर की हलचल को भाँपकर पहाड़ियों पर चढ़ गये थे वे आदिवासी और अण्डमानी टापुओं में मृतकों की संख्या कम थी । निकोबार में जरूर बहुतायत में लोग मरे थे । वजह थी पहाड़ियों की ऊँचाई कम होना । प्रकृति के संकेतों का पूर्वाभास उन आदिवासियों को हो जाता है । प्रकृति के सगे हैं वे । इसलिए पर्यावरणीय चेतना उनके भीतर है । यह भी आदिवासी समाज से सीखा जा सकता है ।"[226]

उपरोक्त कथन से पता चलता है कि आदिवासी प्रकृति में पलने-बढ़ने के कारण उनके पास भरपूर प्राकृतिक ज्ञान है । प्राकृतिक संकटों को वह समुदाय समझ सकता है । इस तरह प्राकृतिक समस्या आने से पहले वे सचेत हो जाते हैं । इस तरह का ज्ञान किसी दूसरे वर्गों में दिखाई नहीं देता है । इनकी जीवन-शैली पूर्णतः मुख्यधारा के समाज से

---

[226] आदिवासी दुनिया, पृ सं 101

अलग दिखाई देती है। आदिवासियों से बहुत कुछ सीखा जा सकता है। जैसे- प्रकृतिपरक-ज्ञान, कला, चिकित्सा आदि। इसलिए रचनाकार यहाँ पर आदिवासी ज्ञान पर बल देकर उन समुदायों से कुछ-न-कुछ सीखने को प्रेरित कर रहा है।

प्राचीन से लेकर वर्तमान तक देखा जाय तो विकास के नाम पर आदिवासियों का विनाश हो रहा है। खासतौर पर देखा जाय तो अंग्रेज शासन से आज तक विकास के नाम पर अनेक योजनाएँ सामने आ रही हैं। इस धरती पर अधिकतर परियोजनाएँ आदिवासी इलाकों में नज़र आयेंगी। 'दिकू' अपनी कंपनियाँ आदिवासियों की जमीनों पर खड़ी कर रहे हैं। वर्तमान में देखा जाय तो जंगल की जगह महल नज़र आयेंगे। देश के विकास के नाम पर अनेक बाँध बनाये गये हैं। बाँध का निर्माण आदिवासी इलाकों में किया गया है। बाँध परियोजनाओं की वजह से हजारों आदिवासी गाँवों को विस्थापित किया गया है। आदिवासी-समस्या एवं उनके जीवन को लेकर किसी को चिंता नहीं है। जैसे- "केवल बाँध परियोजनाओं की वजह से भारत की करीब 50 से 70 लाख आदिवासी जनसंख्या का विस्थापन हुआ। इसके बाद खनन व अन्य औद्योगिक इकाइयों के कारण विस्थापन का संकट सामने आया। एक अनुमान के तहत प्रति दस में से एक आदिवासी विस्थापन की त्रासदी भोगने को विवश हुआ है।"[227]

उपरोक्त कथन से पता चलता है कि बाँध परियोजनाओं की वजह से आदिवासियों का भविष्य डूब गया है। अपनी जमीन से विस्थापित होकर उन्हें अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। इसलिए रचनाकार की चाह है कि- विकास के नाम पर जिस समुदाय को विस्थापित किया है, उस समुदाय का उचित पुनर्वास भी किया जाये। उन आदिवासी समुदायों का जीवन चलाने के लिए कोई सही राह निकालने की आवश्यकता है। विस्थापन के पश्चात् रचनाकार की दृष्टि आंदोलनों पर गयी है। भारतीय स्वाधीनता आंदोलन में आदिवासी जन-समुदायों की भूमिका को पुनः परिभाषित करने की आवश्यकता को लेकर चिंतक हरिराम मीणा काफी व्यग्र एवं चिंताकुल दिखायी देते हैं।

[227] आदिवासी दुनिया, पृ सं 139

इस संबंध में उन्होंने 'आदिवासी दुनिया' में रचनात्मक और नये परिप्रेक्ष्य के रूप में चिंतन किया है । रचनाकार हरिराम मीणा इस तरह कहते हैं कि- 'आदिवासियों के साथ एक मनुष्य की तरह व्यवहार करने की पहली आवश्यकता है ।'

5.2 रचनाओं के नामकरण की सार्थकता -

हरिराम मीणा ने अभी तक कुल 10 मौलिक और एक संपादित पुस्तक की रचना की है । उनकी रचनाओं के नामकरण में सार्थकता अभिव्यंजित होती है । इसका श्रेय उनके कला के प्रति रूझान को परिलक्षित करता है । उन्होंने रचनाओं का नामकरण या शीर्षक के लिए शब्दों का सही और उचित प्रयोग किया है । इस प्रयोग में रचनाकार का विवेकशील दृष्टिकोण और कौशल ने विशिष्ट भूमिका निभाई है । रचनाओं के नामकरण की सार्थकता और औचित्य को इस प्रकार से व्याख्यायित किया जा सकता है -

'धूणी तपे तीर' उपन्यास के शीर्षक के औचित्य के संबंध में सर्वप्रथम बात करना अनिवार्य है । 'धूणी' से तात्पर्य है- 'पूजा-स्थल' । अर्थात् पूजा-स्थल पर तीरों को तपाना या तेज करना । आदिवासियों के जीवन में तीर-धनुष का विशेष महत्व है । उनकी जीवन-रक्षा में तीर के औचित्य को रचनाकार ने इस उपन्यास में दर्शाया है । आदिवासियों के जीवन में धर्म और आखेटक जीवन-शैली के समायोजन से 'धूणी तपे तीर' के अर्थ की व्यंजना और अधिक मुखरित होती है ।

'जंगल-जंगल जलियांवाला' यात्रा-वृत्तांत के नामकरण का औचित्य यह है कि - देश के संपूर्ण आदिवासी क्षेत्रों, अचलों में अनेक जलियांवाला काण्ड से भी भयनाक संघर्ष हुए थे / हो रहे हैं लेकिन उस ओर इतिहासकारों एवं साहित्यकारों की दृष्टि नहीं गयी । यात्रावृत्तांतकार का मंतव्य यह है कि देश की लड़ाई में या आधुनिक स्वाधीनता संग्राम में आदिवासी निरंतर जंगल में भी संघर्षरत एवं युद्धरत रहे हैं । आज भी जंगल-जंगल जलियांवाला घट ही रहा है । यह तो रूकने या थमने का नाम भी नहीं ले रहा है ।

'सुबह के इंतजार में' कविता-संग्रह के नामकरण का औचित्य यह है कि आदिवासी समाज के लिए कवि आशावादिता और सुबह की अपेक्षा करता है । वह सुबह उनके जीवन में अभी तक तो आयी नहीं है लेकिन उस सुबह का इंतजार कवि और आदिवासी समाज दोनों को है । 'रोया नहीं था यक्ष' के नामकरण का औचित्य यह है कि यक्ष प्रतिरोधी-चेतना का बोधक है । परंपरागत साहित्य में यक्ष को विरही रूप में कवि कालिदास ने प्रस्तुत किया था । जबकि हरिराम जी ने इसे प्रतिरोध की संकल्प बद्धता के रूप में प्रस्तुत किया है ।

5.3 सरल-रेखा का सौंदर्य और कुछ सवाल –

कहते हैं, एकदम सीधी-सरल रेखा खींचना काफी कठिन है, जो बिल्कुल समतल हो तथा एक ही बिंदु पर हो । वक्र रेखाएँ तो कोई भी खींच सकता है । यदि दूध पीते बच्चे के हाथ में तूलिका या कलम थमा दी जाये तो वो भी टेढ़ी-मेढ़ी, आड़ी-तिरछी रेखाएँ खींच ही देगा । सरल रेखा खींचने के लिए लगन, मेहनत, धैर्य, अभ्यास और अनुभव की आवश्यकता होती है । हरिराम मीणा के साहित्य की भाषा में सरल-रेखा का सौंदर्य स्पष्टतः दिखाई पड़ता है । इस सरल-रेखा के सौंदर्य में कभी-कभी या अक्सर तथ्य ओझल हो जाते हैं और बहुत ही महत्वपूर्ण संदेश और मार्मिक प्रसंग अध्येताओं के लिए अनचीन्हे बने रहते हैं । हरिराम मीणा जी की साहित्यिक रचनाओं में लोग इतिहास की अधिकता का आरोपण लगाकर उसकी साहित्यिकता पर प्रश्न चिह्न लगाने की भूल इस सरल-रेखा के सौंदर्य के मर्म को नहीं समझ पाने की वजह से करते हैं । सरल-रेखा के सौंदर्य के उस शांत पानी के नीचे कितनी गहराई है यह जानने-देखने की फुर्सत और धैर्य उनमें कहाँ ? रचनाकार ने सरल-रेखा का सौंदर्य के साथ लीक से हटकर चलने की कोशिश की है । इस क्रम में उसने घटनाओं और कथाओं को निरंतर और अनवरत तराशने का काम किया है । जो उनकी कला-दृष्टि के वैशिष्ट्य को द्योतित करता है । जैसे- "बनजारे मुख्य रूप से नमक का व्यापार करते थे । कच्छ के रन का विख्यात नमक बैलों एवं गधों की पीठ पर लादकर

राजपूताना होते मध्य प्रांत तक बेचते । वैसे बनजारे मवेशियों खासकर, बैल-गायों के बेचने का धंधा करते थे । पर, ये बनजारे नमक-बेचा बनजारे थे ।”[228]

उपरोक्त उद्धरण में देश के पहले व्यापारी वर्ग बंजारों के जीवन-विधान को उपन्यासकार ने सीधी और सरल भाषा में अभिव्यक्त कर दिया है । लेकिन इसके पीछे विषय की जानकारी, उस समुदाय की भौगोलिक स्थिति, उनका आर्थिक-जीवन और उनका प्रवासन एक साथ ही यहाँ संकेतित रूप में अभिव्यक्त हुए हैं । एक अन्य उदाहरण द्रष्टव्य है-

“देश यह आधुनिक,
नाचता-कूदता
निक्कर और पेंटी में
सिकुड़ाता अपनी अस्मिता को
बूढ़े बाप को-
....
घर की पोड़ में
नहीं निकलने दिया घर को
घर से बाहर ।”[229]

इस कवितांश में देश के आधुनिक और उत्तराधुनिक आत्म केंद्रित होते समाज की व्यवस्था पर कटाक्ष किया गया है । नयी पीढ़ी को अपने से मतलब है, संबंधों में सिकुड़न आ गई है, अस्मिताएँ संकट में हैं । बुजुर्गों की स्थिति घर के भीतर और बाहर दोनों ही जगहों पर हाशियाकृत कर दी गई है । यह कैसा हम समाज बना रहे हैं ? जहाँ संबंधों की गर्माहट नहीं है । केवल मनोरंजन के सामने प्राचीन मूल्य हारते जा रहे हैं । घर की बुनियाद को घर में ही कैद किया जा रहा है । आजादी पारिवारिक-व्यवस्था में ही नहीं प्राप्त हो रही है । यह ग्राम-जीवन का बदलता हुआ स्वरूप है जिसको रचनाकार ने बोध के स्तर पर अभिव्यंजित किया है ।

---

[228] धूणी तपे तीर, पृ सं 111

[229] सुबह के इंतजार में, पृ सं 56

हरिराम मीणा ने कुछ ऐसे सवाल खड़े किये है जो इतिहासकारों, साहित्यकारों और देश के नीति-निर्माताओं को बेचैन कर रहे हैं । समाज और देश की दुर्दशा से दुःखी जनों के लिए ये सवाल महत्वपूर्ण एवं प्रासंगिक बने हुए हैं । कुछ सवाल इस प्रकार से हैं –

1. वक़्त की रफ़तार अपने स्वभाव के विरूद्ध उनके लिए (आदिवासियों) क्यों रूकी हुई है?
2. आदिवासी मानसिकता क्या है ?
3. आदिम-अतीत से चिपके रहने की प्रवृत्ति या विवशता क्या है ?
4. समझदारी की परंपरागत समृद्धि के पश्चात् भी प्रगति के पथ पर अग्रसर होने की समझ क्यों पैदा नहीं हो पा रही है ?
5. उत्तराधुनिक वैश्वीकृत युग में आदिवासी अपनी दुनिया से बाहर आने में क्यों कतरा रहे हैं, झिझक रहे हैं, बिदक रहे हैं ?
6. आदिवासी इतिहास को इतिहासकारों ने क्यों नज़रांदज किया ? "मुझे यह देखकर अचरज हुआ कि महान कहे जाने वाले राजस्थान के इतिहासकार गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने अपनी इतिहास की पुस्तक में केवल इतना लिखा कि 'मानगढ़ पर एकत्रित भीलों ने उत्पात मचा रखा था । फौज को गोलियाँ चलानी पड़ी । कुछ भील मारे गये ।'"[230]
7. आदिवासी के प्रति साहित्य-लेखन में समाज का परंपरागत स्वर ही क्यों प्रधान बना हुआ है ?

इन सवालों को लेकर देश के विद्वानों के मध्य घमासान मची हुई है । रचनाकार की चिंता साहित्य के सही रूप को सामने लाने की है । युवा रचनाकारों और शिक्षित मध्यवर्ग से उनकी यह अपेक्षा है कि साहित्य, इतिहास और समाज के मध्य एक गहरा रिश्ता बने । वास्तविकता से युक्त साहित्य सामने आये । श्रमशील वर्ग का महत्व समाज में बढ़े । देश की राजनीति, मीडिया और अर्थतंत्र भी उनके मानवाधिकारों की रक्षा की जिम्मेदारी को वहन करे ।

[230] धूणी तपे तीर, पृ सं 19

5.4 प्रकृति – चित्रण -

हरिराम मीणा के साहित्य की विशेषता है- प्रकृति एवं मनुष्य की सहजात उपस्थिति । हरिराम जी के साहित्य में प्रकृति न तो रीतिकालीन भावों के उद्दीपन के रूप में आयी है, न केवल वर्णन-मात्र के लिए, बल्कि प्रकृति यहाँ मानव के साथ चिर-संबंधों एवं लोक-जीवन को पूर्णतः प्रकट करने के रूप में आयी है । प्रकृति और मनुष्य का सहजात संबंध रहा है । प्रकृति के अनुकूल एवं प्रतिकूल वातावरण में भी मनुष्य ने अपना सह-संबंध एवं जीवन तलाशा, बनाया । रचनाकार की चिंता प्रकृति के साथ आधुनिक मनुष्य के टूटते हुए संबंधों को लेकर है । आदिवासी ने जीवन का त्रिकोण बनाया था जिसमें एक ओर प्रकृति, दूसरी ओर मानव जीवन और तीसरी ओर लोक संस्कृति का संबंध गठित किया गया था यह संबंध अब छिन्न-भिन्न हो गया है । रचनाकार ने प्रकृति-चित्रण को आदिवासियों की सहज जीवन-शैली से जोड़कर देखने का प्रयास किया है । आदिवासियों का जीवन प्रकृति-रहित नहीं हो सकता, प्रकृति-सहित होकर ही वह पूर्णता की प्राप्ति करता है । आदिवासी प्रकृति-प्रदत्त जीवन के आकांक्षी रहे हैं । अतःस्वाधीन-चेतना उनकी जीवन-शैली है । जैसे- “कितनी-कितनी प्रजाति की वनस्पतियाँ प्रकृति ने हमें दी हैं किंतु, हमारी छेड़खानी के कारण खुले जंगलों में इनका नाश हो रहा है । पर्यावरणीय संतुलन के लिए वे वनस्पतियाँ और पेड़-पौधे ही तो आधार हैं जो शुद्ध हवा और पानी के (अंततः) स्रोत हैं ।”[231]

आदिवासी की आदिम परंपरा में प्रकृति आधारभूत तत्व है । उसकी लोक-चेतना का अभिन्न हिस्सा बनकर ही यहाँ प्रकृति का चित्रण हुआ है । जलवायु परिवर्तन की वजह से धरती का प्राकृतिक संतुलन बिगड़ रहा है । इसका व्यापक असर आदिवासियों की जीवन-शैली पर दिखाई देता है । कवि ने प्राकृतिक वातावरण के साथ हो रही छेड़खानी को आदिवासियों की जीवन-स्थितियों के संदर्भ में चित्रित किया है । जैसे –

“खजूर के सेलों की तरह फूटे जो धरती से
उखाड़े गये वो ही छांट-छांट कर

---

[231] साइबर सिटी से नंगे आदिवासियों तक, पृ सं 52

कहाँ जाए आखिर
तिनका-तिनका घोंसला छोड़कर भोला पंछी
हर कोई तो नहीं कर सकता
अपनी हर चीज से इस कदर प्यार
अछूते जंगलों के बीच ।"[232]

5.5 कहावतें और मुहावरेदार भाषा –

भाषा अभिव्यक्ति का माध्यम है । साथ ही, अपनी उपस्थिति दर्ज कराने का सबसे सशक्त औजार भी । हरिराम मीणा मानते हैं कि यथार्थ में शब्दों के जो रूप दिखते हैं या होते हैं वे अनगढ़, खुरदरे होते हैं कलाकार अपने कौशल से उन्हें नवीन रूप एवं जीवन से जोड़ता है । भाषा केवल विकसित ही नहीं होती, बल्कि भाषा का साम्राज्य भी फैलाया जाता है । आज भारत में काले गोरे औपनिवेशिक मानसिकता की गुलामी से युक्त हैं । अतः भारतीय भाषाओं का विकास नहीं हो पा रहा है । अपने ही आंगन में अपनी ही भाषाएँ पराई हो रही हैं । हरिराम मीणा के पाठक ग्रामीण-शहरी दोनों हैं । इनकी रूचि लोक के प्रति प्रारंभ से रही है । अतः इन्होंने लोक-कहावतें और मुहावरेदार भाषा का अत्यधिक प्रयोग किया है । जैसे-

1.'शहजादे पर मौहब्बत का *जुनून सवार* था ।'[233]

2.'रोंगटे खड़े हो गये हमारे ।...यह सब कुछ झेलते रहे ।....देश भक्ति की भावना से मन भर गया हमारा ।'[234]

3. 'किस मिट्टी के बने हैं ।....जारवा लोग छुईमुई की तरह हैं, सेंटेनेलीज किसी को निकट नहीं फटकने देते, ओंग त्रिशंकु बने हुए हैं..... ।'[235]

---

[232] समकालीन आदिवासी कविता, पृ सं 106-107

[233] साइबर सिटी से नंगे आदिवासियों तक, पृ सं 21

[234] साइबर सिटी से नंगे आदिवासियों तक, पृ सं 68

[235] आदिवासी लोक की यात्राएँ, पृ सं 23

4.'काँपे हों सिंहों के अयाल' ।....बिरसा की शांत देह....आँधी चलेगी....दहकते अंगारों....।'[236]

5.'अमल्या को सांप खा गया ।'[237]

6.'जंगल की माया है भई, हे नीली छतरी वाले ! सबकी रक्षा करना ।'[238]

7. "सूरा-बावड़ी के बारे में यह कहावत प्रचलित थी कि यह बावड़ी बहुत प्राचीन है और इसे भोलेनाथ ने स्वयं अपने हाथों से बनाया था । काफी बरसों तक शिव व पार्वती यहां रहे थे । कहते हैं तभी से आदिवासियों के लोकदेवताओं के अलावा एक मात्र आराध्य देव उनके लिए भगवान शिव ही हैं । इस इलाके में यहां-वहां छोटे-मोटे शिव मन्दिरों की काफी तादात थी ।"[239]

5.6 शब्द-चयन -

हरिराम मीणा की शब्द-संपदा में तत्सम बहुला भाषा का शब्द-भंडार प्राथमिक रूप में उभरकर सामने आया है । दूसरी ओर लोक-जीवन से लगाव और उसकी शब्दावली विशेषकर माड़ अंचल की भाषा का व्यवहार भी इन्होंने सभी विधाओं में किया है । तीसरी ओर पुलिस महकमा में कार्य करने की वजह से और आधुनिक शिक्षा व्यवस्था से तालीम हासिल करने के कारण अंग्रेजी के शब्दों का भरपूर रचनात्मक उपयोग इन्होंने किया है । कथा की बुनावट को रचनाकार ने नया आयाम प्रदान किया है । कथा में कहानीपन को बरकरार रखते हुए जीवन-यथार्थ को अभिव्यक्ति मिली है । 'धूणी तपे तीर' उपन्यास एक ऐसे समाज का भाष्य है, जिसमें अंग्रेजों से लेकर आदिवासी तक शामिल है। इसलिए इसका भाषिक-संसार अत्यंत व्यापक एवं गहराई लिए हुए है । कहीं समाज के शिष्ट शब्दों का निर्मल प्रवाह तो कहीं अंग्रेजी एवं अंग्रेजी मिश्रित टूटी-फूटी हिंदी का प्रयोग है । भाषा के कई रंग इस उपन्यास में पढ़ने को मिलते हैं । भील और भीलांचल की

---

[236] सुबह के इंतजार में, पृ सं 10-11
[237] धूणी तपे तीर, पृ सं 234
[238] मानगढ़ धाम, पृ सं 33
[239] धूणी तपे तीर, पृ सं 119

शब्दगंध कहीं सुगंधित हो रही है, तो कहीं आदिवासी समाज के लोकगीतों की स्वर लहरियाँ तरंगित हो रही हैं। जैसे-

“भाईया थूर वाजी रे जी कानहेंग हुरमाल रे
भाईया पड़जों, काडी काले कानहेंग हुरमाल रे
भाईया मगरो खुटो सारो कानहेंग हुरमाल रे
भाईया गायें मरवे लागी कानहेंग हुरमाल रे
भाईया कोटो खुटो धाने कानहेंग हुरमाल रे
भाईया दुनिया डरावे लागी कानहेंग हुरमाल रे”[240]

जिस तरह से इस उपन्यास में सरकारी दफ्तर से लेकर आदिवासी झोंपड़ी तक उल्लेख है। उसी तरह से इसमें शब्दों का विस्तार देखने को मिलता है। जिसमें अंग्रेजी के रेजिडेंट, स्टेट, कौंसील, रेस्ट हाउस जैसे अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग हुआ है। वैसे ही देशज शब्दों नाग-नगिन, छोरियाँ, धूली-धामों और वनोपज जैसे शब्द आये हैं। उदाहरणार्थ “हलकारो पाड्यो’ एलान के बाद बांसवाड़ा, डूंगरपूर, ईडर, सूंथ व मेवाड़ के सीमावर्ती इलाकों में सुनायी दी गई ढोल की आवाज पर ढोल स्थलों पर सैकड़ों आदिवासी एकत्रित होकर सम्प-सभा के कार्यकर्ताओं और भगतों के नेतृत्व में मानगढ़ की ओर चल दिये। उनके पास तलवारें , धनुषबाण, गंडासे, लाठी जैसे हथियार थे। रक्षा दल के सदस्यों के साथ प्रमुख भगत पहले ही गोविंद गुरू के आदेश से मानगढ़ पहुंच गये थे।...... इस प्रकार से कभी-कभी एक ही वाक्य में हिंदी, उर्दू और अंग्रेजी के शब्द आ जाते हैं। पांचवी महू डिवीजन के जनरल आफीसर कमांडिंग ने 6 नवम्बर, 1913 को चीफ ऑफ आर्मी स्टाफ को सूचना भेजी कि सूंथ रियासत के आदिवासी नियन्त्रण से बाहर हो गये हैं। उन्होंने राज के विरूद्ध बगावत का ऐलान कर दिया है और वे भारी संख्या में सूंथ में एकत्रित हो रहे हैं।”[241] ‘धूणी तपे तीर’ में शब्द एवं भाषा का अपना व्यापक धरातल है। जो अपने

[240] धूणी तपे तीर , पृ सं 143

[241] धूणी तपे तीर (हरिराम मीणा), पृ सं 338

सामाजिक अंतर्बोध से विशिष्ट अर्थों में प्रयुक्त हुए हैं। आंकड़ों और ऐतिहासिक यथार्थता के समय की भाषा जहाँ ठोस एवं यथार्थ परक है वहीं आदिवासी समाज के जीवन की भाषा अलग ही स्वरूप में हमें दिखाई पड़ती है।

5.7 लोक-साहित्य का रचनात्मक उपयोग -

हरिराम जी की रुचि लोक साहित्य में प्रारंभ से रही है। उन्होंने आदिवासी लोक की यात्राओं के क्रम में भी लोक-जीवन से जुड़ी हुई कथाओं, लोक-गीतों को अपने सृजन का हिस्सा बनाया है। लोक-साहित्य के आने से लिखित साहित्य की परंपरा में जीवंतता आ जाती है। जीवन को देखने की एक रेखीय-दृष्टि भी बहु-रेखीय बन जाती है। यह सब लोक या मौखिक या वाचिक परंपरा के साहित्य के आने से ही संभव हो पाता है। हरिराम जी ने अपने कथा-लेखन के क्रम में लोक-साहित्य की सामग्री का इतिहास के संदर्भ में व्यवहार किया है। आख्यान के आने से इतिहास का अधूरा ढाँचा पूर्ण होता है। साहित्य में सामाजिक और राजनीतिक इतिहास-लेखन में लोक-साहित्य की सामग्री समकालीन दौर में विशिष्ट भूमिका निभा रही है। इस सामग्री का उपयोग करने से साहित्य का पटल और व्यापक होता है। 'इतिहास और आख्यान' के संदर्भ में प्रो. गरिमा श्रीवास्तव ने लिखा है कि- "इतिहास उतना ही नहीं होता, जो किताबों में दर्ज है। जब कोई उन स्मृतियों को जीता है, जो कहीं दर्ज नहीं हैं, पर जिन्हें हम बतौर तथ्य जानते हैं, क्या वे अपने आप में साक्ष्य नहीं हैं ? .... मौखिक इतिहास के माध्यम से अतीत के तथ्यों को भली-भांति विश्लेषित करने, संस्कृति और ज्ञान के मौखिक रूपों को आगे तक, अगली पीढ़ियों तक पहुँचाने का प्रयास किया जाता है।..... उन उपेक्षित दृश्य-घटनाओं और अनसुनी आवाजों को जानने के लिए मौखिक इतिहास की मदद लेना अनिवार्य है, शायद तभी हम किसी देश के राजनीतिक-सामाजिक इतिहास को समग्रता में समझ सकें।"[242]

हरिराम मीणा के साहित्य में इतिहास और आख्यान के समायोजन का उचित अनुपात में व्यवहार हुआ है। इन्होंने कुछ लोक-गीतों के आधार पर आदिवासी आंदोलन के संदर्भों की जमीनी स्तर पर पड़ताल की है। जैसे-

---

[242] दैनिक जनसत्ता समाचार-पत्र, दिनांक-27-11-2016, पृ सं 6

“झालोद मांय मारी कुंडी है
दाहोद मांय मारो दीयो है
भूरेटिया नी मानु रे
गोधरा मांय मारी जाजम
अहमदाबाद माय बैठक है
दिल्ली मांय मारी गादी है
बेणेश्वर मांय मारो चोपड़ो है
मानगढ़ मारी धूणी है
भूरेटिया नी मानु रे
जाम्बू में मारो अखाड़ो है
मानगढ़ मारो वेरा है
वेरा ने वाली ने पंचायत राज करबू है।
भूरेटिया न मानु रे......”[243]

इसका अर्थ है कि - गोविंद गुरू वागड़ प्रदेश को ही जंबू खंड मानते थे। भूरेटिया अर्थात फिरंगियों को वे अपना असली दुश्मन मानते थे चूंकि उन्हीं के कारण देशी राजाओं ने आदिवासी विरोधी नीतियाँ लागू की थी। जागरती (जागृति) आंदोलन का प्रमुख केंद्र मानगढ़ बन ही गया था। अंग्रेजों का सत्ता-केंद्र दिल्ली था। इस गीत से संकेत मिलते हैं कि गोविंद गुरू का अंतिम लक्ष्य दिल्ली की गद्दी था। अर्थात् अंग्रेजी-राज का खात्मा। उनका सपना था भविष्य में आदिवासी पंचायत राज करे। उनकी विचारधारा का केंद्रीय भाव आदिवासियों को कष्टों से मुक्ति दिलाना था। गोविंद गुरू के मन में राज सत्ता की महत्वाकांक्षा कभी नहीं पनपी।

‘धूणी तपे तीर’ उपन्यास में गोविंद गुरू के उपदेशों के प्रभाव स्वरूप राजस्थान के दक्षिणी भाग के लोगों में जन-जागरण के रूप में लोक-गीतों का उपयोग किया गया था। इन लोक-गीतों में सही मार्ग पर चलने के लिए गुरू के उपदेशों का स्मरण अनिवार्य बताया गया है। जैसे-

“गुरू की बताड़ीली बातां याद करता रेजो

[243] धूणी तपे तीर, पृ सं 308-309

नीति नियम तोड़ो नखे
भक्ति भाव छोड़ो नखे
सब हली मली ने संप में
एक थई रेजो रे मारा भाई......."[244]

एक ग्रामीण युवक डूंगरी पर बकरियाँ चराता हुआ एक गीत गाये जा रहा था -

"डूबे ने कालजी चुवी चुवी जाय
कांचली ने फुंदो नवी नवी जाय
वसुरे सुरिया बसी बसी जाय
उठ रे सुरीया उठी उठी जाय........"[245]

अर्थात्- युवक लड़की के सौंदर्य की प्रशंसा करता हुआ कह रहा है कि उस नवोढ़ा की आंखों का काजल मेरे मन में चुभ रहा है । उसकी कांचली का फुंदा हवा में हिलता हुआ बड़ा ही मनोरम लगता है । फुंदे से युवक कहता है- 'जरा ठहर जा, तेरे हिलने से मैं अमल सौंदर्य को जी भरकर नहीं देख पा रहा हूँ । हवा की गति मंद हुई और फुंदे का हिलना रूक गया ।' कुछ पलों के पश्चात् युवक ने गहरी साँस ली और आगे बढ़ता हुआ बुदबुदाया, 'हवा अब खूब चल । अब मैं भी जा रहा हूँ ।'

कथा के विकास में लोकगीतों का प्रयोग समकालीन रचनाशीलता का विशिष्ट लक्षण है । रचनाकार ने इस उपन्यास के अंतर्गत अनेक स्थानों पर कथात्मकता के संदर्भ में लोकगीतों जिसमें स्थानीय रूपों, जैसे पदों, खयालों, हेलाओं का प्रयोग किया है । जैसे-

"काली रे कोयलड़ी ते वन बगड़े ने गायी ती रे
वन बगड़ा में रेती ने वनफल वेणी खाती रे
वनफल वेणी खाती ने सरवर पानी पीती रे
आंवे बहती ने महुड़े बहती केनी बाट जोती रे
घाटी माते सोगलो जलके ने होई परणो जी रे
आयवा रे.....

[244] धूणी तपे तीर, पृ सं 119-120

[245245] धूणी तपे तीर, पृ सं 251

आयवा रे....."[246]

यात्रा-वृत्तांकार ने हैदराबाद शहर की उदय की कहानी को एक प्रेम-कथा के बहाने अभिव्यक्ति प्रदान की है । भागमती से भाग्यनगर और भाग्यनगर से हैदराबाद शहर की कहानी को लेखक ने बड़े ही रोचक रूप में प्रस्तुत किया है ।

5.8 बिंब और प्रतीक –

कविता में बिंब और प्रतीक के प्रयोग के बारे में प्रो.नित्यानंद तिवारी ने लिखा है कि – "आधुनिक युग का कवि सचेत रूप से अपनी कविता को अलंकारों से सजाना नहीं चाहता । दूसरे शब्दों में कहें तो वह कविता को सजाने से ज्यादा अनुभव को सजीव और जटिल रूप में व्यक्त करना चाहता है । सुंदरता की अपेक्षा अनुभव की बनावट और जीवंतता आधुनिक कवि के लिए ज्यादा महत्वपूर्ण है ।"[247]

रचनाकार रचना में प्रतीकों एवं बिंबों का प्रयोग जीवन-यथार्थ को स्पष्टता से व्यक्त करने के लिए करता है । 'धूणी तपे तीर' उपन्यास में भी अनेक स्थानों पर बिंबधर्मी एवं प्रतीकात्मक भाषा का व्यवहार हुआ है । महारानी विक्टोरिया की हीरक जयंती के संबंध में उपन्यासकार ने तीखा व्यंग्य किया है क्योंकि इस अवसर पर अत्यधिक धन खर्च किया गया था और भारतीय जनता गरीबी, भुखमरी से त्रस्त थी । राजा भी रानी के सामने अपनी इज्जत बढ़ाने के लिए बहुत पैसा खर्च कर रहे थे । उन्होंने रानी की प्रतिमा बनवाई थी । क्योंकि राजा इनाम एवं विभूषित होने के लिए तड़पते थे । इस उत्सव में पूर्व वायसरायों जिनमें लॉर्ड रिपन व लॉर्ड डफरिन शामिल थे । यथाः "ए.जी,जी ट्रेवर ने लॉर्ड केनिंग के शब्दों को उद्धृत करते हुए आगे कहा- श्रद्धेय महारानी विक्टोरिया की इच्छा है कि भारत के राजाओं तथा सरदारों का अपने राज्यों पर अधिकार तथा उनके वंश की जो प्रतिष्ठा एवं मान-मर्यादा है, वह हमेशा बनी रहे, इसलिए उक्त इच्छा की पूर्ति के निमित्त

---

246 धूणी तपे तीर, पृ सं 204

247 साहित्य का शास्त्रः आरंभिक परिचय, पृ सं 79

ब्रिटिश क्राउन आपको विश्वास दिलाता है कि वास्तविक उत्तराधिकारी के अभाव में यदि आप या आपके राज्य के भावी शासक हिंदू धर्मशास्त्र और अपनी वंश-प्रथा के अनुसार दत्तक पुत्र लेंगे तो वह जायज समझा जायेगा" ।[248]

उपदेशात्मक-शैली का एक उदाहरण दृष्टव्य है- "स्त्रियों को भी आगे आना पड़ेगा । इसलिए सभी भाईयों और बहन-माताओं से मेरी अर्ज है कि वे संप-सभा की बातों पर ध्यान दें, 'संप-सभा' के नियमों का पालन करें और अन्य मरदों व औरतों को संप सभा के नियमों की जानकारी दें । हर परिवार की समझदार औरतें संप सभा की कार्यकर्ता बनें और धूणी की भगत बनें । औरत व उसका मर्द धूणी के सामने जोड़े से बैठकर धूणी में हवन करेंगे और धूणी की ज्योत को देखेंगे"[249]

रचनाकार ने बिंब के विभिन्न प्रकारों यथा - दृश्य, श्रव्य, घ्राण, स्पर्श, स्वाद आदि का विषय और संदर्भ के अनुरूप उचित ही प्रयोग किया है । जैसे-

"उतरो कवि;
लड़की की 'पुष्ट' जंघाओं के नीचे
देखो पैरों के तलुओं को
विबाइयों भरी खाल पर
छाले-फफोलों से रिसते स्रव को देखो
कैसा काव्य-बिम्ब बनता है कवि ।"[250]

एक अन्य उदाहरण देखा जा सकता है जिसमें बिंबात्मक भाषा के साथ प्रतीकात्मकता का भी उचित समायोजन हुआ है –

"और दूसरी तरफ पहली बार भयावह दिखते
'ग्रेहाउड' 'स्कॉर्पियन' 'कोबरा'

---

[248] धूणी तपे तीर, पृ सं 88
[249] धूणी तपे तीर, पृ सं 178
[250] सुबह के इंतजार में, पृ सं 19

वीरान घोटुल, उजड़े हाट, उमंगहीन पर्व
थके मांदल और सिसकती बांसुरी को थामे
पथरायी आँखों के सहारे
अपने हरे-भरे आंगन में जीवन-अवलम्ब ढूँढता कोई
कैसे बचे वैश्विक वात्याचक्र से
दिक्कू और देसी दलालों के षड़यंत्र से ?”[251]

अर्थात् बिल-कुत्ते, बिच्छू व नाग ऐसे जंगली जंतु आदिवासियों के लिए पराये नहीं थे । जब से नक्सलियों से निबटने के लिए सशस्त्र बलों को ऐसे नाम रखे जाते गये, आदिवासी भी इन से बिदकने लगे । ‘घोटुल’ आदिवासी युवक-युवतियों का सामूहिक सह-आवास-स्थल का नाम है ।

---

[251] समकालीन आदिवासी कविता, पृ सं 107

उपसंहार

वस्तुतः समकालीन परिवेश और उसमें रह रहे मनुष्य को समझना आज जितना जटिल हो गया है, उतना पहले कभी नहीं रहा। हम एक अजीब समय से गुजर रहे हैं, जिसमें हमारी संवेदना को आकार देने वाली परिस्थितियाँ परस्पर उलझी हुई हैं। विकास के मानक आज जो हमारे समय में बने हैं, वे एक आयामी हैं क्योंकि वे पुराने सामंती संस्कारों को कोई चुनौती दिए बिना एक आरोपित आधुनिकता को इस समाज पर प्रत्यारोपित कर देना चाहते हैं। परिणामस्वरूप विकास के इन मिथकों ने एक नये तरह के सांस्कृतिक शून्य, एक अभूतपूर्व ढंग की संवेदनहीनता और आन्तरिक-विघटन को पैदा करना आरम्भ कर दिया है। भूमंडलीकरण की प्रक्रिया मानव-सभ्यता के इतिहास में हमेशा से ही रही है। व्यक्ति की चेतना में अखिल-ब्रह्माण्ड के प्रति जिज्ञासा और उससे संपर्क का भाव अबाध रूप से रहा है। इस प्रक्रिया में अर्थ और संस्कृति का वर्चस्व प्रधान रूप से कार्य करता है। विजेता-वर्ग ने विजित समुदायों को हाशियाकृत और सभ्यता की विकासयात्रा से दूर रखने के लिए अनेक प्रकार से षड्यंत्र रचे। उन षड्यंत्रों को हम प्राक्-ऐतिहासिक युग के मिथकों, परम्परागत-साहित्य और इतिहास -लेखन में देख सकते हैं। भारतवर्ष के समाज को हम दो वर्गों में बाँट कर देख सकते हैं –पहला वर्णावतरित जाति प्रणाली पर आधारित भारतीय समाज और दूसरा आदिवासी भारत। हरिराम जी के साहित्य-लेखन में भारतीय समाज का आदिवासी भारत प्रमुखता से अभिव्यक्त हुआ है। यह आदिवासी भारत कहीं पर निरंतर मुख्यधारा के समाज से संवाद करने की स्थिति में दिखलाई देता है और कहीं पर यह सभ्यता की विकासयात्रा से अनभिज्ञ है। कहीं-कहीं पर मुख्यधारा के समाज के उदासीन रवैये से यह पीड़ित और आतंकित दिखाई देता है। हरिराम जी की रचना-दृष्टि के मूल में भारत का आदिवासी समाज है। लेखक आदिवासी जन-समुदायों को आधुनिकता के साथ कदमताल मिलाते हुए, बढ़ते हुए, देखना चाहता है।

'ज्ञात प्राचीनता' के सिद्धांत के अनुरूप भारत देश में मूलवासी और आदिवासी की अवधारणा अपना स्वरुप ग्रहण करती है। भारतीय समाज-व्यवस्था बहुलतावादी और बहुस्तरीय स्वरुप के साथ सक्रिय है । यह बहुलता भारत के आदिवासी जन-समुदायों के जीवन-यथार्थ में दिखाई देती है। भारत के आदिवासी को अनेक प्रवर्गों में बाँट कर देखा जा सकता है- आदिम आदिवासी, विमुक्त और घुमंतू आदिवासी और मुख्यधारा का आदिवासी । हरिराम मीणा ने आदिवासी-साहित्य को तीन भागों में विभक्त किया है-

1. आदिवासियों का मौखिक/ वाचिक-साहित्य।
2. आदिवासियों के जीवन पर आधारित गैर-आदिवासियों का लिखित-साहित्य।
3. शिक्षित आदिवासियों द्वारा आदिवासी-जीवन पर लिखित-साहित्य।

हरिराम मीणा मूल रूप से कवि हैं। यह कवित्व-शक्ति उनके सृजन-कर्म की दूसरी विधाओं में स्पष्टतः देखी जा सकती है। वर्तमान दौर में आदिवासी-जीवन के समक्ष गंभीर संकट उपस्थित हो गया है। इस संकट की अभिव्यक्ति हरिराम जी के साहित्य में विशेष रूप से परिलक्षित हुई है। जैसे – आदिवासी क्षेत्रों में अवैध व अनैतिक घुसपैठ, उनका शोषण, उन पर लगायी गयी पाबंदियाँ, उनके अभाव, उनके डर, उनकी चिंताएँ, उनकी असुरक्षाएं, प्राकृतिक प्रकोप, महामारियाँ तथा इन सबके साथ उनके स्वप्न, गौरव, प्रतिरोध-संघर्ष-बलिदान और मुक्ति के मार्ग जैसे महत्वपूर्ण विषयों की उपस्थिति को इनके साहित्य में प्रमुखता से देखा जा सकता है। हरिराम जी का मत है कि – भारतीय मिथकों में आदिवासी-समाज का चित्रण मानवेतर रूप में किया गया है। प्राचीन इतिहास में उसे 'जंगली कबीलों' के रूप में देखा गया है । ब्रिटिशकाल में आदिवासियों की छवि आपराधिक जनजातीय अधिनियम के तहत 'जरायम पेशा' और रूमानियत के रूप में प्रदर्शित की गयी। आजादी के बाद के भारत में उसकी छवि विकास-विरोधी और माओवाद के समर्थक के रूप में चित्रित की गयी। उत्तर आधुनिक परिदृश्य में उसकी छवि आदिमता के

लक्षणों वाले चिड़ियाघर के वन्यप्राणी के रूप में अंकित करने का प्रयास परिलक्षित होता है।

उपरोक्त सभी छवियों में आदिवासी-जीवन समग्रता से अभिव्यक्त नहीं हुआ है। इसी अभिव्यक्ति को सार्थक रूप देने और मानवीय गरिमा के साथ आदिवासी-जीवन को चित्रित करने का प्रयास हरिराम जी ने अपने साहित्य-लेखन में किया है। लेखक की पक्षधरता श्रमशील लोक के प्रति है। इसलिए इनके साहित्य में भद्र बनाम लोक का द्वंद्व 'रोया नहीं था यक्ष' में स्पष्टतः देखा जा सकता है। लेखक का सरोकार लोक के उपेक्षित और सीमांत वर्गों की ओर गया है। लेखक का दृष्टिकोण परंपरा का संधान करने की ओर रहा है। इन्होंने नव्य-इतिहास-बोध को साहित्य-लेखन में अभिव्यक्ति प्रदान की है। रचना के लिए विषय की समुचित जानकारी, प्रमाणिक और ईमानदारीपूर्वक अभिव्यक्ति को रचनाकार विशेष महत्व देता है। रचनाकार ने भारत के आदिवासी लोक की यात्राएँ कीं, उपेक्षित आदिवासी-समुदायों की आदिम विश्वास प्रणाली से लेकर वर्तमान दौर में उनकी जीवन-स्थिति के समक्ष संकटों को 'आदिवासी दुनिया' के रूप में अभिव्यक्ति दी है। रचनाकार लेखन-कर्म को सामाजिक दायित्व-बोध से जोड़ कर देखते हैं। परम्परागत इतिहास-लेखन, साहित्य की दिशा और वर्तमान आदिवासी जीवन के विरूद्ध नीतियों की सम्यक् आलोचना इन्होंने की है। हरिराम जी के पास लेखकीय दृष्टिकोण, विषय का समुचित ज्ञान, इतिहास और राजनीति की गहरी समझ है जिसे इन्होंने अनवरत भाषिक सम्पदा के साथ तराशा है। इनके पास शब्दों का अकूत भण्डार है। यह भण्डार उनके अनुभव -जगत से जुड़ कर विषय को सीधी रेखा के साथ प्रस्तुत करने में सहायक हुआ है। हरिराम जी खोजी अन्वेषक हैं। उनकी यह खोज आदिमता से लेकर अधुनातन सन्दर्भों में व्यक्त उनके साहित्य में देखी जा सकती है। इन्होंने भारतीय मिथकों का डीकोडिकरण किया है जो प्रतिरोध की संस्कृति को अभिव्यक्ति प्रदान करता है। श्री हरिराम मीणा (बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध) राजस्थान के उन प्रतिनिधि रचनाकारों में रहे हैं जिनकी रचनात्मकता लगातार वयस्कता की ओर

अग्रसर हुई है । अपने समय से गहरे सरोकारों के कारण उनकी रचनाएँ हमेशा प्रासंगिक रही हैं। अतः हरिराम मीणा साहित्य को समाज, इतिहास, राजनीति और अर्थतंत्र से जोड़ कर देखने की बात करते हैं।

संदर्भ-ग्रंथ सूची

1. आधार-ग्रंथ

1. आदिवासी दुनिया (चुनिंदा मुद्दों पर विमर्श) - हरिराम मीणा, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2013
2. आदिवासी लोक की यात्राएँ- हरिराम मीणा, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2016
3. खाकी में कलमकार - हरिराम मीणा, अलख प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण, 2015
4. जंगल-जंगल जलियांवाला - हरिराम मीणा, शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2008
5. धूणी तपे तीर - हरिराम मीणा, साहित्य उपक्रम, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2008
6. मानगढ़ धाम (आदिवासी जलियाँवाला) - हरिराम मीणा, अलख प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण, 2013
7. रोया नहीं था यक्ष - हरिराम मीणा, जगतराम एण्ड सन्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2003
8. समकालीन आदिवासी कविता (संपादन) - हरिराम मीणा, अलख प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण, 2013
9. साइबर सिटी से नंगे आदिवासियों तक - हरिराम मीणा, शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2001
10. सुबह के इंतजार में - हरिराम मीणा, अक्षर शिल्पी, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2008
11. हाँ, चाँद मेरा है - हरिराम मीणा, जगतराम एण्ड सन्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1999

2. सहायक ग्रंथ

12. आदिवासी अस्तित्व और झारखंडी अस्मिता के सवाल- डॉ.रामदयाल मुण्डा, प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2002
13. आदिवासी कौन- सं. रमणिका गुप्ता, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 2008

14. आदिवासी विकास से विस्थापन- सं. रमणिका गुप्ता, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहला संस्करण, 2008
15. आदिवासी विमर्श – सं. डॉ.रमेश चन्द मीणा, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, प्रथम संस्करण, 2013
16. आदिवासी साहित्य यात्रा- सं. रमणिका गुप्ता, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 2008
17. आदिवासी साहित्य विमर्श – सं. गंगा सहाय मीणा, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2014
18. आदिवासियों के बीच- प्रो. श्रीचंद्र जैन, किताब घर, दिल्ली, 1980
19. जनजातीय भारत- नदीम हसनैन,जवाहर पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली, आठवाँ संस्करण, 1992
20. झारखंड के आदिवासियों के बीच एक एक्टीविस्ट के नोट्स - वीर भारत तलवार, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, 2008
21. बनजारा जाति, समाज और संस्कृति- यशवन्त जाधव, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 1992
22. भारत का स्वतंत्रता संघर्ष- विपिन चन्द्र, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 1998
23. भारत की जनजातियाँ- डॉ. शिवतोष दास, किताब घर, दिल्ली, 1983
24. भारत के आदिवासी- डॉ. एम. के. ए. सिद्दिकी, भारतीय मानव-विज्ञान सर्वेक्षण, भारत सरकार, कलकत्ता, 1984
25. भारतीय जनजातियाँ- रूपचंद्र वर्मा, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, 1997
26. भारतीय जनजातियाँ- हरिश्चंद्र उप्रेती, हिंदी रचना केंद्र, जयपुर, 1970
27. भारतीय समाज में जनजातीय अवधारणाएँ- डॉ. महेन्द्र कुमार मिश्रा, श्रुति पब्लिकेशन, जयपुर, 2008
28. मछलीघर- विजयदेवनारायण साही, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 1995
29. समय और संस्कृति-श्यामाचरण दुबे, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2000
30. सामयिक राजस्थान- एल.आर. भल्ला, कुलदीप पब्लिकेशन, जयपुर, 1985
31. साहित्य का शास्त्र : आरंभिक परिचय – नित्यानंद तिवारी, स्वराज प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2010

3. कोश

32. मानविकी पारिभाषिक कोश, साहित्य खण्ड, सं. डॉ.नगेंद्र, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1965
33. हिंदी **विश्व**कोश, सं. नगेंद्र बसु, कलकत्ता, 1972
34. हिंदी शब्दकोश, हरदेव बाहरी, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, 2005
35. हिंदी साहित्य कोश, भाग-1 (पारिभाषिक शब्दावली), सं. धीरेंद्र वर्मा एवं अन्य

4. पत्र-पत्रिकाएँ

36. अरावली उद्घोष- दिसम्बर, 2010
37. आदिवासी सत्ता- दिसम्बर- जनवरी, 2011
38. इस्पातिका- जनवरी-जून, 2012
39. मधुमती-दिसंबर, 2010
40. युध्दरत आम आदमी- जनवरी-मार्च, 2010
41. वाक्-नये विमर्शों का त्रैमासिक, अंक-3, जुलाई-दिसंबर, वर्ष-2007
42. वसुधा- जुलाई-सितंबर, 2010
43. सबलोग- जनवरी, 2011
44. हंस- अप्रैल, 2010
45. हिंदी संवाद सेतु पत्रिका- अप्रैल- सितम्बर, 2009

5. वेब-सामग्री

- http://:harirammeena.blogspot.com
- www.jagranjosh.com/.../hariram-meena-selected-for-the-bihari-puraskar-for-2012-13...
- https://www.facebook.com/public/Hari-Ram-Meena
- spicmacay.apnimaati.com/2013/12/writer-hari-ram-meena.htm
- https://hi.wikipedia.org/wiki/आदिवासी_साहित्य
- www.timesofindia.indiatimes.com
- www.jansatta.com › रविवारीय स्तम्भ

परिशिष्ट -1

लेखक का साक्षात्कार

खुशनसीब हैं वो लोग जो संघर्ष की राह से निर्मित होते हैं

(आदिवासी साहित्यकार व चिंतक हरिराम मीणा से शोधार्थी दुर्गाराव बाणावतु की बातचीत)

दु. बा.- आपका जन्म कब और कहाँ हुआ, बचपन की स्मृतियों पर प्रकाश डालिए ?

ह. मी.- बचपन की तेरी-जैसी स्मृतियाँ हैं वैसी मेरी भी स्मृतियाँ हैं। एक गरीब किसान परिवार में जन्म लेना, नंग-धडंग रहना वो बचपन की स्मृतियाँ हैं। तालाब का पानी, बाँध, बरसात खूब हुआ करती थी। वो स्मृतियाँ याद हैं अभी भी। धान, चावल, गन्ना, कपास होता था। खूब बारिश हुआ करती थी। वो भी घटनाएँ देखी हुई हैं, ज़माने में, ये बरसात कब होगी ? ये भी देखा है, ये सारा-का-सारा बे-मतलब इसकी वजह से ग्लोबलवार्मिंग हो रहा है। इसकी वजह से हमारा गाँव भी फँस गया, हम भी फँस गये। वो बचपन है छोटा-सा स्कूल था, वहाँ पढ़े थे एक मियां जी मास्टर हुआ करते थे। नसरून मियां, उन्होंने पढ़ाया था। और एक बार ज़िंदगी में एक ही बार ग़ैर-हाज़िर हुआ था। स्कूल गया दूसरे दिन। उसने बड़ के पेड़ की लौदरी ली और दो-चार लौदरी लगाई न, उसके बाद ज़िंदगी में ग़ैर-हाज़िर नहीं हुआ मैं- **"कांची कामड़ी बोड्या की, काईं छोड्ये नील में बाकी"**। उस स्कूल का नाम हुआ करता था- भूतेश्वर। वहाँ भूतेश्वर का मतलब महादेव का मंदिर था। उसी में स्कूल था, कुँआ था, सब गड्डमड्ड था। महादेव का स्थान भी है, और वहाँ से कुछ स्त्रियाँ पानी भरती थीं। बड़ का पेड़ भी था, स्कूल भी था, रास्ता भी था। पंचायत वहीं होती थी। खेती वहीं थी। मेरे परिवार के पूरे वंश में जो पहला आदमी जो पढ़ा, वह मैं पहला आदमी हूँ जो नौकरी ले रहा हूँ। ये सातवीं नौकरी तुम अचंभा करोगे।

फोर्थ क्लास से शुरू किया मैंने पता है ? समाज कल्याण विभाग में ढाई महीना फोर्थ क्लास में रहा हूँ। बाबू लोग कहते थे कि अरे मीणा इधर आ। चाय ला दो। वो जो ट्रे होती ना लोहे की उसमें चाय लाता। वापस ग्लास को लाकर देता, बीडी, बंडल लाता था, फाइल उतारता था वो सारी-सारी चीजें ....। इसलिए मैं कहता हूँ कि जीवन में अगर अनुभव समृद्ध करना है तो आपको बहुत पापड़ बेलने चाहिए। इतना ही कह रहा हूँ। मैं इसका मतलब ये नहीं की आप और मैं अभिशप्त हैं। वे लोग जो संघर्ष की राह से निर्मित होते हैं खुश नसीब होते हैं। जिन्होंने संघर्ष नहीं किया वो लोग कमजोर होते हैं। इसलिए वो सारे आदमी मर जाते हैं या किसी को मार देते हैं। जीवित सत्य है उसकी जैसी परिस्थितियाँ बदलेगी न उनकी सुविधाएँ छीनेगी वो लोग मर जाएँगे। देखना मध्यवर्गीय परिवार के बड़े लोग है ना छोटी-छोटी बातों पर झगड़ा करते हैं। संघर्ष करता है ना वो आदमी आगे बढ़ता जाता है। कोई भी परिस्थितियाँ हो उतार-चढ़ाव हो दायें-बायें मोड़ हो सबको पार करता है,नदी-नालों को पार करके आगे बढ़ते जाता है।

दु. बा.- आप अपने पुरखों के बारे में बताइये जिन्होंने आपको संस्कारित किया ?

ह. मी.- यदि पुरखों का नाम बताऊँ मैं तो, मेरे दादाजी का नाम लूँगा। भूखा, नंगा, लेकिन शरीर में कितना दम था,वो पहलवान था। पूरे कपड़े पहनने का रिवाज नहीं था। अधोवस्त्र पहना करते थे, नीचे ढंकलिया-सा कुर्ता बस। आधी धोती को धोकर के आधी को पोंछते और पहनते थे पता है तुमको ? वो आदमी कितना दमदार था। सूखा-भड्डा खाकर भी ताकतवर था। कुँआ होता है उसके बरगडी होती है ना, उसको बिना हाथ लगाए सात चक्कर लगाकर फिर कुँए में कूदता था वह पहलवान। जब उनका गौणा हुआ तो कुँआ पूजने के लिए ले जाते हैं। उनकी दो सालियों ने मजाक में उन्हें कुँआ में धक्का दे दिया और तो और दोनों सालियों को पकड़कर साथ ही नीचे कुँआ में ले गया, और कहा कि- दूर रहना, उपर मत चढ़ना, चढ़ोगी तो तुम भी मरोगी मैं भी मरूँगा। पानी का ये एकमात्र सूत्र है कि- पानी से

बाहर निकलने का, जिसको आप बचाने जा रहे हैं उसे उपर मत चढ़ाना अगर उपर चढायेंगे तो वो डर के मारे आपको पकड़ लेगा और आप नहीं तैर पायेंगें, वह भी मरेगा, आप भी मरेंगे। तो वह दोनों को दोनों हाथों में पकड़ कर उपर ले आया था। क्योंकि वे तैरना नहीं जानती थीं, वे जानते थे। सांवडिया नाम था उसका। एक बार खलिहान में सो रहे थे तो एक ढेर होता है ना अनाज के ढेर के उपर डोरिया से ढंक देते हैं कि अनाज खराब न हो वहाँ जो खाली जगह रहती है न वहीं सोते, रात में अपने पुरखों के, भूतों के, बहादुरियों के किस्सा सुनाते, हुक्का पीते-पीते वहीं सोते थे। कौन कहाँ सो रहा है ये थोड़ी है कि मैं आज यहाँ सोऊँगा ! आज यहाँ सोयेगा, कल वहाँ सो जायेगा, यही रही हैं- हमारी परंपराएँ। खेत भी आज यहाँ बोयें, अगले साल वहाँ बोयें। जब सुबह उठते मेरा पड़-दादा उन्हें प्यार से रूक्सा काका कहते थे कि अरे भाई रात में तो चिंटी ने बहुत काटा तो काका चिंटी कहाँ है, तुम कहाँ सोए थे। यहीं तो, वहाँ जाकर देखा तो दो बिच्छू सारे के सारे मसले पड़े हुए थे। वे सो रहे थे तो बिच्छू उन्हें खा गये थे और उन्होंने समझा कि चिंटा या चिंटी ने उन्हें खाया है। ऐसे-ऐसे हमारे पुरखे थे। पहलवान की हाइट मेरे से कम थी जानदार आदमी था। ऐसे शानदार-जानदार पुरखें रहा करते थे हमारे। सुबह तीन बजे उठकर राह में डोंगर पड़ता था, पहाड़ में दो कोस, पाँच किलोमीटर तक बैलगाड़ी से पहुँचते थे। पत्थरों से कुँआ, झोंपड़ी से पाटौड़, पाटौड़ से पक्के कमरों में आए, हैं न।

दु. बा.- पढ़ाई- लिखाई आपने कहाँ से प्राप्त की और इसके लिए आपको क्या-क्या संघर्ष करना पड़ा?

ह. मी.- प्रारंभिक शिक्षा भूतेश्वर स्कूल से की। उसके बाद चले गए गंगापुर सिटी। करौली से बी.ए. प्रथम वर्ष किया। बी.ए. राजस्थान कॉलेज से किया। संघर्ष तो बहुत किये। पैसा नहीं हुआ करता था पिताजी अँगूठा मारके कर्ज लेकर दिया करते थे। जो कर्ज़ देता था वह पचास देता था तो साठ लिखता था। कुछ पूछेगा तो ले गया

है न भूल गया क्या कहता था। कर्ज लेकर पिताजी ने पढ़ा दिया वक्त की दया से मैं पहला नौकर था, बहन का विवाह भी करवाया हूँ।

दु. बा.- आपके समग्र जीवन में कौन-सी ऐसी घटना है, जो आपको बार-बार याद आती है ?

ह. मी.- घटना बताऊँ , एक ही घटना बार-बार याद आती है। मेरी माताजी गई मेरे ननिहाल। मैं लकड़ी लाता था, बड़ा भाई रोटी बनाता था, पिताजी, और छोटा भाई हम सब मिलकर रोटी खाते थे। एक दिन मैं खेलता-खेलता हवाई जहाज देख रहा था। मेरा ध्यान उपर और पिताजी ढूंढ रहे थे लकड़ी लेकर नहीं आया तो मैं ऊपर देख रहा था पीछे से आकर एक थप्पड़ मारा जोर से हवाई जहाज देख रहा है आसमान में और तेरी नज़र आसमान में है और तू यहाँ लकड़ी लाया नहीं और मैं रोटी बनाया ही नहीं। वह थप्पड़ मुझे याद है। और मेरे पिताजी शानदार व्यक्ति थे लोकगीत रचा करते थे। शिवजी के उपर लोकगीत गाते थे। वो स्मृतियाँ हमेशा याद रहेंगी।

दु. बा.- जीवन के इस पड़ाव पर पहुँचते हुए आप अपनी जीवन-यात्रा से तमाम आदिवासी-बन्धुओं को क्या संदेश देना चाहते हैं ?

ह. मी.- पढ़ें- लिखें, जागरूक हो, संगठित हो, संघर्ष करें, अपने अधिकारों के लिए एकजुट होकर लड़ाई लड़ें क्योंकि बिना संघर्ष किए, बिना प्रतिरोध किए अपनी डिमांड को मजबूती से उठाने के अलावा कोई रास्ता नहीं है। इस डेमोक्रसी में नया ग्रुप बनायें। सब एकजुट हों। पोलटिकल लीडर्स हैं, सोशल लीडर्स हैं, इंन्टलेक्चवल्स हैं सब बुजुर्ग से लेकर युवाओं तक वे सब एकजुट होकर अपनी लड़ाई लड़ें क्योंकि इस दौर में आदिवासी बहुत संकट में हैं। उसके अस्तित्व को खतरा है।

दु. बा.- आपके लेखन के पीछे किनकी प्रेरणा रही है ?

ह. मी.- मेरे लेखन के पीछे मेरी-गरीबी, मेरी-मेहनत, मेरा-संघर्ष इन्हीं से मैं प्रेरित हुआ हूँ।

दु. बा.- पुलिस अधिकारी होने के नाते साहित्य में आपका प्रवेश कैसे हुआ ? साहित्य-लेखन में कौन-कौनसी दिक्कतें आयीं ?

ह. मी.- ऐसा है कि अन्य नौकरियों की तरह ही पुलिस-विभाग की नौकरी होती है।अन्य नौकरियाँ करते-करते लोग साहित्य में प्रवेश करते हैं वैसे मैंने भी पुलिस-कर्म करते हुए साहित्य में रूचि थी पढ़ने-लिखने का शौक था इसलिए उसको मैं कॉन्टिन्यू करता रहा इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि कौन-सा काम करते हैं ? आये हैं तो कोई-न-कोई नौकरी या धंधा करना ही होगा। पुलिस की नौकरी मिली लेकिन साहित्य से रूचि नहीं छूटी थीं। इसलिए वह जो सृजनात्मक साहित्य है उसमें उस रूचि की वजह से मेरा थोड़ा प्रवेश होता गया। जितना भी यात्रा कर सका उतना की और आगे कोशिश करेंगे, और आगे बढ़ें उस रास्ते में। ये जरूर मुझे कई लोग पूछते हैं कि पुलिस-कर्म में एक और व्यस्तताएँ ज्यादा होती हैं और एक ओर उस तरह का काम अपराध, अपराधी,पोलटिक्स और अनेक प्रकार के दबाव पड़ते हैं, उन दबावों, तनावों और व्यस्तताओं के रहते हुए भी साहित्य-कर्म के लिए समय निकालना एक सवाल उठाया जाता है। तो वह समय निकालने की बात डिपेंड़ करता है, आप समय का प्रबंधन कैसे करते हैं ? मैंने ये कोशिश की, पुलिस-कर्म को भी ठीक से निभाए और जो समय बचे उसको इधर-उधर दूसरी जो प्राथमिकताएँ हैं उनके चलते हुए साहित्य-कर्म को एक उच्च प्राथमिकता दी जाय। उस उच्च प्राथमिकता को लेने से वह समय और ऊर्जा है उसको मैं साहित्य-कर्म में लगाने की मैंने कोशिश की है। ये संभव है कि उस प्रक्रिया में दूसरी चीजें कोई छूट गईं हो क्योंकि आदमियों के पास दिन भर में जितना समय है उसके पास काम उससे ज्यादा होता है जब तक वह आदमी आलसी न हो तो आपको अपनी प्राथमिकता फिक्स करनी पड़ेगी। सौ काम दिन में है, समय है दस काम करने का और उसमें कौन-सा दस काम छाँटोगे उस पर निर्भर करेगा आपका समय-प्रबंधन मैंने उन दस कामों को

साहित्य में लिया। इसलिए साहित्य का काम भी करता रहा और पुलिस-कर्म भी करता रहा। जहाँ तक यह सवाल होता है कि पुलिस अलग टाइप की दुनिया है, अलग व्यवस्था है, जैसे उसमें चौबीस घंटे व्यस्त रहना पड़ता है कभी भी कॉल आ सकता है जिसको एटेंड़ करना है। तो पुलिस में जीवन देखने के अनुभव बहुत व्यापक और गहन होते हैं। हाथियों के अनुभव होते हैं। जितना शरीफ लोगों से आस्था होती है इन-जनरल निश्चित रूप से उससे ज्यादा आस्था अपराधी तत्वों से,सामाजिक तत्वों से,और जो डेवियेट्स होता है और वो जो अनुभव होता है प्रायः अन्य महकमों के अनुभव में शामिल नहीं होता था। एक विशिष्ट किस्मों के अनुभव मिलते हैं। उन अनुभव को आप कैसे इस्तेमाल करते हैं ? अपनी रचनात्मकता को भी अपने जीवन अनुभव से समृद्ध बनाते हैं। जितना जीवन अनुभव समृद्ध होगा उतना ही अभिव्यक्ति के आपके द्वार खुलते जायेंगे। विविध आयाम खुलते जायेंगे। नये-नये विकल्प आपको मिलते जायेंगे।

दु. बा.- 'मानगढ़ जनसंहार' की घटना पर केंद्रित 'धूणी तपे तीर' उपन्यास लिखने के पीछे क्या पृष्ठभूमि रही है ?

ह. मी.- देखो, मैं राजस्थान का रहनेवाला हूँ यह घटना राजस्थान के बाँसवाड़ा जिला में हुई। और मुझे जब इस घटना के बारे में पहली बार **'अरावली उद्घोष'** पत्रिका निकलती है उदयपुर राजस्थान से ही उसमें पढ़ने को मिला। ये सब बातें सन् 1990-1991 की हैं तब मैं खुद चौंका था कि राजस्थान का रहने वाला होकर भी राजस्थान की इतनी बड़ी घटना के बारे में मुझे जानकारी नहीं है तब उस घटना को लेकर कुछ काम करने की प्रेरणा मुझे मिली और उसी प्रेरणा के रहते हुए मैं उदयपुर गया तो 'अरावली उद्घोष' पत्रिका के संपादक स्वर्गीय बी.पी.वर्मा पथिक साहब से मुलाकात हुई मैंने उनसे कुछ जानकारी अर्जित की। मैंने वहाँ के लोगों से जान-पहचान की, इतिहासकारों से मिला। वहाँ के आदिवासी सेंटर को गया। ग्रंथालय में

कुछ चीजें देखीं और उसके बाद लगा कि हाँ मुझे इस पर काम करना चाहिए। पहले एक लेख लिखा, फिर यात्रा वृत्तांत लिखा जो **"जंगल जंगल जलियांवाला"** यात्रा-वृत्तांत किताब का हिस्सा है। इस से पहले बड़ा लेख लिखा था। तो वह लेख **'दैनिक भास्कर'** अखबार में छपा था और एकाध पत्रिका में भी छपा था। यात्रा-वृत्तांत छपा था 'पहल' पत्रिका में। जो ज्ञानरंजन जी निकाला करते थे। निर्देशिक पत्रिका है साहित्य की। उससे लोगों ने कहा कि इसके उपर आपको आगे जाकर और काम करना चाहिए।तब जाकर के मैं तथ्य एकत्रित करने लगा। तब भी यह क्या बनेगा तय नहीं था। इसके बाद उपन्यास **"धूणी तपे तीर"** के रूप में सामने आया। अहम बात इसमें यह है कि आदिवासी अंचल में इतना बड़ा बलिदान,इतना बड़ा संघर्ष, इतना बड़ा आंदोलन हुआ और इतिहासकारों की नजर उस पर नहीं पड़ी, क्या कारण थे वहाँ तक इतिहासकार नहीं पहुँच पाये ये एक दुखद आश्चर्य की बात है। इसलिए ये सोच करके चलो कोई करो मत करो, अपन तो अपना काम करें यों करके वह उपन्यास के रूप में सामने आना था और वह आया। और अब उम्मीद करते हैं कि इतिहासकार ध्यान देंगे। अब वह घटना चर्चा का विषय बन गई है। सरकारी प्रयासों से वहाँ पर स्मारक बन गया है। लोगों में, अंचल में वह जानी-पहचानी घटना बन गई। सबकी जबान पर है। वार्षिक-मेला भी वहाँ लगता है। अब सरकार ने उसको मान्यता दे दी है। 2002 में वहाँ स्मारक भी बन गया है और सरकारी आयोजन भी होते हैं। राजस्थान सरकार के साथ गुजरात सरकार भी उसमें रूचि लेने लगी हैं। अभी हाल ही में एक महीना पहले राजस्थान सरकार ने चार करोड़ रुपए सेंक्सन किए हैं। जैसा कि वहाँ म्यूजियम बनेगा।गोविंद गुरू की बड़ी प्रतिमा वहाँ स्थापित की गई है। आने-जाने की सड़क है पानी की व्यवस्था है। जो जाते हैं वहाँ पर देखने के लिए दर्शनार्थी होते हैं मेले में उनके लिए वहाँ ठहरने के लिए जगह है, और वहाँ स्मारक बन गया है, खास बात यह है कि उसको एक हैरिटेज सैड के रूप में बनाने की एक भूमिका चल रही है। जिसमें हमारे कुछ आदिवासी-समुदाय, सांस्कृतिक-कार्य में भाग लेने में रूचि ले रहे हैं अन्य विधाओं के

रूप में रूचि ले रहे हैं। उम्मीद है उनको एक नेशनल मोनोमेंट्री के रूप में मान्यता मिलनी चाहिए।

दु. बा.- आर्य समाज के प्रभाव स्वरुप कहीं-कहीं विशेषकर मानगढ़ जनसंहार के वक्त गोविन्द गुरू का चरित्र मुझे कमजोर लगता है, क्या आपको ऐसा नहीं लगता ?

ह. मी.- आर्य समाज के प्रभाव से गोविंदगुरू का चरित्र कमजोर लगता है यह एक उसका पक्ष हो सकता है मैं ये नहीं कहता कि आर्य समाज के प्रभाव में जो आएगा वह कमजोर होगा। आर्य समाज ने अपनी भूमिका निभाई जो भी उन्होंने अपना एजेंडा बनाया था जो भी उनका मकसद था जो लक्ष्य था उसको पूरा किया। अतः गोविंदगुरू का सवाल है, गोविंदगुरू निश्चित रूप से स्वामी दयानंद सरस्वती के संपर्क में रहे हैं। दयानंद सरस्वती ने उदयपुर प्रवास किया था और वहीं पर कहते हैं कि 'सत्यार्थ प्रकाश' नामक रचना लिखी गई थी। वहीं उनसे कई बार गोविंदगुरू मिलने के लिए गए हों तो संभव है कि उनका असर उन पर रहा हो यह एक बात है। दूसरा पक्ष- गोविंदगुरू सत्य और अहिंसा के अन्वेषी भी थे। उसको उन्होंने अपने जीवन में निभाने का काम भी किया। प्रचार-प्रसार का काम भी किया तो एक तरह से लगता है कि गोविंद गुरू पर महात्मा गाँधी का प्रभाव था। जहाँ तक मेरी जानकारी हैं महात्मा गाँधी के सीधे संपर्क में गोविंदगुरू नहीं रहे और गोविंदगुरू का सारा आंदोलन खत्म ही हो जाता है- एक तरह से सन् 1913 में वह घटना हुई तब तक गाँधी भारत आए भी नहीं थे। वो दक्षिण आफ्रिका में काम कर रहे थे। महात्मा गाँधी सन् 1920 के आस-पास आते हैं तब तक गोविंदगुरू का आंदोलन खत्म हो जाता है। वे कैद में चले जाते हैं। उनको सजा भी दे दी जाती है जिसको बाद में आजीवन कारावास, दस साल के बाद उसको देश निकालने के रूप में किया गया। देश निकालने के दौरान वो गुजरात में कंबोई गाँव में रहें। लेकिन तत्कालीन राजस्थान आते-जाते थे। खासतौर पर डूँगरपुर, बांसवाड़ा जिले के अंचल में आते थे। इसलिए उनकी सारी जीवन यात्रा को देखा है मैंने। जितना मुझे सूचना मिली है,

जानकारी मिली है उसके आधार पर मैं यह कह सकता हूँ कि महात्मा गाँधी के संपर्क में वो नहीं रहे। वे पहले से ही सत्य का, अहिंसा का, सामाजिक परिवर्तन का आदिवासी समाज में जो अंधविश्वास था, बुराइयाँ या बुरी आदतें शराब की, मांस-भक्षण की या इस तरह की समस्याओं से मुक्ति दिलाने का कार्य पहले से चला रखें थे। इसलिए गोविंदगुरू अपने आप में एक इंडिपेंडेंट कैरेक्टर बने हैं हर कैरेक्टर इंडिपेंडेंट बनता है लेकिन एक सौम्यता, सहज,सरल और जिसमें ज्यादा आप कहे कि विद्रोह न हो ज्यादा एक तरह का लड़ाकू किस्म का चरित्र विकसित नहीं हुए जब आदिवासी आंदोलन का विश्लेषण करेंगे तो बिरसा मुंडा झारखंड़ में लड़ रहा है या टंट्या मामा मध्यप्रदेश में लड़ रहा है और जो दूसरे नायक हैं बहुत सारे उनका लंबा आंदोलन का इतिहास है। वहाँ के आदिवासियों के नायकों से गोविंदगुरू थोड़ा-सा डिफरेंट नजर आयेंगे आपको क्योंकि जब बिरसा मुंडा, टंट्या भील, की बात करेंगे तो वे बहुत एक-जैसे होते हैं। एक बहुत ज्यादा लड़ाकू एक तरह का दुस्साहसी है। सीधा घृणा ये सब बातें गोविंदगुरू में नहीं मिलती हैं। गोविंदगुरू सॉफ्ट हैं और गोविंदगुरू एक समझौतावादी के रूप में नजर आयेंगे और जो सीधी लड़ाई के ऊपर विश्वास नहीं करता था। उन्होंने गुरिल्ला लड़ाई पद्धति को स्वीकार नहीं किया और हथियार उठाने को हमेशा मना करते थे। लेकिन उनके साथ जो सहयोगी थे पुँजा धीरा, कुरिया भगत उनमें थोड़ा-सा खासतौर पर कुरिया में ये लड़ाकू प्रवृत्ति ज्यादा थी और वह अगर हो सकता है कि गोविंदगुरू नहीं होने के समय पर और कुरिया भगत जैसा इस आंदोलन का नायक होता तो निश्चित रूप से वैसा ही होता जैसा बिरसा मुंड़ा या टंट्या भील की तरह लेकिन वो गोविंदगुरू को गुरू मानते थे। इसलिए गोविंदगुरु नायक है वो उनके उप-नायक के रूप में सामने आते हैं। इसलिए वे अपनी लड़ाई को अपने ढंग से नहीं रख पाए। जैसा गोविंदगुरू ने लड़ाई का एजेंड़ा बनाया वैसा ही उन्होंने भी उनके साथ काम किया। तो सॉफ्ट होना या हथियार नहीं उठाना इसको कमजोर चरित्र नहीं मानना चाहिए लेकिन कंम्पेयर करेंगे तो आदिवासी नायकों से एक डिफरेंट तरह का अंतर अवश्य नजर आता है। मैं उसको कमजोरी तो नहीं मानता हाँ जब मैं 'धूणी तपे तीर' उपन्यास लिख रहा था तब बीच-बीच में ये भाव जरुर आता था और आदिवासी ऐसा लड़े जैसा गोविंदगुरू

क्यों नही लड़ता था ? ये मेरे दिमाग में बातें आईं। लेकिन यह ऐतिहासिक उपन्यास है ऐतिहासिक घटना से छेड़खानी नहीं कर सकते तथ्य जैसा है वैसा ही रखना चाहिए। जो गैप है, उसे तर्क और कल्पना से भर सकते हैं।

दु. बा.- क्या आपको नहीं लगता कि फिर से एक बार बिरसा मुंडा को जन्म लेना चाहिए ?

ह. मी.- देखो जो नायक होता है इतिहास में जो उसको भूमिका निभानी होती है वह उसको निभाता है। बिरसा मुंडा ने अपनी भूमिका निभाई। जो भी उनको करना था 25 साल की उम्र में करके चले गए और एक आदिवासी इतिहास में हुई लड़ाई के महान नायक के रूप में बिरसा खड़े थे। बिरसा मुंडा जिस काल-खंड में लड़ रहे हैं अपनी लड़ाई आदिवासियों के अधिकारों के लिए वे परिस्थितियाँ यथावत् तो आज के संदर्भ में मिलेगी नहीं। भारत की जीवन-यात्रा बहुत आगे बड़ी है और यह जमाना वैश्वीकरण का, तकनीकी का, सूचना-क्रांति का उस तरह का है जिसमें जंगलों पर दबाव पड़ रहा है प्राकृतिक-संसाधनों का दोहन बहुत ज्यादा मात्रा में किया जा रहा है। विदेशी कंपनियाँ बहुत बड़ी तादाद में आ गई हैं। इसलिए बिरसा मुंडा जैसा नायक आज आदिवासी समाज को मिलता है तो बिरसा मुंडा के रूप में काम नहीं करेगा। आज की परिस्थितियों को देखकर अपनी लड़ाई लड़ेगा। इसलिए प्रसंग यह नहीं की बिरसा मुंडा को वर्तमान में उन्हें आना चाहिए या नहीं। ये जरूरी है कि आदिवासी समाज के नेतृत्व के लिए, उनके अधिकारों की रक्षा करने के लिए, उनकी अस्मिता स्थापित करने के लिए,जहाँ उसकी पहचान का संकट है उस संकट से उभारने के लिए कोई-न-कोई राष्ट्र के लिए इस तरह का नायक जरूर होना चाहिए। यह आवश्यकता आज की है या आज की डिमांड़ या मांग है। यह एक आदिवासी समाज की नहीं भारतीय समाज की मांग है। जिसमें उस भारत देश का बड़ा तबका आदिवासी समाज के रूप में पिछड़ा हुआ, अलग-थलग पड़ा हुआ उसको लाने के लिए जो प्रजातांत्रिक नेतृत्व है हिंदुस्तान का उसको और सचेत होना पड़ेगा और अगर आदिवासी नायक मिल जाता है तो उनकी बात को कहने में, सुनाने में, जो

डेसिजयन लेने वाले हैं उन तक पहुँचाने में सहूलियत रहेगी और एक आधिकारिक जो संप्रेषण है वह कन्वेशन हो पायेगा।

दु. बा.- आदिवासियों का 'उलगुलान' जंगलों से 'सीधे साइबर सिटी तक' पहुँच रहा है। इसके बारे में आपकी क्या राय है ?

ह. मी.- देखो वही बात जोड़ कर देखो बिरसा मुंडा तत्काल में था आज 'उलगुलान' उस रूप में नहीं आयेगा और वो एक सशस्त्र क्रांति थी हिंदुस्तान की प्रजातांत्रिक जो प्रणाली है वह इतनी विकसित हो चुकी है, इतनी लंबी यात्रा तय कर चुकी है और इतना पुख़्ता है कि उसने साबित कर दिया है कि वह विश्व के प्रजातांत्रिक जो राष्ट्र हैं उनके लिए एक उदाहरण है जहाँ सत्ता परिवर्तन आसानी से हो जाता है।प्रजातांत्रिक तरीके से ही होता है। अगल-बगल में बांग्लादेश या पाकिस्तान में क्या घटित हो रहा है ? और कहाँ क्या हो रहा है ? इसलिए सशस्त्र क्रांति से कुछ हासिल होगा। इसमें मैं विश्वास नहीं करता, नहीं उसको मैं मानता हूँ। अब जो नायक होगा तो वह आदिवासी समाज का भला करेगा तो लोकतांत्रिक प्रणाली में हस्तक्षेप करके ही कर पायेगा। क्योंकि कानून बनाने वाली संसद है। कानून की व्याख्या करने वाली न्यायपालिका है। खासतौर पर सुप्रिमकोर्ट, हाईकोर्ट है। उसको क्रियान्वित करने के लिए हमारे पास बडी एक्सक्युटी बॉडी है और सरकारी कर्मचारी हैं। प्राइवेट कंपनियों की भूमिका की बात आती है तो ये सारी जो व्यवस्थाएँ हैं, संस्थाएँ हैं ये जो प्रजातांत्रिक प्रणाली के ही उपांग हैं उसका आवश्यक आधार हैं, उसके स्तंभ हैं। इन सभ्य साथियों के साथ मीडिया की भूमिका होती है। मीडिया की भूमिका में आदिवासी के जो अधिकार हैं उनका कल्याण है एजेंड़ा में है लेकिन इंपलिमेंटेशन के स्तर पर कुछ गड़बड़ है इसलिए इस समाज का विकास उस रूप में नहीं हो पा रहा है जो हम अपेक्षा करते हैं। इसलिए वह 'उलगुलान' की बात करो वह सशस्त्र क्रांति अब न तो हो सकती है और न ही सफल हो सकती है। इसलिए अब तो लड़ाई प्रजातांत्रिक तरीकों से ही लड़नी पड़ेगी। प्रेशरग्रुप के रूप में

उभर कर सामने आना पड़ेगा। आदिवासी समाज की जो समस्याएँ हैं बताएँ और समस्याओं को प्रजातांत्रिक तरीके से उनके समाधान ढूँढे।

दु. बा.- 'जंगल जंगल जलियांवाला' में गोविन्द गुरू एक जगह कहते हैं, स्वदेशी का उपयोग करो, देश से बाहर बनी किसी भी वस्तु का इस्तेमाल मत करो क्या उन पर महात्मा गाँधी का प्रभाव था ?

ह. मी.- यहाँ सत्य-अहिंसा का संदर्भ है। स्वदेशी का गोविंदगुरू ने व्यवहार किया था। जब महात्मा गाँधी सन् 1920 में आते हैं उससे पहले गोविंदगुरू अपना काम कर रहे हैं और स्वदेशी असहयोग आंदोलन यह आदिवासियों की आजादी की लड़ाई का हिस्सा रहा है। 19 वीं शताब्दी में ऐसी बात ताना भगत करते हैं। उस बैल्ट में तो, इसलिए वैसे ही आंदोलन के लिए गोविंदगुरू ने स्वदेशी को अपनाया था और ये प्रचार किया था। स्वदेशी वस्तुओं, स्वदेशी कपड़े का इस्तेमाल करें, विदेशी वस्तु का इस्तेमाल न करें।

दु. बा.- 'धूणी तपे तीर' उपन्यास का शिल्प मौखिक परंपरा से उर्जा ग्रहण करते हुए आगे बढ़ता हुआ दिखाई देता है। इसके बारे में आपकी क्या राय है ?

ह. मी.- ' धूणी तपे तीर' उपन्यास अंग्रेजों के या रियासतों के खिलाफ लड़ी गई आदिवासी लड़ाइय़ों पर केन्द्रित उपन्यास है। आदिवासियों की परंपराओं में मौखिक परंपरा बहुत मजबूत है। चाहे साहित्य, संगीत, इतिहास की बात करें या उनकी गल्प जो है विधा उसकी बात करें और भी दूसरे हैं उनके मुहावरे, पहेलियाँ हैं जो उसी की जो मौखिक परंपरा है। ये 'धूणी तपे तीर' के कथानक जिस घटना पर आधारित है वह घटना आदिवासियों की उस आदिवासी संशय की मौखिक परंपरा में है।उस मौखिक परंपरा में जीवित रहीं हैं, लोग गोविंदगुरू के गीत गाते हैं। उनकी ज़बान पर है गोविंदगुरू बड़े नायक हुए हैं। धार्मिक नायक के रूप में पूजते हैं आस्था रखते हैं। उनके जो फालोवर्स हैं उनको भगत के नाम से पुकारा जाता है और वे

सफेद वस्त्र धारण करते हैं। गले में एक कंठी पहनते हैं चाहे वो तुलसी की है, रूद्राक्ष की है। तो गोविंदगुरू उस रूप के नायक वहाँ पर हैं उनकी उस नेतृत्व में जो घटना घटित हुई मानगढ़ पहाड़ पर तो वह मौखिक परंपरा इतिहास में जिंदा रही है। इस उपन्यास में आदिवासी की उस मौखिक इतिहास की परंपरा का असर होना स्वाभाविक था और उसके बाद लिपिबद्ध होकर इस रूप में सामने आता है।

दु. बा.- 'रोया नहीं था यक्ष' में जो यक्ष का आत्म-संघर्ष है क्या इससे आपके आत्म-संघर्ष को अभिव्यक्ति मिली है ?

ह. मी.- निश्चित रूप से अगर कोई उसको गहराई से देखता है तो यानी यक्ष को तो "रोया नहीं था यक्ष" का कालिदास के मेघदूत के मिथकों को आज के संदर्भ में पुनः परिभाषित करने का एक प्रयास है। जिसमें कुबेर बिलगेट्स बन जाता है। यक्ष-दलित, दमित, शोषित,वंचित जो मानवता है उसका नायक बनता है। उसकी पत्नी यक्षणी स्त्री चेतना की वाहक बनती है। उसको आगे बढ़ाने का काम करती है और मेरी जो सारी प्रतिबद्धता है। वह समाज के उन्हीं वंचित मूल्यों की ओर है क्योंकि मैं खुद उन वंचित वर्गों से बिलांग करता हूँ। दूसरा क्या है कि एक संवेदनशील साहित्यकार हो, अध्येता हो या बुध्दिजीवी हो उसके कन्सर्न होंगे। उसके कल्चर में वहाँ होंगे जहाँ पर लोक पिछड़े हुए हैं। लोगों को अधिकार नहीं मिल रहे हैं ? लोगों का शोषण हो रहा है। लोगों को वंचित रखा है। अधिकारों से उनकी जो पहचान है उसका संगठन के सामने क्योंकि राजा, महाराजा, सेठ-साहूकारों के किस्से तो गाने वाले तो बहुत मिल जायेंगे आपको।, लेकिन इस प्रगतिशील जमाने में या जहाँ पर आपको एक प्रगति को अपना एजेंडा मानते हैं। वहाँ पर उसका सीधा-सा मतलब होता है समाज के वो वर्ग हाशिये पर पडे हुए हैं। और उनमें भी जो अधिक हाशिये पर पड़े हैं। वह आपकी प्राथमिकता होगी। इसलिए **'रोया नहीं था यक्ष'** कालिदास के मेघदूत की तरह एक प्रेम कथा, या एक वृहत्कथा, विप्रलंभ श्रृंगार के रूप में कालिदास तक सीमित रहती वह आज के संदर्भ में आयेगी तो हरिराम मीणा के जो

कन्सर्न प्राथमिकताएँ हैं जो उसके संस्कार हैं,बुद्धिजीवी के संस्कार हैं वे वहाँ पर आयेंगे तो उनका जो यक्ष है वह हाशिये के समाज की अस्मिताओं का नायक के रूप में उभरकर सामने आयेगा। न कि केवल मातृप्रेमी या गृह में रोने-धोनेवाले पात्र के रूप में।

दु. बा.- आधुनिकता का आदिवासी जीवन पर पड़े प्रभाव को आप किस रूप में देखते हैं ? 'साइबर सिटी से नंगे आदिवासियों तक' यात्रा-वृत्तांत के संदर्भ में विशेष रूप से उल्लेख करें ?

ह. मी.- देखो आधुनिकता को हम अगर सही ढंग से विश्लेषण करें तो उसका मतलब ये है कि जो आदिम युग से जो उसकी यात्रा आगे बढ़ी है वह मध्यकाल से होती हुई आधुनिक काल तक पहुँची। जो आधुनिकता से आगे निकल गई उसे हम आज उत्तर-आधुनिक कह रहे हैं और ये उत्तर-आधुनिक काल को हम फिर से वैश्वीकरण कहेंगे। तो वैश्वीकरण के संदर्भ में आज के दौर के संदर्भ में आदिवासी को जो आप देखेंगे तो आदिवासी उस यात्रा में बहुत पीछे हैं। वैश्वीकरण के जमाने में आदिवासी विकास का मुद्धा सबसे बड़ा है। आदिवासी का विकास विकसित समाज के रूप में जो भारत का बृहत् समाज है उसका हिस्सा कैसा बनें, वह ज्ञान-विज्ञान को कैसे इस्तेमाल करें ? वह तकनीकी का कैसा इस्तेमाल करें वह आधुनिक जो सुविधा संपन्न जो भौतिक जो स्थिति है उस तक कैसे आये इसलिए बहुत सारी बातें होंगी। शिक्षा की भी होगी, ये सब मूलभूत सुविधाएँ स्वास्थ की हैं, परिवहन की हैं। ये सारी चीजें और मकान का सवाल आ रहा है उसके सामने यह जो विकास की यात्रा में जो प्राकृतिक-संसाधनों का दोहन हो रहा है। उसके कारण उसको विस्थापन की समस्या से जूझना पड़ रहा है। पुनर्वास उसका ठीक से नहीं हो पा रहा है। तो इन सारी चीजें से वह जूझता आ रहा है। इसलिए आधुनिकता का उस पर क्या प्रभाव पडेगा ? निश्चित रूप से कुछ आदिवासी समुदाय कहें या आदिवासी समाज में से कुछ लोग आगे बढ़े हैं पढ़-लिख कर आरक्षण का फायदा लेकर आगे बढ़े हैं। राजनीतिक प्रतिनिधित्व तो प्रजातंत्र में मिला है। आरक्षण की वजह से लेकिन उसके बावजूद समग्र रूप से कुल मिलाकर देखा जाय तो आदिवासी समाज बहुत पिछड़ा

समाज है हिंदुस्तान का और उसको जो आधुनिक सुख-सुविधाएँ हैं उसका लाभ बहुत कम मात्रा में मिला है। और इसलिए उसको आगे बढ़ाने के लिए उनमें चेतना लाना और समग्र नेतृत्व लाना उसके एजेंड़े की प्राथमिकता में होगा। ताकि जो योजना बनती है, उप-योजनाएँ बनती हैं और दूसरे फायदे हैं संवैधानिक प्रावधानों के लिए या दूसरे कानूनी कार्यों के उन लोगों तक पहुँच सके। कुल मिलाकर अभी तक आधुनिकता के जो लाभ उसको मिलने चाहिए उसको नहीं मिले, मिला है तो बहुत कम मात्रा में मिले हैं।

दु. बा.- आदिवासी व ग़ैर-आदिवासी साहित्य के दृष्टिकोण में क्या अंतर है ?

ह. मी.-   देखिए साहित्य, साहित्य होता है हम भी इस बात को मानते हैं। उस में जो यह महसूस होता है कि जो मुख्यधारा का साहित्य है उसमें हाशिये के समाजों को वह जगह नहीं मिली जो उनको मिलनी चाहिए। आदिवासी समाज के सुख-दुख की अभिव्यक्ति मुख्यधारा के साहित्य में बहुत कम हुयी है और जो हुई वह भी आधिकारिकता के साथ नहीं हुई। दिक्कत यह है कि लोगों ने आदिवासियों को रोमांटिक नजरिए से देखा है बतौर,फैशन से देखा है, दूर से देखा है। अपने स्तर पर कल्पना करके देखा है। इसलिए उससे आदिवासी-जीवन पर अनुभव की कमी है जब उस अनुभव की कमी है तो हम कहेंगे कि वह ज्यादा अर्थेंटिक नहीं है। उसमें आधिकारिकता की कमी है और जब बिना आधिकारिकता के, बिना अनुभव के कोई चीज सृजित की जाती है तो वह चीज वह नहीं बनती जो बननी चाहिए वह और कोई होगी। वह आदिवासी समाज के जीवन के सुख-दुख की अभिव्यक्ति नहीं है। इसलिए सवाल ये उठता है कि जब मुख्यधारा के आदिवासी-जीवन को पर्याप्त जगह नहीं मिली तो आदिवासी-साहित्य को अलग से देखने की अलग से सृजित करने की उसको अलग से बात करने की जरूरत पड़ती है। इसलिए कोई भी लेखक चाहे आदिवासी है या गैर-आदिवासी है लेकिन आदिवासी जीवन के अनुभवों को आधार लेकर उसको लिखें और मुख्यधारा के साहित्य में आदिवासी जीवन को भी पर्याप्त जगह मिलें अगर नहीं मिलेगी तो यह माना जायेगा कि वह मुख्यधारा का

साहित्य अधूरा है कमजोर है उसमें बहुत कुछ छूटे हुए हैं। कई समाज छूटे हुए हैं इनमें एक आदिवासी समाज भी है।

दु. बा.- आदिवासी-विमर्श के क्या मायने हैं ?

ह. मी.- आदिवासी को आप परिभाषित करेंगे तो यह एक बात दिमाग में रहनी चाहिए हमको भी हमारे विश्व की सारी मानवता एक जमाने में आदिम थी ? आदिम युग में आदिम- जीवन-शैली में जीती रही थी। उसमें से जो राष्ट्र, समाज कहें या जो समुदाय कहें जो वह आगे निकल गये या आगे यात्रा करते रहें, भौतिक उन्नति करते रहें भौतिक सुख-सुविधाओं का उपभोग करने लगे। ज्ञान-विज्ञान का इस्तेमाल करते रहे, शोध करते रहें। शोध के फायदे तकनीकी के रूप में लेते रहे। वह मानवता आगे बढ़ती रही है। जो उस यात्रा में गति नहीं ले सकें किन्हीं भी कारणों से उनमें एक समाज आदिवासी रह गया। तो सबसे पीछे रहा और वह अभी भी आदिम जीवन-शैली को अपनाए हुए है। जिसकी प्रमुख विशेषताओं में प्रकृति के निकट रहने मानवेतर प्राणी जगत के साथ सह-अस्तित्व की भावना और खुद अपने समाज में अपनी सीमाओं तक वह आदिवासी समाज की मुख्यता निजी संपत्ति की अवधारणा उस रूप में नहीं होना जिस रूप में उन समाजों में हैं या विकसित समाजों में हैं। तो वह सारा अंतर सामने आयेगा। जो आदिम सरोकार आदिम जीवन-शैली के निकट है। उन्हें हम आदिवासी समाज कहते हैं। मानवशास्त्र के आधार पर जब देखेंगे तो यही आयेंगी कि वह प्रजातियाँ हैं जो अभी भी आदिम जीवन जी रही है या उस आदिम जीवन-शैली से आगे दूर नहीं निकली है उनको हम आदिवासी समाज कहते हैं। इसकी गणना भारत के जंगलों के हिसाब से की जाती है। 2011- की गिनती के हिसाब से वह कहीं 11% होती है और उसमें करीब 8.5% करीब उसमें अनुसूचित जन जातियाँ हैं जिन आदिवासियों को संविधान में आदिवासी के रूप में शामिल कर दिया गया है। जो सूची में शामिल नहीं किए गये हैं वे परिगणित जनजातियाँ हैं आदिवासी समुदाय हैं उसमें घुमक्कड़ आदिवासी जन हैं, उसमें अर्ध-घुमंतू जनजातियाँ हैं। उन सबको आप मिलायेंगे 11% में उनको हम आदिवासी कहेंगे।

अभी भी अंचल की पहचान है और वे अपने अंचलों से बाहर नहीं निकले हैं। कुछ निकले भी हैं तादाद बहुत कम हैं लोग निकले हैं। सरकारी या प्राइवेट नौकरी के रूप में आए हैं। प्रजातांत्रिक प्रणाली में राजनीतिक जनप्रतिनिधि के रूप में उभरकर सामने आए हैं या कोई दूसरे व्यवसाय, धन्धे करने के लिए बाहर निकले हैं।

दु. बा.- आदिवासी-विमर्श को आप किस रुप में देखते हैं ?

ह. मी.- जब हम आदिवासी-विमर्श की बात करते हैं तो हमारा संबंध साहित्यकार के रूप में देखें तो वह साहित्य तक सीमित है। संस्कृति के स्तर पर अलग होगा, विज्ञान के स्तर पर अलग होगा। विकास के स्तर पर अलग होगा। कई-कई क्षेत्रों में आदिवासी-विमर्श देखा जा सकता है। हम यहाँ बात कर रहे हैं आदिवासी-विमर्श, साहित्य के माध्यम से आदिवासी-विमर्श की बात करते हैं तो हम ये कहते हैं कि जीवन की कितनी अभिव्यक्ति साहित्य में हुई और अभिव्यक्ति हुई है तो वह किस तरह की अभिव्यक्ति है और यहाँ साहित्य हम जिसको क्रियेटिव लिटरेचर कहते हैं। जिसको सृजनात्मक-साहित्य कहते हैं जिसमें विभिन्न विधाएँ होती हैं। इसमें कथा-साहित्य में उपन्यास और कहानी को लेते हैं। कविता को लेते हैं संस्मरण हैं, यात्रा-वृत्तांत. रिपोर्ताज को लेते हैं। जो यह सारी विभिन्न विधाओं में अभिव्यक्ति हुई है। उन अभिव्यक्ति में आदिवासी-जीवन का चित्रण कैसे किया गया ? यह पहला सवाल है। दूसरा इन विधाओं में जो कुछ रचा गया है उसकी आलोचना, समीक्षा, उसका विश्लेषण, उसका भाष्य उसकी टीका-टिप्पणी का सवाल दूसरा है। तीसरा-जो महत्वपूर्ण होता है जो वह आता है कि- साहित्य-लेखन के माध्यम से जो आदिवासियों से जुड़े हुए मुद्दे हैं। उन मुद्दे पर कितनी गहराई से विचार किया गया ? कितनी गहराई से सोचा गया है ? समस्याओं को कितना उठाया गया है, उन समस्याओं के समाधान को कितना खोजा गया है ? जो कुछ गलत घटित हो रहा है उसको ठीक करने के लिए क्या विकल्प हैं ? जो कुछ ठीक हो रहा था उसको और ठीक करने के लिए हम क्या प्रयास कर रहे हैं ? यहाँ जो विचार

उत्तेजक हैं गहन-शोध और चिंतन पर आधारित लेख हैं उनकी भूमिका क्या थी ? पर यह बात मैं जो कह रहा हूँ ये बात ही आदिवासी-विमर्श में सब कुछ शामिल होगा जिसमें विभिन्न विधाओं के रूप में लिखा गया साहित्य है जिसको आदिवासी-साहित्य कहते हैं और आदिवासी से जुड़े हुए विभिन्न मुद्धों पर कितनी गहराई से चिंतन किया गया है और उसको लेखन के रूप में गोष्ठियों, सेमिनार में एक बहस के रूप में विमर्श के रूप में लाया जाता है। ये सारी चीजें मिलाकर आदिवासी-विमर्श बनता है। हिंदी साहित्य के माध्यम से आदिवासी अभिव्यक्ति या आदिवासी-विमर्श की जो बातें करेंगे अभी हम शैशव-अवस्था में है और इस शैशव-अवस्था को मुश्किल से दस साल भी नहीं हुआ। दलित-साहित्य की यात्रा काफी आगे बढ़ चुकी है। हिंदी बेल्ट में भी करीब 30 साल से ज्यादा हो गया है। मराठी में पहले और हिंदी साहित्य में बाद में आया। जो अभी-अभी आदिवासी-साहित्य रंगरूप को, स्वरूप को अभी उभरकर सामने आना है। इसलिए अभी आदिवासी-विमर्श की साहित्य के माध्यम से हम बात कर रहे हैं। उनमें जैसे उसका एक सौंदर्यशास्त्र, उसका एक आलोचना-कर्म उसको मापने का जो मापदंड़ होता है किस पर उसको तौला जाए वे सारी चीजें आना बाकी है। बहुत धीरे-धीरे आ रहा है। इसलिए अभी आदिवासी समाज में चिंतन की बात आती है तो इन मुद्धों पर बहस की बात करते हैं। मौखिक परंपरा के लिए अपनाया है साहित्य के माध्यम से लिखित परंपरा में या शुरूआत से देखें तो अपनी शुरूआत का दौर में जितना रचा गचा है। उसको कैसै नापा जाय ? कैसे उसका आकलन किया जाय ? ये सवाल हैं जिस पर काम अभी तक नहीं के बराबर हुआ है।

दु. बा.- धर्मांतरण किन वजहों से होता है ? क्या इनसे उनका जीवन प्रभावित नहीं होता है ?

ह. मी.- धर्मांतरण की एक वजह जो साफ है वह यह है कि अगर वह ऑलरेडी किसी संस्थागत धर्म से जुड़ा हुआ है कोई समाज या समुदाय और वो वहाँ संतुष्ट नहीं है। उन धार्मिक परंपराओं को, आस्थाओं को या पद्धति को स्वीकार करने में

अगर बेचैन है वो अपने आपको अस्मिता को संभाले नहीं हुए है उसकी पहचान का संकट पैदा हो रहा है तो उस धर्म को बदल देगा। जैसे हिंदुस्तान का अधिकांश दलित समाज जो इतिहास में हिन्दू द्वारा अपनाये धर्म की प्रक्रिया में अपने आप नीचा देखना शुरू किया उसको नीचा दिखाया गया दोयम़ दर्जा का नागरिक माना गया। तब अधिकांश लोगों ने बौदध् धर्म स्वीकार किया जहाँ उनको लगा की ये हमारा धर्म है यहाँ सभी इन्सानों को बराबर का दर्जा है। यहाँ इवेन बाबासाहेब अंबेडकर ने बौद्ध धर्म को अपनाया और मास इस तबके से लोगों को इकट्ठा करके धर्मांतरण हुआ था। दूसरा धर्मांतरण ये हो सकता है कि खुद के धर्म को समझने के लिए इसमें कुछ कमियाँ हैं। धर्म मेरा ही है लेकिन उधर जाऊँगा तो ज्यादा फायदा हो इसलिए नार्थ-ईस्ट के आदिवासियों ने ईसाई धर्म को स्वीकार किया। मिशनरियों का रोल उसमें रहा। मिशनरियों से उनको फायदा हुआ, अंग्रेजी शिक्षा के माध्यम से उन्होंने विकास किया। पूरे राष्ट्र के स्तर पर उनका पोलीटिकल नेतृत्व उभरा है। उनका मेसेज भी आया है। दूसरे धंधे भी कर रहे हैं। मॉडर्न् भी बन रहे हैं। आधुनिक विकास के रास्ते में जाने में, ईसाई धर्म में धर्मांतरित होने से, उनको मदद हुई है। इस में कोई शक नहीं है कि इस रूप में धर्म अपनाए या नहीं अपनाए सभी धर्म अपनी जगह मूल रूप में अच्छे हैं। किसी भी धर्म में बुराई हो ही नहीं सकती है। जब वह धर्म एक अंधता का कारण बनता है या उसमें एक जड़ता पैदा होती है। यह उसमें एक डयागोमा पैदा होती है तब दिक्कतें आती हैं। इसमें आदिवासी समाज का सवाल है जो धर्मांतरण हुआ है उसको आगे बढ़ा दो और आदिवासी का मूल धर्म क्या है उस मूल धर्म पर विचार करना चाहिए आपको। आदिवासी धर्म, प्रकृति पर आधारित है। प्रकृति की पूजा की जाती है,उन पर आस्था की जाती है। ये जीववाद है जहाँ तक मानवेतर प्राणी जगत के किसी-न-किसी प्रतीकों के टोटम के रूप में, चिह्न के रूप में स्वीकार किया जाता है। आदिवासी-धर्म टोटम पर आधारित होगा एक, प्रकृति पर आधारित होगा दो- प्रकृति-तत्व और मानवेतर प्राणी जगत में से कोई-न-कोई उसका आराध्य होगा, तीसरा- आराध्य आता है कि जो उसके पुरखें हैं जिन्होंने कोई बड़ा काम किया है उनको लोक देवी-देवता के श्रेणी में लेते रहें और उनको आराध्य और पूज्य मानते रहे हैं। आदिवासी मूल धर्म के रूप में देखें तो ये उसकी आदि

धार्मिक परंपरा है। धर्मांतरण वाली बात अलग है कि वह किसी धर्म को स्वीकार करता रहा है।

दु. बा.- विकास बनाम विस्थापन का मुद्दा क्यों जटिल हो रहा है ?

ह. मी.- ज्यों-ज्यों प्राकृतिक-संसाधनों का दोहन होगा वह दोहन वहीं होगा जहाँ जंगल है, जहाँ जंगल है वहाँ आदिवासी रहते आए हैं। इसलिए जहाँ भी आप प्राकृतिक संसाधनों का दोहन करेंगे वहाँ पर आप जायेंगे विकास की प्रक्रिया में रेलवे लैन या सड़कें या उद्योग-धंधे या जल-परियोजनाएँ या ऊर्जा परियोजनाएँ वे सारी-की-सारी आप बनायेंगे विकसित रूप में आप उनको फैलाएंगे। तो फैलाएंगे जहाँ जंगल है वहाँ फैलाएँगे। और वहाँ आदिवासी है तो आदिवासी वहाँ से विस्थापित हो जाएगा। सवाल तो होता है भारत की विस्थापन और पुनर्वास नीति के तहत खासतौर पर आदिवासियों के संदर्भ में उसमें जहाँ अतिआवश्यक है वहाँ विस्थापन किया जाय। किंतु अंधाधुंध विस्थापन नहीं किया जाय। दूसरा ये है कि- अगर विस्थापन होता है तो उनका पुनर्वास वहीं ईर्द-गिर्द किया जाय। इन दो को फॉलो करेंगे तो जो आदिवासी जिस जीवन-शैली को लेकर चलता आ रहा है वो डिस्टर्ब नहीं होगा। उसे आप एक दम किसी बहु-मंजिला इमारतें फ्लैट में आप उसको रहने के लिए कहेंगे तो वह नहीं रह पायेगा। उसकी एक लंबी प्रक्रिया है पहले विस्थापित होकर के आसपास वहीं रहेगा और उस जीवन-शैली से पढ़-लिखकर के अलग उसमें जागृत हो गया या जागरुकता आ गई तो फिर उसको आगे जाने वाली बातें और वह जो उसका शिफ्टिंग होगा- वह एक दूसरी तरह का विस्थापन हुआ है। जो प्रगति के लिए, उन्नति के लिए एक जगह छोड़कर दूसरी जगह जाना होगा। उसको हम बलात् विस्थापन भी कह सकते हैं। बलात् विस्थापन का कोई प्रावधान है ही नहीं हमारे यहाँ जो विस्थापन, पुनर्वास की नीति है या वन-अधिकार अधिनियमों का प्रावधान है। उनमें कहीं नहीं है वनों में जहाँ वह रहते हैं वन अधिकारों का हो, वनोपजों पर अधिकार हो ये बातें हमारे लिए दोनों स्पष्ट हैं। इसलिए बलात् विस्थापन कहीं होता है तो बिलकुल गलत है इसलिए इसका विरोध होता है। जहाँ विस्थापन प्रगति के लिए हो रहा है। विकास के लिए विस्थापन हो रहा है वह विस्थापन होकर पुनर्वास

उसकी नीति के तहत वहीं हो जिसको वह स्वीकार कर लें। उसके लिए जो स्वीकार नहीं है वैसा पुनर्वास होगा तो फिर दिक्कतें पैदा होगीं इसलिए ये मामला जटिल जब बनता है नीतिगत निर्णय नहीं लेंगे। हम किसी नीति के प्रावधानों को सही ढंग से लागू नहीं करते हम उन आदिवासियों को जो प्रभावित हो रहे हैं। विस्थापन में आ रहे हैं। संभावित विस्थापित हो रहे हैं या होनेवाले हैं। उनकी मानसिकता, संस्कारों को समझकर के उनकी इच्छा को तहेदिल से नहीं करेंगे, और उनको विश्वास में नहीं लेंगे तब तक ये मामला पीछे रहेगा।

दु. बा.- आदिवासी भाषाओं के संकटग्रस्त होने के क्या कारण हैं ?

ह. मी.- जब एक विकास के रास्ते पर हम बढ़ते हैं तो जो आगे चलने वाले हैं उसको फालो किया जाता है सामान्य तौर पर। आगे चलने वालों को उसके साथ जो पीछे चलने वाले मानव समुदाय हैं वह अपनी पहचान को खोने लगते हैं क्योंकि प्रक्रिया में कुछ नया अर्जित करें जितनी मात्रा में नया वह अर्जित कर रहा है ये आधुनिकता की परंपरा है। तो एक क्रम बनता है वैसा ही उसको जितना आधुनिक तत्व शामिल हुआ उतना परंपरा तत्व गायब हुआ। धीरे-धीरे आधुनिकता ज्यादा आती जायेगी परंपरा खत्म होती जायेगी। तो परंपरागत जो संस्कार है परंपरागत जो जीवन-शैली है उस संदर्भ में हम बात कर रहे हैं। परंपरा इतिहास के रूप में नहीं ले रहे हैं। इतिहास, परंपरा अलग-अलग चीजें हैं। जीवन-शैली, जीवन-दर्शन, जीवन-जीने के तौर तरीके संस्कार संस्कृति इस रूप में आप परंपरा को देखेंगे तो आदिवासी जितना विकसित या आधुनिक रूप में मुख्य समाज के निकट जायेगा। उतना कुछ नया लेगा। पुराना छोड़ेगा। पुराना छोड़ के भाषा भी एक क्षेत्र की है वह नई भाषा को अपनायेगा। उनसे कम्यूनिकेट करेगा। आदान-प्रदान की प्रक्रिया से जुड़ेगा। उसमें उस भाषा का मूल रूप प्रभावित होगा और फिर संभावनाएँ ये बनती हैं कि वो छोटी-छोटी अस्मिताएँ ली गई भाषाएँ या बोलियाँ वह गायब भी हो जाये उस प्रक्रिया में । कोई आदमी पढ़-लिख करके के सरकारी सेवा में आ गया और दूसरा व्यापार धंधा करने लग गया। तो निश्चित रूप से अपने अंचलों को छोड़कर बड़े नगर या किसी नगर या बाहर विदेश में जायेगा तो वहाँ अपनी भाषा से काम चलेगा नहीं। उसकी भाषा बोलने वाले लोगों के बीच वह भाषा इस्तेमाल कर लेगा

लेकिन अगर बोलकर लिखकर कम्यूनिकेट करना है तो दूसरों से गुजरा है कोई 'लिंक लांग्वेज' होनी पड़ेगी और वह ऐसा ही होगा। जैसा हिंदी पत्रिकाओं में हिंदी बोलनी पड़ेगी। दक्षिण भारत की प्रमुख भाषाएँ हैं- तेलुगु, तमिल, कन्नड़, मलयालम उनके बीच में जाकर अगर वे भाषा बोलनी पड़ेगी और आगे जायेगा तो उसको 'लिंक लांग्वेज' के रूप में अंग्रेजी का इस्तेमाल करना पड़ेगा। तो ये जितनी ये नयी भाषा को इस्तेमाल करेगा उतना ही मूल भाषाएँ उसकी प्रभावित होगीं।

दु. बा.- 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में आदिवासियों की लड़ाई और बलिदान को इतिहास में क्यों दर्ज़ नहीं किया गया ?

ह. मी.- सवाल 1857 का ही नहीं है 1857 की तो एक लड़ाई लड़ी गई हिंदुस्तान के और उससे पहले भी आदिवासियों की लड़ाई अंग्रेजों के खिलाफ और देशी रियासतों की सत्ता के खिलाफ होती रही है। जो 18 वीं शताब्दी के अंतिम तीन दशक से शुरू हो जाती है। और लगातार चलती रहीं जब हम भारत के स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास पढ़ते हैं तो हमें आदिवासियों के नायकों द्वारा, लड़ी हुई लड़ाई आदिवासी समुदायों द्वारा उनके अंचलों में लड़ी गई लड़ाई इतिहास में पढ़ने को नहीं मिलती है। इसलिए आज सवाल उठता है आदिवासी लड़ाई के इतिहास को सही ढंग से देखा जाय और जो आदिवासी समाज का जो योगदान रहा है। उस योगदान को उसमें शामिल किया जाय।

दु. बा.- वर्तमान समय में आदिवासियों पर जो संकट मंडरा रहा है, अर्थात उन्हें जल, जंगल और ज़मीन से बेदखल किया जा रहा है इसके पीछे कौन सा षड्यंत्र है ?

ह. मी.- हम इसको षड्यंत्र नाम न दें हम ये कहें कि विकास की प्रक्रिया में प्रकृति के संसाधनों का दोहन हो रहा है। उसका उपयोग हो रहा है। या कहीं षड्यंत्र का कोई कोना तलाशना है तो वह जो बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ हैं या देशी कंपनियाँ हैं, उद्योगपतियों की उनके साथ कोई सांठ-गांठ होकर के वहाँ उनको वह जगह दी गई जहाँ पर प्राकृतिक संसाधन हैं आदिवासी जगहों पर संसाधन उच्च मात्रा में हैं। वहाँ

पर झगड़े हो रहे हैं। आदिवासी और स्थानीय जनता विरोध कर रही है। ये स्थितियाँ झारखंड में, छत्तीसगढ़ में या पहले वेस्टबंगाल में सामने आई थी। चाहे लालगढ़, सिंगूर की घटना हो। तो वह प्राथमिक संसाधनों पर जितना दबाव पडेगा वहाँ पर आदिवासी जो परंपरागत रूप से रहता आ रहा है वह उसका विरोध करता है। तो जल.जंगल, ज़मीन की लड़ाई आदिवासी लड़ता है। आदिवासी ये कहता है कि इन पर हमारा परंपरा से अधिकार रहा है। ये हम से छीने जा रहे हैं यह एक बात। दूसरी- हमको यहाँ से हटाया ही जा रहा है। एक- हम रह रहे हैं लेकिन छीन लिया जा रहा है। और हमको इस जगह से हटाया जा रहा है। यहाँ आदिवासी समाज इतने लंबे अरसे से एक तरह का जीवन जीता आया है। वे डिस्टर्ब हो रहे हैं। उसका जीवन सारा-का-सारा बाधित हो रहा है। उसे दूसरी जीवन-शैली की तरफ ले जाया जा रहा है या धकेल दिया जा रहा है। या कहा जा रहा है जिसे वह स्वीकार नहीं कर रहा है। तो एक मानसिक द्वंद्व भी इसमें है और दिखनेवाला भौतिक द्वंद्व नजर आ रहा है। जिसमें बहुत सारी दिक्कतें हैं। तो जो बात करते विस्थापन अनिवार्य है तो हो,अनिवार्य नहीं है तो न हो। विस्थापन हो तो उसका वैकल्पिक पुनर्वास हो। वैसा ही कि जैसा हमारी नीतियों का प्रावधान है।

दु. बा.- वर्तमान समय में आदिवासी-लेखन की दशा और दिशा के बारे में आपकी क्या राय है ?

ह. मी.-   आदिवासी-लेखन को आप आइडेंटिफाई करें कि आदिवासी-लेखन है क्या ? नंबर एक- आदिवासी लेखन वह है जो आदिवासियों की मौखिक परंपरा में जिंदा रहा, रचा जाता रहा, संघर्षित सुरक्षित रहा जो उनकी अपनी-अपनी भाषाएँ हैं आँचलिक भाषाएँ। दूसरा- आदिवासी साहित्य और लेखन वह है जो हिंदी भाषा में लिखा जा रहा है जिसका हमने पहले जिक्र किया। वह सबसे पहले 1जून, 2002 जिसको रमणिका गुप्ता फाउण्डेशन ने एक अखिल भारतीय आदिवासी साहित्यकारों का सम्मेलन कराया दिल्ली में, साहित्य अकादमी के सभागार में तब सामने आया और तब उसने ‘युद्धरत आम आदमी’ पत्रिका में दो- खंडों में पत्रिका के विशेषांक

निकाले थे। बाद में किताब के रूप में आया। उसके बाद काफी काम सामने आया है वह पहले भी रहा था इधर-उधर था लेकिन वह एक जगह जब आया था। इसलिए हम बार-बार कहते हैं कि इसको एक संस्कृति मानना चाहिए हमको। तीसरा- एक दूसरा तरीका होता है जो आदिवासी भाषाओं में लिखा गया है। उसका अनुवाद हो हिंदी में, दूसरी भाषा में या अंग्रेजी में। तो वह अब जो रचा जा रहा है उसमें हमको लगा काफी ताकत है, काफी प्रभाव है। काफी आधिकारिकता है अनुभव की जो अभिव्यक्ति हो रही है हम इस उलझन में नहीं पड़ते कि आदिवासी-लेखन वहीं होगा जो जन्मना आदिवासी कहें और गैर-आदिवासी न करें हमारा यह आग्रह होगा कि आदिवासीय अभिव्यक्ति दी जाए लेखन के माध्यम से। आदिवासी-जीवन को चाहे वह ग़ैर- आदिवासी हो या आदिवासी हो लेकिन अब तक रचे गये हिंदी साहित्य को हम देखते हैं तो हमें तीन तरह के रूप नजर आते हैं। एक तो वह है जो बाहर से दूर से कल्पना से लिख दिया गया जो रोमांटिक नज़रिया है। उसको हम आदिवासी साहित्य नहीं कहेंगे और उसको कहीं और ले जायेंगे। दूसरा वह है- जो गैर-आदिवासी लेखकों ने लिखा लेकिन आदिवासी जीवन के अनुभव को ग्रहण करने के बाद लिखा। उसमें सुदीप बैनर्जी (कविता), पुन्नी सिंह (सहराना), राकेश कुमार सिंह, रणेन्द्र और संजीव के उपन्यासों को लिया जा सकता है और बहुत सारों का नाम लिया जा सकता है। तीसरा वह है- जो आदिवासी द्वारा लिखा जा रहा है। उसमें आप जायेंगे तो ये अनुभव होगा की हाँ यहाँ पूरा-का-पूरा जो भोगा हुआ जीवन जिया सच यह है कि इसके यथार्थ को अभिव्यक्त कर रहे हैं। यह सच्चाई है कि यथार्थ की अभिव्यक्ति होगी उसमें जो सच्चाई सामने आयेगी चाहे वह जो पीटरपाल ऍक्का का उपन्यास हो, वाल्टर भेंगरा के उपन्यास हो, चाहे वो मंगलसिंह मुंडा की ‘छैला संदू’ रचना हो। वाल्टर भेंगरा का ‘घर लौटते हुए’ क्योंकि आदिवासी स्त्रियाँ खासतौर झारखंड में घर छोड़कर धन कमाने को शहर जाती हैं। घरों में झाड़ू, पोंछा करती थी। वाल्टर भेंगरा के उपन्यास में आदिवासी स्त्रियों के बारे में चित्रण है। पहला- आदिवासी जीवन की रोमांटिक जीवन के रूप में कल्पना की बात की गई है। दूसरा- आदिवासी जीवन कालीन अनुभवों द्वारा लिखा गया या अनुभव प्राप्त करने के बाद लिखा गया। और तीसरा हम कह देंगे स्वयं आदिवासी जो भोग रहा है जो

खुद भोग रहा है। सुख-दुख का फिर अभिव्यक्ति के माध्यम से सामने आया। ये तीन शेड्स हमको नजर आयेंगे। जहाँ तक दशा,दिशा को सामान्यीकरण करने का सवाल है अभी हम आलोचना, के प्रतिमान या सौन्दर्यशास्त्र नहीं गढ़े पाये हैं। जिससे की आदिवासी साहित्य को परखा जा सके। उसमें अभी वक्त लगेगा लेकिन एक बात है विषय-वस्तु है। वह विषय-वस्तु में आदिवासी सुख-दुख वो किसी भी अंचल का विषय हो उसमें काफी समानता नजर आयेगी क्योंकि उसका सुख तो वह है वो प्रकृति के सानिध्य में जीवन को जी रहा है। उसकी एक समृद्ध संस्कृति है परंपराएँ हैं, संस्कृति की जीवन सहजता है, बेईमानी नहीं है, चालाकी नहीं है। यह इसका एक पक्ष नजर आता है। दूसरा वह आता है जहाँ- उसका दुख है, शोषण है, पीड़ा है, विस्थापन की पीड़ा है, चाहे भूख की पीड़ा है पूरा पर्याप्त वस्त्र नहीं मिलता हो, उसको आवास नहीं मिल रहा हो, पौष्टिक चीजें नहीं मिल रही हैं। अशिक्षा है उसमें अंधविश्वास पड़े हुए हैं। कुछ गलत आदतें हैं। उसको देखेंगे एक पक्ष नहीं लेंगे, दूसरे समाज में दूसरा वर्ग है उनमें ज्यादा हो रहा है, सवाल इतना है कि वह अपने खुले गगन के नीचे काम कर रहा है। वह पंच सितारों में या महलों में या बंगलों में बैठकर के मौसम में वो काम कर रहे हैं। इसलिए मैं बात कर रहा हूँ जो उसके दुख-दर्द है, जो उसकी भूख है, उसका नंगापन है,जो उसको घर नहीं है, जो सुविधाएँ नहीं है। शिक्षा नहीं है उन बातों का ये दोनों जो पक्ष है एक उसका संतोष का, चैन का, उमंग का, पर्वोत्सव का, प्रकृति के बीच में रहने का उसका नाचना, गाना ये तो एक में अभिव्यक्ति हो रहा है दूसरा- अभिशप्त हो रहा है। दोनों की अभिव्यक्ति आधिकारिक हो नहीं सकती है ये हमें संतोष है लेकिन अभी भी आदिवासी-जीवन को लेकर बहुत कम लिखा गया है। बहुत कुछ लिखना बाकी है उनके बीच में बहुत जातक है देखना बाकी है और वह जो अनुभव होगा उससे आदिवासी जीवन पर लिखे साहित्य की बहुत संभावनाएँ नजर आ रही हैं और यही कारण है कई पत्रिकाएँ विशेषांक निकाल रहीं हैं। जितना शोध-कर्म अब आदिवासी जीवन-पक्षों को लेकर हो रहा है।

आदिवासी साहित्य को लेकर हो रहा है। वो भी हमको एक संतोष दे रहा है और ध्यान देना है कि सही दृष्टिकोण से ये सारी चीजें हो ये सारा-का-सारा लेखन हो।

दु. बा.- आदिवासी-समाज को मुख्य धारा से जोड़ने के लिए क्या-क्या प्रयास किये जा सकते हैं ?

ह. मी.- आदिवासी-समाज को मुख्यधारा से जोड़ने के लिए हमारे संविधान में पर्याप्त प्रावधान है और उनकी कोई कमी भी नहीं है। जब अंबेडकर ने जो संविधान बनाया आदिवासी कल्याण को या आदिवासी विकास को बहुत तवज्जो दे दिये हैं जो प्लान, सब-प्लान बने बाद में पंचम वर्षीय योजनाएँ में बजट वार्षिक में है शायद केंद्रिय सरकार हो या राज्य सरकार हो या नोटीफैड़ एरिया जिनकी सब प्लान बनी हो बजट की कोई कमी नहीं है। सवाल सिर्फ ये उठता है कि जो क्रियान्वित हो रहा है वो सही ढ़ंग से नहीं हो रहा है। इसलिए दो चीजें सामने आती हैं एक तो फंड को डैवर्ट कर जाते हैं और उन कामों का आदिवासी विकास से कोई तालुक नहीं रहता है। दूसरा- उसमें करप्शन है। तीसरा- इन चीजों को जो दिखाया जाता है असल रूप में उनका क्रियान्वयन नहीं हो पा रहा है, इसलिए इंफैक्ट नहीं पड़ रहा है, प्रभाव सामने नहीं आ रहा है, परिणाम सामने नहीं आ रहे हैं। इसलिए आदिवासी विकास से संबंधित जितनी योजनाएँ हैं उप-योजनाएँ, प्रावधान हैं उनको ईमानदारी से गंभीरता से कमिटमेंट के साथ लागू करेंगे। तो आदिवासी समाज का विकास होगा और उसके लिए हमें जरूरत है कि आदिवासी खुद स्वयं आदिवासी समाज से नेतृत्व करें और वो नेतृत्व प्रजातांत्रिक व्यवस्था के समूह के दबाव में काम करेगा। तो जितनी भी गड़बड़ियाँ हो रही हैं इन गड़बड़ियों को कम करने की संभावनाएँ बनती हैं।

दु. बा.- समग्र भारत के आदिवासी आज भी सुबह के इंतजार में बैठे हैं, उन्हें कैसे 'साइबर सिटी' तक पहुँचाया जा सकता है ?

ह. मी.- बहुत बड़ा सवाल है यह बिलकुल वह अभी उसी पिछड़ेपन की अवस्था में है। आदिम अवस्था में है अधिकांश समुदाय हैं अभी भी आखेट जीवी हैं काफी

समाज उनको हम कैसे बेहतरीन कृषि-कर्म में लायें ? कैसे औद्योगिक जो विकास हुआ उसका फायदा हो जो भौतिक विकास हो कि ज्ञान-विज्ञान तकनीकी उनका फायदा उनको मिले। उनमें जागृति आये शिक्षा का प्रचार-प्रसार हो स्वास्थ्य के प्रति सचेत हो, स्वास्थ्य सेवाएँ उन तक पहुँचे तो अभी भी वो बहुत पीछे हैं इसलिए वह अभी सुबह के इंतजार में है। ये एक बात है और वो सुबह धीरे गति से हो रही है उन तक आ रही वो प्रजातांत्रिक व्यवस्था के फल उनको धीरे-धीरे मिल रहे हैं। इसलिए उनको साइबर तक जाने का या उच्च तकनीकी दशा तक जाने के लिए उस स्टेज तक जाने के लिए वक्त लगेगा। उस वक्त को हम कम कैसे करें ?। उन से संबंधित जितनी सरकारी योजनाएँ हैं वो सही ढ़ंग से लागू होना। जितने एन.जी.ओस काम कर रहे हैं वो केवल इधर-उधर से फंड लाकर के अपनी कमाई करने की वजह कमिटमेंट के साथ में, गंभीरता से वह आदिवासी क्षेत्र पर काम कर रहा है कि नहीं ? उन आदिवासी बैल्ट में उसका काम वह करेगा और तीसरा आदिवासी स्वयं को उठाये तब वह सुबह का इंतजार करता-करता सुबह तक पहुँच पायेगा और सुबह तक पहुँचेगा तो दिनभर चलेगा और चलता-चलता उच्च तकनीकी या साइबर तक पहुँचेगा।

दु. बा.- संपूर्ण भारत के आदिवासियों को एक छत के नीचे कैसे लाया जा सकता है ?

ह. मी.- देखो संपूर्ण भारत के आदिवासी एक छत के नीचे अगर आयेंगे तो वह छत होगी भारत भूमि की। भारत-भूमि का आसमान होगा। जो जिस अंचलों में रहा है वो वहीं रहेगा। विकास के नाम पर विस्थापन होगा तो वो ईर्द-गिर्द ही बसेगा। उसका नई जगह वैकल्पिक पुनर्वास में मन नहीं लगेगा तो वह वापस जायेगा। तो ऐसा ही वापस जायेगा जैसे आंध्रप्रदेश के राजीवगाँधी जो बागारादीप पार्क बनाया उसमें से चेंचू आदिवासियों का विस्थापन हुआ चार-पाँच गांवों में विस्थापित किया गया। जहाँ विस्थापित किया वहाँ जगह पर्याप्त नहीं थी। वह खुली प्रकृति में यहाँ-वहाँ दूर-दूर अपनी झोंपड़ी बना के रहने के आदी हैं। वहाँ क्लस्टर भी डाल दिया तो वो आपस में लड़ने लग गये। उनको वहाँ सूट नहीं किया तो वापस जंगल चले गए

इसलिए उसको तुम पूरे आदिवासी समाज को किसी नगर में नहीं ला सकते थे आदिवासी समाज का एक प्रांत नहीं बना सकते जहाँ रह रहा है वहीं रहेगा। अंचल दूर-दूर है अलग थलग पड़े हुए हैं। उन में आपस में कोई संपर्क नहीं है लेकिन आदिवासी, संविधानों का, संसाधनों का उपभोग करते हुए खासतौर के संप्रेषण के साथ और यातायात परिवहनों के साथ उनका इस्तेमाल करते रहें। वे एक-दूसरे के अंचल में अपने-अपने संपर्क बनायेंगे। यह एक संभावना है और जहाँ वह रह रहा है वहाँ सिर्फ विक्षिप्त होगा तो उनका जो भौतिक स्तर है। वह सब का एक जैसा आगे जाके पहुँचेगा तो उस दृष्टि से तो वो एक छत के नीचे या विकास के एक दौर तक जाने की संभावना दिखाई दे रही हैं। फिजिकल टर्म में हम ये माने की उन सबको इकट्ठा करके एक जगह लाया जाय वह संभावना होगी भी, संभव भी है। इसलिए यहाँ जो सवाल का मकसद है ये है कि भारत के संपूर्ण आदिवासियों के समाज को एक स्तर पर लिया जाय। उस दृष्टिकोण से विकास की ही छत के नीचे एक जगह पर लायेंगे ये हमारा प्रयास है।

परिशिष्ट

दो प्रकाशित शोधालेख।